क्या विद्युत् (इलेक्ट्रीसीटी) सचित्त तेउकाय है ?

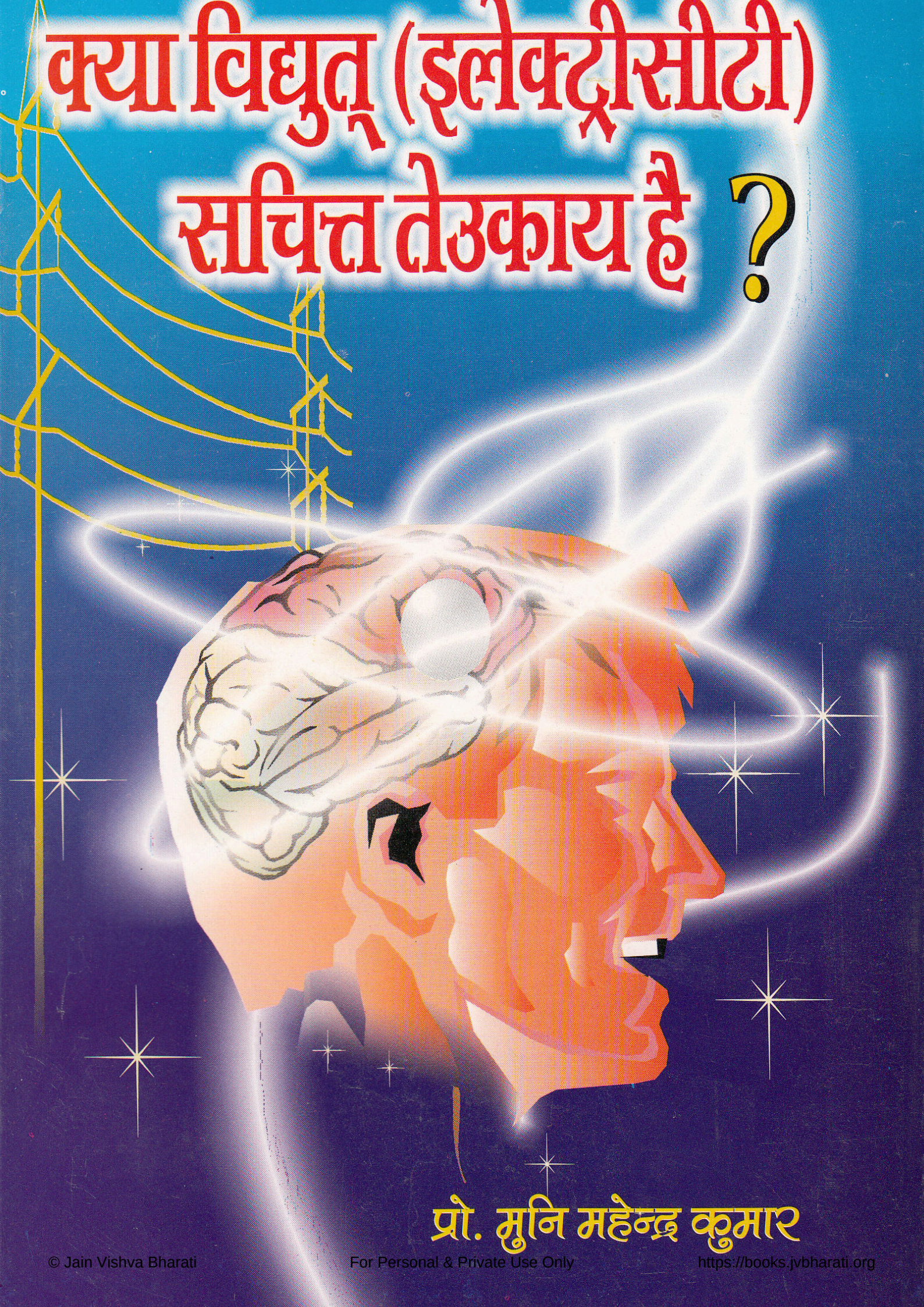

प्रो. मुनि महेन्द्र कुमार

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

क्या विद्युत् (इलेक्ट्रीसीटी) सचित्त तेउकाय है?

भूमिका
आचार्य महाप्रज्ञ

लेखक
प्रोफेसर मुनि महेन्द्र कुमार

जैन विश्व भारती
लाडनूं (राज॰)-341306

प्रकाशक :
जैन विश्व भारती
लाडनूं-341306 (राज.)

© जैन विश्व भारती

ISBN : 81-7195-099-X

आर्थिक सौजन्य :
'श्रद्धा की प्रतिमूर्ति' स्व. श्रीमती दाखीदेवी
धर्मपत्नी श्री नाथूलालजी तातेड़ की
पुण्य स्मृति में सुपुत्र श्री मदनलाल तातेड़
धानीन-मुंबई

प्रथम संस्करण : मार्च, 2004

मूल्य : 80/- रुपये मात्र

मुद्रक : श्री वर्धमान प्रेस
नवीन शाहदरा, नई दिल्ली-32

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

विषय अनुक्रम

पृष्ठांक

भाग-1 : जैन दर्शन और विज्ञान में विद्युत् और अग्नि 1-38

प्रभाग-1 : जैन दर्शन में पुद्गल 1-8

प्रभाग-2 : जीव और पुद्गल का संबंध 9-11

प्रभाग-3 : विज्ञान में पुद्गल 11-13

प्रभाग-4 : मनुष्य-शरीर में इलेक्ट्रीक ऊर्जा 13-18

जैव विद्युत् अथवा प्राण ऊर्जा 15

प्रभाग-5 : विज्ञान की दृष्टि में विद्युत् (Electricity) 18-25

विद्युत्-चुम्बकीय-क्षेत्र अथवा वि. चु. फिल्ड (Electro-Magnetic-Field) 21

आयनीकृत वायु में विद्युत् का निरावेशीकरण 24

प्रभाग-6 : अग्नि का स्वरूप 26-62

जैन दर्शन में तेउकाय (अग्नि) के जीव 26

विज्ञान द्वारा अग्नि की व्याख्या 30

तापमान (Temperature) 35

तापमान व तेउकाय 36

अनुकूल तापमान 37

अग्नि और उष्मा में अन्तर 39

उष्मा-विकिरण का उत्सर्जन 39

धातु में विद्युत्-प्रवाह 40

अग्नि से संबद्ध अन्य कुछ ज्ञातव्य बातें 41

प्रभाग-7 : आकाशीय विद्युत् (Lightning) 43-52

पृथ्वी का वातावरण 43

प्राकृतिक तूफान (Thuderstorm) 45

तडित्-विद्युत् की संरचना 47

तडित्-विद्युत् एवं अशनिपात को तेउकाय क्यों कहा गया? 48

प्रभाग-8 : इलेक्ट्रीसीटी और अग्नि (तेउकाय) 51-59

प्रभाग-9 : बल्ब की प्रक्रिया 53-59

How are incandescent light bulb made? 53

What type of gas are used in light-bulbs and how do ther effects differ? 53

Why is an incandescent light hotter than a fluorescent light? 54

Why does an object like metal give off light when it is heated? 55

How does a light-bulb work?

प्रभाग-10 : ट्यूब लाईट की प्रक्रिया **60-63**

Electrodes, tube life and sputtering 62

इलेक्ट्रोड्स, ट्यूब (लाईट) की आयु और चिटकना 63

भाग-1 के टिप्पणी-क्रम **64-138**

भाग-2 : शंका-समाधान **139-265**

प्रश्न 1 बल्ब में वायु का होना निश्चित 141

प्रश्न 2 टूटा हुआ बल्ब प्रकाशित क्यों नहीं होता? 142

प्रश्न 3 ट्यूब लाईट में कालापन कहाँ से आया? 144

प्रश्न 4 क्या इलेक्ट्रीक स्पार्क सचित्त तेउकाय नहीं है? 146

E.D.M. : Principles of Operation 146

प्रश्न 5 क्या माइक आदि इलेक्ट्रीक साधनों का उपयोग साधु कर सकते हैं? 153

प्रश्न 6 बल्ब में वेक्यूम संभव नहीं है? 154

प्रश्न 7 बल्ब में भी पुद्गल-द्रव्य है? 155

प्रश्न 8 ऑक्सीजन बिना भी आग लग सकती है? 159

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

प्रश्न 9 अंतरिक्ष में चिनगारियां शून्यावकाश में भी हो सकती हैं? 161
प्रश्न 10 इलेक्ट्रीसीटी और आकाशीय बिजली एक है? 161
प्रश्न 11 आकाशीय बिजली सचित्त तेउकाय है; इसलिए इलेक्ट्रीसीटी भी है? 164
प्रश्न 12 इलेक्ट्रीसीटी घर्षण से उत्पन्न अग्नि ही है? 165
प्रश्न 13 वायर में विघ्यात अग्नि है? 171
प्रश्न 14 वायर में से चिनगारियां निकलती हैं एवं आग लगती है, फिर अग्निकाय क्यों नहीं? 174
प्रश्न 15 बल्ब का प्रकाश भी तेउकाय है? 178
प्रश्न 16 कर्मवश तेउकाय जीव की उत्पत्ति कहीं भी संभव? 179
प्रश्न 17 सिद्धसेनगणी के अनुसार प्रकाश भी तेउकाय है? 180
प्रश्न 18 केवल विज्ञान के आधार पर इलेक्ट्रीसीटी को निर्जीव बताना छद्मस्थ का दुःसाहस नहीं है क्या? 182
प्रश्न 19 सभी प्रकाश जीव-सापेक्ष ही है, इसलिए बल्ब का प्रकाश भी सजीव है? 183
प्रश्न 20 इलेक्ट्रीसीटी को निर्जीव बताने वाला आगम-पाठ कौन-सा है? 189
प्रश्न 21 ओघनिर्युक्ति आदि ग्रंथों में निर्जीव तेउकाय के उल्लेख के साथ बिजली का उल्लेख क्यों नहीं? 190
प्रश्न 22 भगवती सूत्र में वायुकाय से अग्निकाय स्थूल है, तो बल्ब में वायु का प्रवेश क्यों संभव नहीं? 201
प्रश्न 23 ईंधन के बिना भी इलेक्ट्रीसीटी को अग्नि माना जा सकता है? 202
प्रश्न 24 अन्य वायु (नाइट्रोजन, आर्गोन आदि) भी अग्निकाय क्यों उत्पन्न नहीं कर सकती? 205
प्रश्न 25 विज्ञान को ऑथेन्टिक मानकर शास्त्रीय सत्य को अस्वीकार करना कहां तक संगत है? 207
प्रश्न 26 क्या त्रिकाल-अबाधित आगमों में शोध का अवकाश है? 208
प्रश्न 27 बिजली अचित्त है ऐसा शास्त्रपाठ बताए बिना उसे अचित्त मानना कहां तक संगत है? 210
प्रश्न 28 प्रकाश दीपक का हो या इलेक्ट्रीक उपकरणों का सभी को जैन ग्रंथ सचित्त मानता है। इसमें क्या आपत्ति है? 211
प्रश्न 29 अग्निकाय का आरंभ महाआरंभ है? 213
प्रश्न 30 बल्ब की गरमी के स्पर्श से वायु की हिंसा और लाईट से त्रसकाय की हिंसा होती है? 213
प्रश्न 31 क्या हाथ-घड़ी आदि में अग्निकाय की हिंसा है? 213
प्रश्न 32 माईक आदि में गरमी की उत्पत्ति क्या अग्निकाय का सूचक नहीं है? 214
प्रश्न 33 क्या तेरापंथी साधु पंखे का उपयोग करते हैं? 215
प्रश्न 34 इलेक्ट्रीसीटी की उत्पत्ति में स्थावरकाय और त्रसकाय की विराधना का दोष लगता है? 217
प्रश्न 35 पंचागी आगम और आगमावलंबी श्रुत के आधार पर इलेक्ट्रीसीटी और बल्ब प्रकाश सजीव अग्निकाय ही हैं ऐसा निश्चित है। फिर क्यों न उसे स्वीकार किया जाए? 219

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

प्रश्न 36 इलेक्ट्रीसीटी और बल्ब-प्रकाश सजीव हैं यह निर्णय न होने पर शंका रहने पर साधु उसका प्रयोग कैसे कर सकते हैं? 222
प्रभाग 2 का टिप्पणी क्रम 223-266
परिशिष्ट-1 : प्रकाश सजीव-निर्जीव-मीमांसा 267-287
परिशिष्ट-2 : 92 मूल तत्त्व 287-290
परिशिष्ट-3 : प्रयुक्त ग्रंथ-सूची 291-294

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

भाग-1

जैन दर्शन और विज्ञान में विद्युत् और अग्नि

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

जैन दर्शन और विज्ञान में विद्युत् और अग्नि

''आगमस्य अविरोधेन ऊहनं तर्क उच्यते।''[1] आगम के साथ विरोध न हो, उसी प्रकार तत्त्व की शोध के लिए सुविचारणा करना ही तर्क कहलाता है। इस आधार पर प्रस्तुत विषय की निष्पक्ष मीमांसा जरूरी है। मूल विषय में जाने से पूर्व कुछ मूलभूत/आधारभूत बिन्दुओं को स्पष्टतः ध्यान में रखना होगा।

1. **''तमेव सच्चं निस्संकं जं जिणेहिं पवेइयं''**[2] यह हमारे चिन्ता का प्रमुख आधार होना चाहिए। इसके साथ-साथ यह भी समझना होगा कि ''जिनेश्वर देव द्वारा प्रवेदित'' तथ्य को हमने सही रूप में समझा है या नहीं। आगम-वचन की विवक्षा क्या है, किस दृष्टि से किस बात को कहा गया है, इसकी पर्याप्त समझ के बिना मूल में ही आगम-वचन के नाम पर हम कोई ऐसी बात तो नहीं कह रहे हैं, जो जिनेश्वर देव द्वारा विवक्षित न हो। प्रत्येक वचन उसके सही परिप्रेक्ष्य में ही समझना नयदृष्टि का मन्तव्य है। पूर्वापर प्रसंग, शब्दों के विभिन्न अर्थ, दृष्टिकोण या अपेक्षा के सम्यग् बोध के बिना आगम-वचन का तात्पर्य कैसे समझेंगे? इसलिए निःशंक और सत्य बात तक पहुंचने के लिए प्रयत्न होना चाहिए।

2. विज्ञान द्वारा जो भी सूचना मिल रही है, उसे भी आगम एवं अन्य प्रमाणों के आधार पर कस कर स्वीकार्य मानना होगा। न विज्ञान की बात को आंखें बंद कर स्वीकार करना, न ही उसके विरोध में पूर्वाग्रह रखना। युक्तियुक्त एवं आगम-अविरुद्ध तथ्यों को तटस्थतापूर्वक समझने की कोशिश करना यही उचित, समीचीन एवं उपादेय लगता है।

3. बात आगम की हो या विज्ञान की, पहले हमारी समझ को सही बनाना जरूरी है। यदि आगम के नाम पर या विज्ञान के नाम पर हम उसे समझे बिना किसी बात का प्ररूपण कर देंगे तो न्याय नहीं होगा।

4. किसी भी तत्त्व-निर्णय का उद्देश्य सुविधा-असुविधा, प्रचार-प्रसार में उपयोगिता, आधुनिकता का व्यामोह आदि नहीं होना चाहिए। इसी प्रकार केवल परम्परा का आग्रह भी न हो। तत्त्व-निर्णय के पश्चात् क्या करना, क्या न करना ये बातें द्रव्य,

क्षेत्र, काल, भाव की अपेक्षाओं के साथ जुड़नी चाहिए, न कि नवीन-पुरातन आदि पर।

5. जिन विषयों में आगम न साधक है, न बाधक, उनके सम्बन्ध में बुद्धि, तर्क और विज्ञान के माध्यम से संगत यथार्थ के विषय में विचार करने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

इन मूलभूत आधारों पर विद्युत् यानी इलेक्ट्रीसीटी अपने आप में सचित्त तेउकाय है या अचित्त पुद्गल इस विषय की चर्चा को प्रस्तुत करना, इस लेखन का उद्देश्य है।

अब तक जो विचार इस विषय में प्रस्तुत हुए हैं, उनकी समीक्षा करने से पूर्व कुछेक मूलभूत बातें जो जैन आगमों, जैन ग्रन्थों और जैन परम्परा में उपलब्ध हैं, उन पर तथा वैज्ञानिक अवधारणाएं जिन्हें स्पष्ट समझना जरूरी है, उन पर प्रकाश डालना अपेक्षित है।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

1. जैन दर्शन में पुद्गल

जैन दर्शन में पुद्गल (अथवा पुद्गलास्तिकाय) छह द्रव्यों में एक द्रव्य है, जो अपने आप में अजीव है (जिसे अचित्त भी कहते हैं)। पुद्गल की परिभाषा है **स्पर्श-रस-गंध-वर्णवान् पुद्गलः**।[3] स्पर्श, रस, गंध और वर्णयुक्त द्रव्य पुद्गल है। ये चारों पुद्गल के लक्षण हैं। इनमें स्पर्श के आठ भेद हैं स्निग्ध-रूक्ष, शीत-उष्ण, गुरु-लघु, मृदु-कठोर। इनमें से स्निग्ध-रूक्ष तथा शीत-उष्ण ये चार स्पर्श मूल हैं और शेष चार स्पर्श उत्तर हैं। चतुःस्पर्शी स्कन्धों में चार मूल स्पर्श होते हैं, अष्टस्पर्शी स्कन्धों में आठों स्पर्श हैं। स्वतंत्र परमाणु में स्निग्ध और रूक्ष में से एक तथा शीत और उष्ण में से एक ऐसे दो स्पर्श ही होते हैं।

प्रस्तुत विषय की विचारणा में स्निग्ध और रूक्ष का अधिक महत्त्व है। स्निग्ध और रूक्ष का शाब्दिक अर्थ 'चिकना' और 'रूखा' होता है, पर परमाणुओं के परस्पर बन्ध और स्कन्ध-निर्माण के सन्दर्भ में इसका अर्थ क्या होना चाहिए, इस पर विद्वानों ने चिन्तन किया है। सर्वार्थसिद्धि में इसकी शाब्दिक व्याख्या की गई है।[4] प्रज्ञापना सूत्र में स्निग्धत्व-रूक्षत्व को स्कन्ध-निर्माण का हेतु मानते हुए उसके नियम बताए गए हैं।[5] गोम्मटसार में भी यही बताया गया है।[6] तत्त्वार्थ सूत्र में **''स्निग्धरूक्षत्वाद् बन्धः''** सूत्र द्वारा इसी को बताया गया है।[7] तत्त्वार्थ सूत्र की टीका सर्वार्थसिद्धि में इसकी व्याख्या में **''स्निग्धरूक्षत्वगुणनिमित्तो विद्युत्''** अर्थात् (बादलों के बीच चमकने वाली) विद्युत् स्निग्ध और रूक्ष गुणों के निमित्त से होती है, ऐसा बताया गया है।[8] वर्तमान विज्ञान के अनुसार इसका निमित्त है बादलों में विद्यमान धन विद्युत्-आवेश और ऋण विद्युत्-आवेश। इस आधार पर स्निग्ध और रूक्ष को पोजीटीव और नेगेटीव इलेक्ट्रीक चार्ज के रूप में समझा जा सकता है।[9] जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश ने धवला के आधार पर विद्युत्करण को "Protons and Electrons" के रूप में बताया है।[10]

इस विवेचन से स्पष्ट होता है कि सभी पुद्गल-स्कन्ध एवं पुद्गल-परमाणु में स्निग्ध अथवा रूक्ष नामक स्पर्श-गुण अवश्य होता है। यदि इन्हें ही पोजीटीव-नेगेटीव इलेक्ट्रीक चार्ज के रूप में समझा जाए तो सभी पुद्गलों में इलेक्ट्रीक चार्ज का अस्तित्व भी सिद्ध हो जाता है। विज्ञान के अनुसार भी इलेक्ट्रीक चार्ज पदार्थ का मौलिक गुण है और प्रत्येक परमाणु में इसका अस्तित्व स्वीकार किया गया है।

2. जीव और पुद्गल का सम्बन्ध

परमाणु-पुद्गल से लेकर अनन्तानन्त प्रदेशी स्कन्धों तक (जिनमें महास्कन्ध वर्गणा भी है) पुद्गल की अनेक वर्गणाएं हैं। इनमें से 23 वर्गणाओं का वर्णन उपलब्ध है।[11] इनमें से केवल पांच वर्गणाएं ऐसी हैं, जिन्हें संसारी जीव ग्रहण कर सकते हैं[12]

1. आहार-वर्गणा इसमें औदारिक, वैक्रिय, आहारक और श्वासोच्छ्वास वर्गणा के पुद्गल-स्कन्ध समाविष्ट हैं।

2. तैजस वर्गणा सभी संसारी जीवों के साथ निरन्तर रहने वाले सूक्ष्म शरीर यानि तैजस शरीर का निर्माण इनसे होता है।[13] विज्ञान की दृष्टि से ''जैव-विद्युत्'' (Bio-electricity) का सम्बन्ध तैजस वर्गणा के साथ है। प्राणी की लेश्या भी तैजस वर्गणा से सम्बद्ध है। विज्ञान ने आभामण्डल (Aura) का छायांकन (Photography) किर्लियन फोटोग्राफी द्वारा कर लिया है जो प्राणी के तैजस शरीर द्वारा निर्मित एक ''विद्युत्-चुम्बकीय-क्षेत्र'' (Electro-magnatic field) के रूप में होता है। आभामण्डल के पुद्गल द्रव्य लेश्या का प्रतिबिम्ब है जो विभिन्न रंगों के रूप में प्रकट होते हैं। (वैसे अजीव पदार्थ के आभामण्डल का भी छायांकन किया गया है। सजीव प्राणी का आभामण्डल भावधारा के साथ बदलता रहता है, जबकि अजीव पदार्थ का आभामण्डल स्थित रहता है, बदलता नहीं।)

तैजस वर्गणा के पुद्गल-स्कन्ध तैजस-शरीर के रूप में पाचन-क्रिया आदि शारीरिक क्रियाओं में उपयोग में आते हैं तथा विशिष्ट लब्धिधारी व्यक्ति को प्राप्त तैजसलब्धि (या तेजोलेश्या) में भी इन्हीं पुद्गल-स्कन्धों का उपयोग होता है।

3. भाषा-वर्गणा

4. मनो-वर्गणा

5. कार्मण-वर्गणा

जीव द्वारा औदारिक शरीर, वैक्रिय शरीर, आहारक शरीर, श्वासोच्छ्वास, तैजस शरीर, भाषा, मन और कार्मण शरीर के रूप में परिणत पुद्गल-स्कन्धों का जीव

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

से पृथक्करण होने पर वे 'मुक्त' पुद्गल हो जाते हैं। जब तक वे जीव के साथ रहते हैं, तब तक उन्हें 'बद्ध' पुद्गल कहा जाता है। ये आठ प्रकार के पुद्गल-स्कन्ध अपने आप में अचित्त हैं। इनका भी परिणमन होता है और इनका रूपान्तरण भी संभव है।[14]

आहार वर्गणा के अन्तर्गत औदारिक शरीर वर्गणा, वैक्रिय शरीर वर्गणा, आहारक शरीर वर्गणा तथा श्वासोच्छ्वास वर्गणा के पुद्गल हैं। ये पुद्गल अपने आप में अचित्त हैं तथा जब जीव इन्हें ग्रहण कर लेता है तब वे जीव के शरीर के रूप में परिणत हो जाते हैं और इनका सचित्त रूप में परिणमन हो जाता है। जब ये जीव से 'मुक्त' हो जाते हैं, तो पुनः अचित्त पुद्गल हो जाते हैं।

तैजस, भाषा, मन और कार्मण वर्गणाओं के पुद्गलों का भी जब तक जीव द्वारा ग्रहण नहीं होता, तब तक अपने आप में वे अचित्त हैं। जब जीव इन्हें तैजस शरीर आदि के रूप में परिणत कर आत्मसात् कर लेता है तब ये तैजस शरीर आदि के पुद्गल सचित्त रूप में परिणत हो जाते हैं। ''इस कारण से आहार (औदारिक, वैक्रिय, आहारक और श्वासोच्छ्वास) तैजस, भाषा, मन और कार्मण, इन पांच वर्गणाओं को 'बन्धनीय' कहा गया है तथा वे बाह्य वर्गणाएं कहलाती हैं, क्योंकि तेईस वर्गणाओं में ये पांच शरीर पृथग्भूत हैं, इनकी बाह्य संज्ञा है। पांच शरीर अचित्त वर्गणाओं में तो सम्मिलित नहीं किए जा सकते, क्योंकि सचित्त को अचित्त मानने से विरोध आता है। उनका सचित्त वर्गणाओं में भी अन्तर्भाव नहीं होता, क्योंकि विस्रसा-उपचयों के बिना पांच शरीरों के परमाणुओं को ही सचित्त वर्गणाओं में ग्रहण किया है।''[15]

जीव द्वारा गृहीत होने से पूर्व इन आठों वर्गणाओं के पुद्गल अपने आप में अचित्त होते हैं। इनका उपचय वैस्रसिक बन्ध के द्वारा होता है। जब ये जीव द्वारा गृहीत होते हैं, तब फिर इनका परिणमन शरीर आदि के रूप में होता है। इस आधार पर यह स्पष्ट होता है कि तैजस वर्गणा के पुद्गल और तैजस शरीर के रूप में परिणत पुद्गल भिन्न हैं। विद्युत् या इलेक्ट्रीसीटी अपने आप में पौद्गलिक परिणमन है। जब जीव द्वारा इन पुद्गलों का ग्रहण होता है तब ये तेउकायिक जीव के शरीर बन सकते हैं, इससे पूर्व तो वे अचित्त पुद्गल ही हैं।

जीवों के स्थूल शरीर (औदारिक, वैक्रिय) तथा सूक्ष्म शरीर के रूप में 'बद्ध' एवं 'मुक्त' पुद्गलों के परिणमन से व्यवहार-जगत् के सभी पदार्थों का परिणमन सम्बन्धित है।[16] विश्व के परिणमनों को तीन भागों में बांटा गया है 1. वैस्रसिक, 2. प्रायोगिक, 3. मिस्र।[17] वैस्रसिक परिणमन केवल पुद्गलों के वर्ण, गंध, रस, स्पर्श और संस्थान (आकार) के परिणमन के कारण होते हैं,[18] जीव के प्रयत्नों से होने वाले परिणमन

'प्रायोगिक' की कोटि में है[19] तथा जीव और पुद्गल दोनों के संयुक्त योग से होने वाले परिणमन मिस्र कहलाते हैं।[20] पुद्गल की पर्यायों में शब्द, बन्ध, सौक्ष्म्य, स्थौल्य, संस्थान, भेद, तमस् (अंधकार), छाया, आतप (सूर्य का प्रकाश), उद्योत (चन्द्र का प्रकाश), प्रभा (मणि आदि का प्रकाश) आदि का समावेश किया गया है।[21] इस प्रकार स्पर्श आदि गुणों एवं शब्द आदि पर्याय पौद्गलिक जगत् की सभी घटनाओं के लिए जिम्मेदार हैं।

जीव की उत्पत्ति (जन्म) में भी पौद्गलिक परिणमनों से निर्मित योनियां निमित्तभूत बनती हैं। जैन दर्शन में शीत, उष्ण, शीतोष्ण, संवृत्त, विवृत्त, संवृत्त-विवृत्त, सचित्त, अचित्त, सचित्त-अचित्त ये नौ प्रकार की योनियों का उल्लेख प्राप्त है।[22] इस प्रकार अचित्त पौद्गलिक स्कन्ध भी अनुकूल संयोग प्राप्त होने पर योनि बन सकते हैं, पर सभी पौद्गलिक स्कन्ध योनि बने ही, ऐसा नहीं है। जब तक ये परिणमन योनि का रूप नहीं लेते, तब तक पौद्गलिक ही हैं अजीव ही हैं। जब इनमें योनि की क्षमता प्राप्त होती है, तब उनमें जीव उत्पन्न हो सकते हैं। तेजस्काय के जीव की योनि उष्ण ही होती है। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि सभी उष्ण पुद्गल उसकी योनि हैं।[23]

उपर्युक्त जैन मान्यताओं के आधार पर हम तेजस्काय के जीवों की उत्पत्ति आदि के विषय में चर्चा कर सकते हैं।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

3. विज्ञान में पुद्गल

जैन दर्शन जिसे पुद्गल कहता है, उसकी दो अवस्थाओं को विज्ञान ने स्वीकार किया है

1. पदार्थ या मेटर (Matter)
2. ऊर्जा या एनर्जी (Energy)

प्राचीन विज्ञान (Classical Physics) में इन दोनों को नितान्त भिन्न माना जाता था पर आधुनिक विज्ञान ने अब इनकी मौलिक एकता को स्वीकार कर लिया है। इसलिए अब विज्ञान के अनुसार ऊर्जा का पदार्थ के रूप में और पदार्थ का ऊर्जा के रूप में रूपान्तरण संभव है। आइन्स्टीन द्वारा प्रदत्त प्रसिद्ध समीकरण है

ऊर्जा = द्रव्यमान × C^2 (C = प्रकाश का वेग)

इसी प्रकार जिसे प्राचीन विज्ञान ने मूल पदार्थ (Element) की संज्ञा दी थी, उसे भी दूसरे मूल पदार्थ के रूप में बदला जा सकता है। विज्ञान ने 92 मूल पदार्थों को स्वीकार किया है, जिनमें प्रथम क्रमांक है हाइड्रोजन का तथा 92वें क्रमांक में है यूरेनियम। कृत्रिम रूप से निर्मित मूल पदार्थों का क्रमांक 100 से भी ऊपर चला गया है।[24] इन मूल पदार्थों का भी परस्पर रूपान्तरण ''परमाणु-भौतिकी'' (Atomic-Physics) के माध्यम से संभव बना है। हाइड्रोजन को हिलियम (क्रमांक 2) तथा यूरेनियम (क्रमांक 92) को सीसे (Lead) (क्रमांक 82) में परिवर्तन कर हाइड्रोजन बम तथा अणुबम का आविष्कार किया गया।[25]

पुद्गल के दोनों रूप पदार्थ ओर ऊर्जा अपने आप में पुद्गल है, इसलिए निर्जीव ही हैं। इनका परस्पर रूपान्तरण भी पौद्गलिक ही है, निर्जीव परिणमन ही है। पौद्गलिक परिणमन के पश्चात् जीवोत्पत्ति के अनुकूल योनि-निर्माण होने पर ही सजीवता या सचित्त के रूप में परिणमन कभी हो सकता है, कभी नहीं। अग्निकायिक जीवों की उत्पत्ति सामान्यतः (कुछ अपवाद को छोड़कर) ऑक्सीजन के बिना संभव नहीं है।

विज्ञान द्वारा विभिन्न रूपों में ऊर्जा की पहचान की गई है, जैसे

1. इलेक्ट्रीक ऊर्जा (Electric Energy)
2. प्रकाश ऊर्जा (Light Energy)
3. उष्मा ऊर्जा (Heat Energy)
4. चुम्बकीय ऊर्जा (Magnatic Energy)
5. रासायनिक ऊर्जा (Chemical Energy)
6. यांत्रिक ऊर्जा (Mechanical Energy)
7. स्थिति ऊर्जा (Potential Energy)
8. गति ऊर्जा (Kinetic Energy)
9. पारमाण्विक ऊर्जा (Atomic Energy)
10. नाभिकीय ऊर्जा (Nuclear Energy).

एक प्रकार की ऊर्जा का दूसरी प्रकार की ऊर्जा में परिवर्तन हो सकता है, जैसे

1. इलेक्ट्रीक बल्ब में
   इलेक्ट्रीक ऊर्जा → प्रकाश ऊर्जा + उष्मा ऊर्जा
2. इलेक्ट्रीक इस्त्री, गीजर, हीटर आदि में
   इलेक्ट्रीक ऊर्जा → उष्मा ऊर्जा
3. इलेक्ट्रीक मोटर में
   इलेक्ट्रीक ऊर्जा → यांत्रिक ऊर्जा
4. हाइड्रो-इलेक्ट्रीक पावर-हाऊस में
   पानी की स्थिति ऊर्जा → यांत्रिक ऊर्जा → इलेक्ट्रीक ऊर्जा
5. उष्माधारित इंजन में
   कोयला (या तेल) की रासायनिक ऊर्जा → यांत्रिक ऊर्जा
6. न्यूक्लीयर रिएक्टर में
   पदार्थ का द्रव्यमान → न्यूक्लीयर ऊर्जा
7. सूर्य (या अन्य दूरस्थ ताराओं में)
   नाभिकीय ऊर्जा → प्रकाश ऊर्जा + उष्मा ऊर्जा[26]

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

4. मनुष्य-शरीर में इलेक्ट्रीक ऊर्जा

मनुष्य के शरीर में तंत्रिका-तंत्र सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। मस्तिष्क, सुषुम्ना, तंत्रिकाएं इस समग्र रचना का पूरा जाल शरीर में व्याप्त है। मनुष्य-शरीर के सभी अवयवों का संचालन तंत्रिका-तंत्र द्वारा होता है।[27] ज्ञानवाही तंत्रिकाओं (Sensory Nerves) की न्यूरोन (कोशिकाएं) इन्द्रियों के माध्यम से केन्द्रीय तंत्रिका-तंत्र (मस्तिष्क एवं सुषुम्ना) तक संदेश पहुंचाती है, क्रियावाही तंत्रिकाओं (Motor Nerves) की कोशिकाएं केन्द्रीय तंत्रिका-तंत्र से निर्देशों को मांसपेशियों तक पहुंचाती हैं। ये सारा आदान-प्रदान इलेक्ट्रीक ऊर्जा के माध्यम से चलता है।[28] गुजरात के प्रसिद्ध न्यूरोफिजिशियन डा. सुधीर बी. शाह ने लिखा है ''मस्तिष्क की कोशिकाओं में एक प्रकार का इलेक्ट्रीक करेंट उत्पन्न होता ही रहता है। उसमें एक सातत्य है, लय है यह पूरी प्रक्रिया इलेक्ट्रीकल प्रक्रिया है। यह इलेक्ट्रीक करंट रासायनिक प्रक्रिया से एक कोशिका से दूसरी कोशिका तक पहुंचता है। पूरे तंत्रिका-तंत्र से न्यूरोट्रांसमीटरों एवं रिसेप्टरों का एक अद्‌भुत नेटवर्क है जो एक सैकण्ड के हजारवें भाग में एक सूचना एक हिस्से से दूसरे हिस्से तक पहुंचा सकता है। यह एक रासायनिक प्रक्रिया है। मस्तिष्कीय कोशिकाएं भी अन्य कोशिकाओं की भांति अपना चयापचय संभालती हैं यह एक जैविक प्रक्रिया है।

''टेलिपेथी की तरह एक मस्तिष्क दूसरे मस्तिष्क तक भी संदेशों का आदान-प्रदान कर सकता है। इसे इलेक्ट्रोनिक प्रक्रिया कह सकते हैं।[29]

''मस्तिष्क में उत्पन्न होने वाले इलेक्ट्रीक तंरगों को इ.इ.जी. (Electro-encephelo-gram) के माध्यम से ज्ञात किया जा सकता है। जागृत अवस्था में आंखें बंद कर मस्तिष्क के पीछे के हिस्से से जिस इलेक्ट्रीक प्रक्रिया को नापा जा सकता है, उसे 'अल्फा तरंग' कहते हैं। इन तरंगों की फ्रीक्वेंसी (कम्पन-आवृत्ति) 7 से 13 Hz. नापी गई है। बिलकुल आगे के फ्रंटल कोर्टेक्स वाले हिस्से से सामान्यतः बीटा-रिधम 14 से 40 Hz. फ्रीक्वेंसी वाली तरंगें निकलती हैं। टेम्पोरेल हिस्से से थीटा तरंगों की फ्रीक्वेंसी 4 से 7 Hz. नोट की जाती है। डेल्टा तरंगें वयस्क व्यक्तियों में असामान्य रूप से पाई जाती हैं और कभी-कभी छोटे बच्चों में भी नींद की स्थिति

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

में रिकॉर्ड की जाती है। फिर भी सामान्यतः डेल्टा तरंगें मस्तिष्कीय रूग्णता की सूचक मानी जाती हैं।

''मस्तिष्क में प्रवाहित इलेक्ट्रीक करंट की अति मात्रा से 'मिर्गी' (Epilapsy) की बीमारी पैदा होती है।''[30]

आधुनिक विज्ञान द्वारा प्रतिपादित यह सिद्धांत कि ''मनुष्य की प्रत्येक शारीरिक प्रवृत्ति मनुष्य में विद्यमान इलेक्ट्रीसीटी (विद्युत्) के प्रयोग से ही हो रही है'' स्वीकार करने में जैन मान्यता का कहीं भी अस्वीकार नहीं होता। बल्कि जैन मान्यता के अनुसार ''औदारिक शरीर की प्रत्येक प्रवृत्ति में तैजस शरीर या प्राण का प्रयोग होता है'' ऐसा कहना लगभग वैज्ञानिक सिद्धांत की समानान्तर उक्ति कही जा सकती है। जैन मान्यता का तैजस शरीर या प्राणशक्ति और वैज्ञानिक मान्यता की 'इलेक्ट्रीक ऊर्जा' इन दोनों की पारस्परिकता स्वतः सिद्ध होती है। जैन सिद्धांत में छह पर्याप्ति और दश प्राण का प्रतिपादन भी इस बात का समर्थन करता है।

विज्ञान ने मस्तिष्कीय कोशिकाओं की प्रक्रिया को भली-भांति स्पष्ट किया है। बुद्धि के विकास का आधार भी मस्तिष्कीय न्यूरोन कोशिकाओं के परस्पर बनने वाले सर्किटों की संख्या पर है। मस्तिष्क में विद्यमान करोड़ों-करोड़ों न्यूरोनों के परस्पर सर्किटों की संभाव्य संख्या 10 पर 800 शून्यों को लगाने से होने वाली संख्या है, जिसे गणित की भाषा में 10^{800} के रूप में लिखा जाता है।[31] विश्व का बुद्धिमान से बुद्धिमान व्यक्ति भी अपने जीवन में इसका शतांश भी विकसित नहीं कर पाता है। बच्चा जब से सीखना प्रारम्भ करता है, उसके मस्तिष्क में नित-नए सर्किटों का निर्माण होता चला जाता है।

मस्तिष्क की तरह ही हृदय, मांसपेशियां (Muscles) आदि अवयवों की विद्युत्धारा (इलेक्ट्रीक करंट) का अंकन करने के लिए इ.सी.जी. (Electro-cardio-gram), इ.एम.जी. (Electro-mayo-gram) आदि का प्रयोग किया जाता है। चमड़ी की रोग-निरोधक ऊर्जा का अंकन जी.एस.आर (Galvanic skin response) द्वारा किया जाता है।

विशेष परिस्थितियों में किसी-किसी व्यक्ति का स्पर्श करने पर उसका विद्युत्प्रवाह दूसरे व्यक्ति को 'झटके' (electric shock) के रूप में महसूस हो सकता है।[32] सामान्य परिस्थितियों में इसकी अनुभूति इसलिए नहीं होती कि इसकी मात्रा बहुत स्वल्प होती है। कितनी ही स्वल्प क्यों न हो, यह तो स्पष्ट है ही कि इलेक्ट्रीकल ऊर्जा का परिहार हम नहीं कर सकते। जब तक मानसिक, वाचिक, कायिक प्रवृत्तियां चालू हैं, हम शारीरिक बिजली के प्रयोग से नहीं बच सकते। संक्षेप में कहा जा सकता है

कि मानव-शरीर की सभी विद्युत्-क्रियाएं जीवन की महत्त्वपूर्ण या प्राणाधार क्रियाएं हैं, जिनके बिना जीवन असंभव है।

जैव विद्युत् अथवा प्राण ऊर्जा

डा. राधाशरण अग्रवाल अपने शोधलेख 'जैव विद्युत् अथवा प्राण ऊर्जा' में लिखते हैं ''शरीर की समस्त हलचलों एवं मस्तिष्क की क्रियाओं का एक मात्र स्रोत प्राण अथवा जैव विद्युत् है। यही जैव विद्युत् जीवन तत्त्व बनकर रोम-रोम में व्याप्त है। इसमें चेतना एवं संवेदना दोनों तत्त्व विद्यमान हैं। जिस प्रकार एक कारखाना भौतिक विद्युत् ऊर्जा के सहारे चलता है, उसी प्रकार मानव की समस्त गतिविधियों का आधार यह जैव विद्युत् ही है।

''शरीर के अन्दर व्याप्त जैव विद्युत् की मात्रा पर ही व्यक्ति का उत्कर्ष एवं विकास निर्भर करता है। किसी व्यक्ति विशेष में यदि जैव विद्युत् सामान्य व्यक्ति से अधिक होती है तब वह प्रतिभाशाली, विद्वान्, मनीषी एवं प्रखर बुद्धि का धनी होता है, पर यदि किसी व्यक्ति में यह कम मात्रा में होती है तब वह व्यक्ति मंदबुद्धि होता है और उसको कई प्रकार के मनोरोग घेर लेते हैं।

''इस जैव विद्युत् का सामान्य उपयोग शरीर को गतिशील एवं मन तथा मस्तिष्क को सक्रिय रखने में होता है। किन्तु इसका विशिष्ट एवं अधिक उपयोगी प्रयोग मनोबल, संकल्प-बल एवं आत्मबल बढ़ाने में होता है। इस शक्ति के इसी विशेष दिशा अथवा क्षेत्र में लगाने के कारण ही वह व्यक्ति विशेष प्रतिभाशाली एवं अद्वितीय आत्मबल का धनी बन जाता है। यही जैव विद्युत् साधना द्वारा सूक्ष्म रूप में परिवर्तित एवं संग्रहीत होकर प्राण ऊर्जा अथवा आत्मिक ऊर्जा बन जाती है।

''जैव विद्युत्-शक्ति को विभिन्न देशों में विभिन्न नामों से जाना जाता है। चीन में इसे 'चो एनर्जी', जापान में 'की एनर्जी', यूरोप, अमरीका में 'यूनीवर्सल एनर्जी' तथा 'वाइटल फोर्स' के नाम से पुकारते हैं। शरीर विज्ञानी इसे 'बायोलोजिकल एनर्जी' कहते हैं।

''विज्ञान के क्षेत्र में भी अब प्राणशक्ति के बारे में अनेक शोध प्रारम्भ हो गए हैं। सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक डॉ. एच. के. बट के अनुसार जीवन का प्रमुख आधार प्राण-ऊर्जा ही है। प्रो. हडसन ने इसे सार्वभौमिक जीवन तत्त्व कहा है। नोबुल पुरस्कार विजेता प्रख्यात वैज्ञानिक हाजकिन हक्सले तथा एकलीस ने शरीर के ज्ञान-तंतुओं के बारे में खोज की है। इनकी खोज के अनुसार मानवी ज्ञान-तन्तु एक प्रकार के विद्युत्-संवाही तार हैं जिनके अन्दर निरंतर बिजली दौड़ती रहती है। सम्पूर्ण शरीर में बिखरे हुए इन ज्ञान-तंतुओं को यदि इकट्ठा कर एक लाईन में रखा जाए तो

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

इनकी लंबाई सैकड़ों मील होगी। आप सोच सकते हैं कि इतनी लंबाई वाले तंतुओं को गतिशील रखने के लिए कितनी बिजली की आवश्यकता होगी। एक अन्य वैज्ञानिक डॉ. मैटुची बैनबर्ग ने अपने अनुसंधान निष्कर्ष में लिखा है कि इस शरीर के अन्दर विद्युत् शक्ति के अतुल भण्डार छिपे पड़े हैं। शरीर का प्रत्येक न्यूरोन एक छोटा डायनेमो है। जैव विद्युत् का उत्पादन यही न्यूरोन करते हैं। इन क्रियाओं का केन्द्र मस्तिष्क है। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि एक स्वस्थ नवयुवक 20 वाट विद्युत् उत्पन्न करता है।

''एक दूसरे नोबुल पुरस्कार विजेता प्रसिद्ध चिकित्साशास्त्री जे. ज्योगी ने एक्टीन और मायोसीन नामक दो प्रोटीन तत्त्वों को मनुष्य शरीर में से खोजा है। इन दोनों प्रोटीनों की उत्पत्ति प्राण ऊर्जा से ही मानी गई है। वैज्ञानिकों ने शोध कर बताया है कि मानवी शरीर एक उच्चस्तरीय बिजली-घर है। इसमें से प्राण-विद्युत् तरंगें निरन्तर कम या अधिक मात्रा में निकलती रहती हैं। येल विश्वविद्यालय के सुप्रसिद्ध चिकित्साशास्त्री हेराल्डबरी ने अपने शोध ग्रन्थ में लिखा है कि प्रत्येक प्राणी अपने-अपने स्तर के अनुसार कम या अधिक बिजली उत्पन्न करता है। इस मानवीय विद्युत् को उन्होंने 'लाइफ फील्ड' कहा है। उनके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति की लाइफ फील्ड की मात्रा अलग-अलग होती है और इसी लाइफ फील्ड की मात्रा के अनुसार वह जीवन में उन्नति अथवा अवनति करता है।

''प्रसिद्ध परामनोवैज्ञानिकों की राय है कि सामान्य मनुष्य के शरीर से विकिरत होने वाली विद्युत्-तरंगें उसके स्थूल शरीर से 6 इंच बाहर तक होती हैं, जबकि ज्ञानी पवित्र एवं योगियों के शरीर से यह विद्युत्-तरंगें 3 फीट की दूरी तक विद्यमान रहती हैं। डॉ. ब्राउन ने इस विद्युत् शक्ति को 'बायोलोजिकल इलेक्ट्रिसीटी' कहा है और लिखा है कि यह मनुष्य के सूक्ष्म शरीर से उत्पन्न होती है।

''भारतीय वेदान्त के अनुसार अपनी प्राण-ऊर्जा को प्राणयोग के सहारे बढ़ाया जा सकता है। इसके अन्तर्गत हमारे शरीर में जो सूक्ष्म एवं शक्तिशाली प्राण-चेतना निरन्तर अनियंत्रित प्रवाहित होती रहती है, उसको मन एवं दृढ़ संकल्प-शक्ति के द्वारा नियंत्रित कर एक विशेष बिन्दु विषय पर केन्द्रित किया जाता है अथवा विशेष दिशा में प्रवाहित किया जाता है। इस प्रकार निरन्तर अभ्यास करने पर यह चेतना मूलाधार से सहस्रार तक निर्बाध रूप से जुड़ जाती है।

''कनाडा के प्रसिद्ध मनोविज्ञानी डॉ. हंस सेल्ये ने लिखा है, ''मनुष्य की सर्वोच्च शक्ति प्राण का अधिकांश भाग व्यर्थ के वार्तालाप, क्रियाकलाप में नष्ट हो जाता है। मानसिक तनाव, चिन्ता, अनिद्रा भी इस ऊर्जा का क्षरण करते हैं।'' भारतीय योगशास्त्रियों का मत है कि ''प्राण ऊर्जा का यह क्षरण कुछ विशेष साधन

अपनाने पर रोका जा सकता है तथा क्षरण हुई ऊर्जा की क्षतिपूर्ति भी की जा सकती है। यह साधन है संयमित आहार, चिन्तन-मनन की पवित्रता एवं परोपकार, सेवा-भावना का समावेश। अपनी शक्तियों को अनावश्यक विषयों पर चिंतन, व्यर्थ के वार्तालाप एवं क्रियाकलाप में व्यय होने से रोककर विषय विशेष अथवा धारा में प्रवाहित करने पर प्राण-ऊर्जा केवल अधिक बढ़ेगी ही नहीं बल्कि अत्यंत प्रभावशाली एवं बलशाली भी हो जाएगी। इसी को प्राण साधना अथवा प्राण विद्या कहते हैं।''

''इस साधना का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण भाग है दृढ़ संकल्प तथा मनोबल के द्वारा ब्रह्माण्ड व्यापी समष्टिगत प्राण तत्त्व को आकाश से आकर्षित करना और अपने अंदर धारण करना। जो व्यक्ति अपने शरीर में बसे विशिष्ट प्राण को जितना अधिक अपने वश में कर सकता है उतनी ही अधिक मात्रा में वह समष्टि-प्राण को अपने अन्दर संकलित कर सकता है। इस प्रकार साधक प्राण-जगत की अनेक दिव्य क्षमताओं का धनी हो जाता है। यह मार्ग सभी सामान्य व्यक्तियों के लिए खुला हुआ है।

''किसी व्यक्ति के चेहरे अथवा शरीर के चारों ओर बिखरे हुए तेजोवलय को देखकर हम जान सकते हैं कि उस व्यक्ति में कितनी जैव विद्युत्-शक्ति है। किन्तु यह तेजोवलय अथवा आभामण्डल इन स्थूल चक्षुओं से नहीं देखा जा सकता। इसके लिए सूक्ष्म दृष्टि की आवश्यकता है। पाश्चात्य जगत में किर्लियन फोटोग्राफी द्वारा इसे नापने का प्रयास चल रहा है।

''निःसंदेह मनुष्य एक जीता-जागता विद्युत्-घर है। किन्तु यह प्राण-विद्युत् भौतिक विद्युत् की अपेक्षा असंख्य गुना बलशाली एवं प्रभावी है। प्राण-विद्युत् पर नियंत्रण, परिशोधन एवं उसका संचय तथा केन्द्रीयकरण करने से मानव असामान्य शक्तियों का स्वामी बन सकता है। अभी तो वैज्ञानिकों ने केवल स्थूल एवं भौतिक विद्युत् के चमत्कार जाने हैं और जिनको जानकर वे आश्चर्यचकित हैं। जिस दिन मानवी शरीर में विद्यमान इस जैव विद्युत् शक्ति के अथाह भण्डार का पता लगेगा उस दिन अविज्ञात क्षेत्र के असंख्य आश्चर्यचकित रहस्योद्घाटन का क्रम आरम्भ हो जाएगा।''[33]

विद्युत्-क्रियाएं जीवन की महत्त्वपूर्ण या प्राणाधार क्रियाएं हैं, जिनके बिना जीवन असंभव है।

'इलेक्ट्रीसीटी' अपने आप में क्या है? शारीरिक विद्युत्-प्रवाह और तारों में बहने वाला विद्युत्-प्रवाह समान है या भिन्न? आकाश में उत्पन्न होने वाले विद्युत्-डीस्चार्ज (निरावेशन) जिसे बिजली का चमकना (lightning) कहा जाता है और तारों में बहने वाले इलेक्ट्रीक प्रवाह में कोई अन्तर है या नहीं? आदि प्रश्नों पर अब हमें विचार करना है।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

5. विज्ञान की दृष्टि में विद्युत् (Electricity)

अंग्रेजी भाषा में दो शब्दों का प्रयोग उपलबध होता है

1. इलेक्ट्रीसीटी (electricity) यानी इलेक्ट्रीक ऊर्जा या प्रवाह (current)।

2. लाईटनिंग (lightning) यानी आकाश में चमकने वाली विद्युत् या बिजली।

हिन्दी और गुजराती में इन दोनों के लिए एक ही शब्द का प्रयोग होता है बिजली (या विद्युत्), फिर भी वास्तव में इनमें जो भिन्नता है, उसकी स्पष्ट समझ आवश्यक है। इसे समझने के लिए विज्ञान की मूल अवधारणाओं को स्पष्ट करना अपेक्षित है।

वैज्ञानिक मान्यता के अनुसार प्रत्येक मूल पदार्थ (element) बहुत बड़ी संख्या में परमाणुओं के संगठन से निर्मित है। प्रत्येक पदार्थ के परमाणु (atom) की विशिष्ट रचना के कारण पदार्थों में भिन्नता आती है। सभी पदार्थों की परमाणुओं की मूल संरचना में समानता है परमाणु के दो हिस्से हैं 1. केन्द्रक (nucleus), 2. परिधि। केन्द्रक में दो प्रकार के कण होते हैं 1. प्रोटोन, 2. न्यूट्रोन। परिधि में केवल एक ही प्रकार के कण होते हैं इलेक्ट्रोन।[34] ये मौलिक कण ही अपने विशिष्ट गुणधर्मों के द्वारा 'विद्युत्' यानी इलेक्ट्रीसीटी की प्रक्रिया के मूल में हैं। इसलिए इनकी प्रकृति एवं प्रक्रियाओं को समझे बिना न तो विद्युत् यानि इलेक्ट्रीसीटी और विद्युत् यानि आकाश में चमकने वाली बिजली (lightning) के बीच के अन्तर को समझा जा सकता है और न अग्नि (fire) और इलेक्ट्रीसीटी के अन्तर को भी स्पष्टतया जाना जा सकता है।

यहां पर संक्षेप में कुछ मुख्य बातें दी जा रही हैं

1. पदार्थ में संहति या द्रव्यमान (mass) और विद्युत्-आवेश (electric charge) ये दो मौलिक गुण माने जाते हैं।[35] इलेक्ट्रोन, प्रोटोन और न्यूट्रोन में ये गुण जिस रूप में हैं, उसे निम्न कोष्ठक[36] में बताया गया है

कण	द्रव्यमान	विद्युत् आवेश
इलेक्ट्रोन	10^{-27} ग्राम	ऋण 1 यूनिट
प्रोटोन	10^{-24} ग्रम	धन 1 यूनिट
न्यूट्रोन	10^{-24} ग्राम	शून्य 0

2. हाइड्रोजन एटम[37] सब पदार्थों के एटमों में सबसे कम द्रव्यमान वाला है। इसे 'परमाणु-भार' की इकाई माना जाता है। इस प्रकार हाइड्रोजन का परमाणु-भार एक है।

3. हाइड्रोजन के एक एटम में एक इलेक्ट्रोन और एक प्रोटोन होता है, न्यूट्रोन नहीं होता। इलेक्ट्रोन की संख्या के आधार पर 'परमाणु-क्रमांक' (atomic number) निर्धारित होता है :

(i) हाइड्रोजन का परमाणु-क्रमांक एक (1) है।

(ii) ऑक्सीजन का परमाणु-क्रमांक 8 है तथा परमाणु-भार 16 है, क्योंकि उसके परमाणु में 8 इलेक्ट्रोन, 8 प्रोटोन और 8 न्यूट्रोन होते हैं।

(iii) तांबा धातु है। धातुओं की विशिष्ट परमाणु-रचना के कारण उसमें विद्युत् का प्रवाह आसानी से चल सकता है।[38] तांबे का परमाणु-क्रमांक 29 है। उसका परमाणु-भार 64 है, क्योंकि उसके परमाणु में 29 इलेक्ट्रोन, 29 प्रोटोन और 35 न्यूट्रॉन होते हैं। (सभी मूल पदार्थों के परमाणु में कितने-कितने इलेक्ट्रोन आदि होते हैं तथा प्रत्येक मूल पदार्थ का परमाणु-क्रमांक एवं परमाणु-भार कितना है, उसके लिए 'Periodic Table' द्रष्टव्य है, जो परिशिष्ट 2 में दिया गया है।)

प्रत्येक परमाणु में इलेक्ट्रोन ओर प्रोटोन की संख्या समान होती है और न्यूट्रोन विद्युत्-आवेश-रहित होते हैं, इसलिए परमाणु स्वयं भी विद्युत्-आवेश-रहित ही होता है। किन्तु जब परिधिगत इलेक्ट्रोन परमाणु से मुक्त होकर बाहर निकल जाता है, तब वह ऋण-आवेश वाला सवतंत्र कण बन जाता है तथा जिस परमाणु से वह निकला है, वह धन-विद्युत् आवेश वाला 'आयन' बन जाता है। धातुओं में परमाणु की अंतिम परिधि से ऐसे स्वतंत्र इलेक्ट्रोन निकलते रहते हैं। दरअसल में जब धातु-पदार्थ का निर्माण होता है, तब उसके घटक परमाणुओं में से 'वेलेन्स' इलेक्ट्रोन अपने-अपने पितृ-परमाणुओं से मुक्त होकर स्वतंत्र विचरण करते हैं।

विद्युत्-प्रवाह की व्याख्या में बताया गया है[39] ''इलेक्ट्रोन धातु के अणु-गुच्छों (molecules)[40] के बीच की खुली जगह में अस्त-व्यस्त गति करते रहते हैं। जिन परमाणुओं से ये इलेक्ट्रोन मुक्त हुए हैं, वे अब धन आवेश वाले बन जाते हैं। इन्हें 'आयन' कहा जाता है। धातुओं की अपनी विशिष्ट संरचना होती है जिनमें सारे परमाणु स्फटिक (crystal) की भांति व्यवस्थित स्थित होते हैं।[41] आयन (धन आवेश वाले परमाणु) इस स्फटिक-रचना में अपने नियमानुसार निश्चित स्थान ग्रहण कर लेते हैं। इस निश्चित आकृति के कारण एक विशेष भौमितिक संरचना बन जाती है। अब, जैसे बताया गया कि जब मुक्त इलेक्ट्रोन आयनों के बीच के अवकाश में अस्त-व्यस्त

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

गति करते रहते हैं, तब धातु, जो विद्युत् का सुवाहक है, में विद्युत् का प्रवाह नहीं बहता है। पर यदि धातु के दोनों छोर पर वोल्टेज में अन्तर रखा जाए तो धातु, जो विद्युत् की सुचालक (conductor) होती है, में विद्युत् क्षेत्र (electric field)[42] पैदा होता है। इलेक्ट्रोनों पर इस क्षेत्र की विरोधी दिशा में बल (force) लगता है और वे उस दिशा में ढकेल दिए जाते हैं। इसके परिणामस्वरूप एक विद्युत्-प्रवाह (electric current)[43] सुचालक धातु में बहना शुरू होता है। सुचालक पदार्थ के किसी भी तिरछे काट में से प्रति इकाई समय में गुजरने वाले विद्युत्-आवेश की संहति को विद्युत्-प्रवाह के मापक के रूप में माना जाता है।''

इस प्रकार जहां-जहां इलेक्ट्रीक चार्ज (विद्युत्-आवेश) विद्यमान होता है, वहां-वहां उसके चारों ओर के आकाश (space) में एक इलेक्ट्रीक फील्ड (विद्युत्-क्षेत्र) उत्पन्न हो जाता है, जहां उसका प्रभाव अनुभव किया जा सकता है। यदि इस विद्युत्-क्षेत्र में दूसरा कोई इलेक्ट्रीक चार्ज रखा जाए तो उस पर 'इलेक्ट्रीक फोर्स' (विद्युत्-बल) लगना शुरू हो जाता है।

पदार्थों में चालकता के गुणधर्म के आधार पर उनका वर्गीकरण सुचालक, अर्धचालक और कुचालक के रूप में किया जाता है। धातुएं विद्युत् की सुचालक हैं, क्योंकि उनकी परमाणु-रचना ऐसी है जिनमें से इलेक्ट्रोनों को आसानी से प्राप्त किया जा सकता है। जिन पदार्थों के परमाणुओं में इस प्रकार की सुविधा नहीं हो सकती, वे कुचालक हो जाते हैं। जो अर्धचालक पदार्थ हैं, उनमें विशेष परिस्थितियों में यह सुविधा मिलती है। उदाहरणार्थ सिलिकोन के परमाणु में यह गुणधर्म होने से उसका प्रयोग अर्धचालक (semi-conductor) के रूप में किया जाता है। लकड़ी, रबड़ आदि पदार्थ कुचालक (bad conductor) होने से उन्हें 'इन्सुलेटर' के रूप में काम में लिया जाता है।[44]

इलेक्ट्रीसीटी दो प्रकार की है

1. स्थित विद्युत् (Static Electricity)

2. चल विद्युत् (Current Electricity)

स्थित विद्युत् (Static Electricty) सूखी हवा में सूखे बालों को रबड़ की कंघी से संवारते समय यह अनुभव होता है कि जैसे बालों से कोई चीज निकल रही हो, उसकी चड़-चड़ की आवाज भी सुनाई देती है। उस कंघी से यदि छोटे-छोटे कागज के टुकड़ों को छुआ जाए तो कागज के टुकड़े उसके साथ चिपक जाते हैं। यह प्रक्रिया 'स्थित विद्युत्' का प्रभाव दर्शाती है। इससे यह पता चलता है कि बालों के अणुओं से इलेक्ट्रोन अलग होकर रबड़ की कंघी पर जमा हो जाते हैं और इन ऋण आवेश युक्त कणों से कागज के टुकड़े जैसे हल्के पदार्थ आकृष्ट हो जाते हैं।

'स्थित विद्युत्' के विषय में ई.पू. 600 में यूनानी दार्शनिक (Thales) ने प्रयोग किए थे और पाया था कि तृणमणि नामक पेड़, जिसे ग्रीक भाषा में Electrum तथा अंग्रेजी में amber कहते हैं, उसके गोंद कड़े रस से बनी हुई छड़ को ऊनी कपड़े से जब रगड़ा जाता है तब उस छड़ के द्वारा कागज के छोटे टुकड़े, छोटे-छोटे सूखे पत्ते, पक्षियों के पंख आदि को आकृष्ट किया जाता है। इस्वी सन् 100 में डॉ. विलियम गिलबर्ट ने कुछ अन्य पदार्थों पर भी प्रयोग किए। कांच की छड़ को रेशमी कपड़े से रगड़ने पर तथा एबोनाइट (अबनूस) की छड़ को फ्लेनल के कपड़े से रगड़ने पर भी ऐसा ही आकर्षण पैदा हो जाता है। जांच करने पर पता चला है कि कांच की छड़ पर धनात्मक और रेशमी कपड़े पर ऋणात्मक इलेक्ट्रीक चार्ज जमा हो जाता है। एबोनाइट, तृणमणि (Amber) तथा रबड़ की कंघी में ऋणात्मक तथा फ्लेनल, ऊनी कपड़ा एवं बालों पर धनात्मक इलेक्ट्रीक चार्ज जमा होता है। तृणमणि (Amber) का ग्रीक नाम इलेक्ट्रम (Electrum) होने के कारण ऋणात्मक कणों का नाम इलेक्ट्रॉन हुआ तथा इस ऊर्जा को इलेक्ट्रीसीटी नाम दिया गया।[45]

आकाश में चमकने वाली विद्युत् जिसे लाईटनिंग कहा जाता है, बादलों में जमा इलेक्ट्रीक चार्ज का पृथ्वी की ओर होने वाला डिस्चार्ज है। इलेक्ट्रीक चार्ज को सुवाहक मिलने पर वह सुरक्षित रहता है और उसमें करंट प्रवाह के रूप में बहता है। यही अंतर है इलेक्ट्रीसीटी और लाईटनिंग में। इलेक्ट्रॉन स्थित अवस्था में स्टेटिक इलेक्ट्रसीटी के रूप में होता है। सुवाहक में प्रवाहित रूप में करंट इलेक्ट्रसीटी (चल विद्युत्) के रूप में तथा बादलों से होने वाले हेवी डीस्चार्ज की अवस्था में विद्युत् या लाईटनिंग के रूप में प्रकट होता है। ये स्टेटिक इलेक्ट्रीसीटी का उत्पादन सामान्यतः ऊनी कपड़े, पोलीथीन शीट, नाईलोन आदि को मामूली रगड़ लगने पर अथवा धोने के पश्चात् सूखने के बाद बाल उलटने-पलटने पर होता हुआ दिखाई देता है। इससे आवाज के साथ-साथ चिनगारी (spark) भी निकलती है। विज्ञान के अनुसार यह इलेक्ट्रॉन की ऊर्जा का प्रकाश की ऊर्जा के रूप में परिवर्तन है।

विद्युत्-चुम्बकीय-क्षेत्र अथवा वि.चु. फिल्ड (Electro-Magnetic-Field)

ओस्टेर्ड नाम वैज्ञानिक ने सन् 1819 में खोजा था कि जब सुचालक पदार्थ (जैसे धातु के तार) में से विद्युत्-प्रवाह गुजरता है तब उसके आस-पास एक विद्युत्-चुम्बकीय क्षेत्र उत्पन्न हो जाता है। यदि यह विद्युत्-प्रवाह तेज होता है तो उत्पन्न होने वाला विद्युत्-चुम्बकीय-क्षेत्र भी तेज होता है। इस खोज के आधार पर भौतिक विज्ञान में एक नई शाखा का उदय हुआ जिसमें 'विद्युत्' और 'चुम्बकीय' प्रभावों को जोड़कर उनके गुणधर्मो का अध्ययन प्रारम्भ हुआ। इसे 'विद्युत्-चुम्बकीयवाद' (electro-magnetism) के नाम से पुकारा गया। इसी पर आधारित

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

'इलेक्ट्रो-डायनेमिक्स' में विद्युत्-चुम्बकीय प्रभावों के सम्बन्ध में नियमों आदि की खोज हुई। विद्युत्-प्रवाह के चुम्बकीय प्रभावों को नापने के लिए 'बायो-सावर्ट' नियम आदि का प्रयोग किया जाता है।[46] जैसे इलेक्ट्रीक चार्ज से इलेक्ट्रीक फील्ड और चुम्बक से चुम्बकीय फील्ड बनता है, वैसे ही विद्युत्-प्रवाह से विद्युत्-चुम्बकीय फील्ड अस्तित्व में आता है। इसकी ऊर्जा 'विद्युत्-चुम्बकीय ऊर्जा' के रूप में जानी जाती है।

विद्युत्-आवेश के चारों ओर विद्युत्-चुम्बकीय क्षेत्र का घेरा बना रहता है। गतिमान स्थिति में इस क्षेत्र की गति तरंग के रूप में होती है। इसका वेग भी प्रकाश के वेग जितना होता है।[47] एक विद्युत्-आवेश दूसरे विद्युत्-आवेश पर एक बल (force) पैदा करता है। इस आधार पर विद्युत्-चुम्बकीय प्रेरण (electro-magnetic-induction) की क्रिया होती है।

जब चुम्बक के ऊपर तार को कुण्डली के रूप में बांधकर उसे घुमाया जाता है तो विद्युत्-आवेश एवं गतिमान चुम्बक के परस्पर सम्बन्ध के आधार पर विद्युत्-चुम्बकीय प्रेरण के कारण तार में विद्युत्-प्रवाह पैदा हो जाता है।[48]

संक्षेप में कहा जाए तो हमारी दुनिया एक प्रकार के विद्युत्-चुम्बकीय तरंगों की दुनिया है, जिसमें विद्युत्-चुम्बकीय ऊर्जा अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य करती है। इन विद्युत्-चुम्बकीय तरंगों के साथ हम सब किसी-न-किसी रूप में संलग्न हैं। इन तरंगों से हम प्रतिक्षण प्रभावित हुए बिना नहीं रहते।

उन्नीसवीं शताब्दी में मैक्सवेल ने विद्युत् और चुम्बकत्व के नियमों को गणित के समीकरणों के रूप में प्रस्तुत कर दिया। इन नियमों में गोस का नियम, एम्पीयर का नियम, फराडे का नियम तथा चुम्बकीय-बल-रेखाओं (lines of force) द्वारा रचित बंध सर्किट जैसे तथ्यों का समावेश होता है।[49]

विद्युत्-चुम्बकीय-ऊर्जा (electro-magnetic energy) और विद्युत्-चुम्बकीय-तरंगों (electro-magnetic waves) के स्वरूप से स्पष्ट होता है कि इलेक्ट्रीसीटी या विद्युत् स्वयं 'पौद्गलिक' परिणमन है।[50] जैसे उष्मा, प्रकाश, ध्वनि और चुम्बकत्व की ऊर्जा अपने आप में अचित्त पौद्गलिक ऊर्जा है[51] वैसे ही विद्युत्-चुम्बकीय ऊर्जा भी अपने आप में अचित्त पौद्गलिक परिणमन ही है। इसमें कहीं भी सचित्त तेउकाय या अन्य कोई जीव की उत्पत्ति होना सम्भव नहीं है। वैसे, प्रकाश भी स्वयं विद्युत्-चुम्बकीय ऊर्जा का ही रूप है।[52] सारे दृश्य रंग इसी ऊर्जा के भिन्न-भिन्न तरंग-दैर्घ्य और कम्पन-आवृत्ति (frequency) वाली तरंगें हैं।[53]

मैक्सवेल के विद्युत्-चुम्बकीयवाद की स्थापना के 32 वर्षों पश्चात् वैज्ञानिक हर्ट्झ (Hertz) ने प्रयोगशाला में विद्युत्-चुम्बकीय तरंगों के अस्तित्व को प्रमाणित कर

दिया था।[54] मुख्य रूप से विद्युत्-चुम्बकीय तरंगों की लाक्षणिकता इस प्रकार है[55]

1. उद्गम स्थान से सुदूर क्षेत्र तक विद्युत्-क्षेत्र (electric-field) और चुम्बकीय-क्षेत्र के वेक्टर के दोलन समान कला वाले होते हैं।

2. विद्युत्-क्षेत्र और चुम्बकीय क्षेत्र की दिशाएं तरंग-प्रसरण-दिशा के तल से लम्बकोण वाले तथा परस्पर भी लम्ब-कोण वाले तल में प्रसारित होती हैं।

3. ये तरंगें अयांत्रिक और लंब-तरंगों के रूप में होती हैं।

4. सभी विद्युत्-चुम्बकीय तरंगों का वेग शून्यावकाश में अचलांक 'सी' (C) द्वारा निर्दिष्ट है, जिसका मूल्य (3×10^8) मीटर/प्रति सैकिण्ड होता है अथवा 3 लाख किलोमीटर प्रति सैकिण्ड माना गया है।

5. किसी भी माध्यम में उसका वेग माध्यम के विद्युत्-चुम्बकीय गुणधर्मों पर आधारित होता है।

भिन्न-भिन्न तरंग-दैर्घ्य (wave-length) वाली विद्युत्-चुम्बकीय-तरंगों का वर्णपट उनकी तरंग-दैर्घ्य के आधार पर निर्मित है। 10^{-8} मीटर से लेकर 10^{15} मीटर तक की तरंग-दैर्घ्य वाली विद्युत्-चुम्बकीय तरंगें इस वर्णपट में अंकित हुई हैं। अपनी आंखों से दिखाई देने वाले रंगों के प्रकाश की तरंगें 4000 से 8000 एंग्स्ट्रम यूनिट तरंग दैर्घ्य वाली अंकित की गई है। (1 एंगस्ट्रम युनिट 10^{-8} सेंटीमीटर है।) लाल रंग की तरंगें अधिक लंबी तथा बैंगनी रंग की छोटी होती हैं। संलग्न चार्ट में सभी तरंगों (वर्णपट) के तरंग-दैर्घ्य और कम्पन आवृत्ति को क्रम-रूप में दर्शाया गया है।

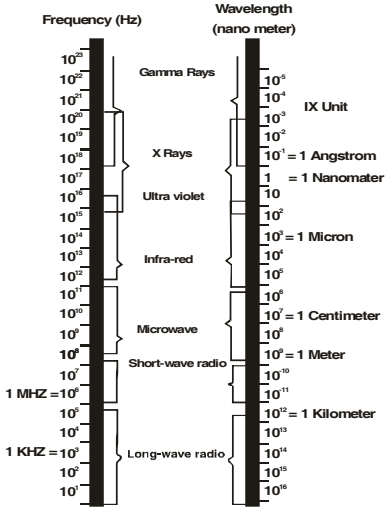

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

दृश्य रंगों के अतिरिक्त अन्य तरंगें अदृश्य कोटि की हैं।[56] उष्मा-ऊर्जा की तरंगें 'इन्फ्रा रेड' (अवरक्त) तरंगों के रूप में विकसित होती हैं।[57] बैंगनी तरंगों से छोटी अदृश्य तरंगें परा-बैंगनी किरणों के रूप में हैं।[58]

एक्सरे भी सूक्ष्मतर वि.चु. तरंगें हैं।[59] गतिमान विद्युत्-आवेश (चार्ज) की ऊर्जा का विकिरण जिन विद्युत्-चुम्बकीय तरंगों के रूप में होता है, उनका तरंग-दैर्घ्य 300 मीटर और कम्पन-आवृत्ति (frequency) 10^6 हर्ट्ज लगभग होती है। भारतीय वैज्ञानिक जगदीशचन्द्र बसु ने प्रयोगशाला में 5 मिलीमीटर से 25 मिलीमीटर तक की तरंग-दैर्घ्य वाली तरंगों को पैदा करने में सफलता प्राप्त की थी, जिन विद्युत्-तरंगों के आधार पर ही आधुनिक 'दूर-संचार' की प्रक्रिया का विकास सम्भव हुआ।[60] आजकल छोटी तरंगों में 100 मीटर जितनी तथा बड़ी तरंगों में 10 लाख मीटर तक की दैर्घ्य वाली तरंगों का प्रयोग रेडियो तरंगों में या दूर-संचार में किया जाता है। इन रेडियो-तरंगों के फलस्वरूप एक क्रांति दूर-संचार क्षेत्र में आई है।

आयनीकृत वायु में विद्युत् का निरावेशीकरण

सामान्यतः सूखी और रजकण-मुक्त शुद्ध हवा सामान्य वातावरणीय दबाव पर विद्युत् की कुचालक होती है। इसका कारण यह है कि उसमें उस स्थिति में कोई भी स्वतंत्र आयन नहीं होते न धन आयन होते हैं, न ऋण आयन। इसलिए उसमें से कोई विद्युत्-प्रवाह नहीं गुजर सकता। यदि किसी कारण से उसका आयनीकरण हो जाए, तो वह विद्युत् की सुचालक बन जाती है। आयनीकरण का एक कारण है उसमें रहे हुए दो धातु के इलेक्ट्रोड के बीच विद्यमान उच्च वाल्टेज यानि विद्युत् स्थितिमान का अन्तर या पोटेन्शियल डिफ्रेंस।

इस प्रकार किसी नलिका में भरे हुए वायु में छोर पर रहे हुए दो धातु के इलेक्ट्रोड के बीच जब उच्च वाल्टेज स्थापित किया जाता है तब वायु का आयनीकरण हो जाता है। उसमें विद्युत् का निरावेशीकरण हो सकता है, जो एक विद्युत्-चुम्बकीय तरंग या ऊर्जा के रूप में दिखाई देता है। इसे सामान्यतः एक स्पार्क के रूप में देखा जाता है। इसी प्रक्रिया का प्रयोग नलिका में रही हुई गैस के प्रेसर को ज्यादा कम कर विभिन्न रूपों में किया जाता है।

नलिका में रही हुई वायु या किसी भी प्रकार के बाष्प (vapour) के प्रेसर को कम करने के लिए वेक्यूम पम्प का इस्तेमाल किया जाता है। उसकी विभिन्न स्थितियां बनती हैं।

1. जब तक ट्यूब के भीतर का प्रेसर 10 मी.मी. (पारे का) से भी अधिक होता है तब तक गैस में कोई निरावेशन नहीं (discharge) होता यानि तब तक वायु

कुचालक ही बनी रहती है।

2. जब भीतर का प्रेसर 10 मि.मि. से कम किया जाता है, तब दोनों इलेक्ट्रोड के बीच वायु में से विद्युत् का निरावेशन होता है तथा उस समय कड़-कड़ ध्वनि भी पैदा होती है। ध्वनि भी ऊर्जा का एक विकिरण है।

3. जब भीतर का दबाव 5 एम.एम. से कम किया जाता है, विद्युत् का निरावेशन तेज प्रकाश के रूप में होता है।

4. 2 मि.मि. के लगभग प्रेसर किए जाने पर एक लंबी चमकदार प्रकाश-धारा धन इलेक्ट्रोड (एनोड) से लगभग ऋण इलेक्ट्रोड (केथोड) तक बहती है तथा केथोड के समीप एक नकारात्मक चमक पैदा होती है। इसके और प्रकाशधारा के बीच सम्पूर्ण अंधकार दिखाई देता है।

5. जब प्रेसर लगभग 1 मि.मि. तक कम कर दिया जाता है तो टूटी हुई धारा के बीच धब्बे उभरते हैं। कहीं प्रकाश, कहीं अंधकार इस प्रकार का क्रम बनता है।

6. जब प्रेसर .01 मि.मि. का दिया जाता है, तब पूरी नलिका फिर अंधकारमय हो जाती है। उस समय केथोड से एक अदृश्य कण विकिरित होते हैं, जिन्हें केथोड किरणें कहा जाता है। ये केथोड किरणें जब सामने वाले काच के छोर पर गिरती हैं तब वह चमक उठता है। यह चमक प्रतिदीप्ति प्रक्रिया के कारण होती है।

7. जब प्रेशर 10^{-4} मि.मि. से कम किया जाता है, तब निरावेशन लगभग समाप्त-सा हो जाता है।

इसी प्रक्रिया का उपयोग फ्लोरेसेंट ट्यूब (ट्यूबलाइट), नियोन साईन, फ्लडलाइट्स, मर्क्यूरी लेम्प्स, सोडियम लेम्प्स आदि में किया जाता है।[61] इस सम्बन्ध में अधिक चर्चा प्रस्तुत भाग-1 के 10वें प्रभाग में की जाएगी।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

6. अग्नि का स्वरूप

जैन दर्शन में तेउकाय (अग्नि) के जीव

जैन दर्शन के अनुसार पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेउकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक और त्रसकायिक ये छह प्रकार के जीव होते हैं। आचारांग[62], दशवैकालिक[63], प्रज्ञापना[64] आदि में इनका विस्तृत वर्णन उपलब्ध है। तेउकायिक जीव वे जीव हैं जिनका शरीर 'अग्नि' के रूप में होता है। आचारांग सूत्र में तेउकायिक जीवों के अस्तित्व को दृढ़तापूर्वक स्वीकार करते हुए बताया गया है ''जो अग्निकायिक जीव-लोक के अस्तित्व को अस्वीकार करता है, वह अपनी आत्मा के अस्तित्व को अस्वीकार करता है।''[65] सूक्ष्म तेउकायिक जीव सम्पूर्ण लोक में व्याप्त हैं तथा सूक्ष्मता के कारण अप्रतिहत होते हैं। बादर तेउकायिक जीव के भिन्न-भिन्न प्रकारों का वर्णन यत्किञ्चित् भिन्नता के साथ मिलता है। दशवैकालिक सूत्र में उसके आठ प्रकार बतलाए हैं 1. अग्नि, 2. अंगारे, 3. मुर्मुर, 4. अर्चि, 5. ज्वाला, 6. अलात, 7. शुद्धाग्नि, 8. उल्का।[66] प्रज्ञापना सूत्र में उसके 12 भेद मिलते हैं 1. अंगारे, 2. ज्वाला, 3. मुर्मुर, 4. अर्चि. 5. अलात, 6. शुद्धाग्नि, 7. उल्का, 8. विद्युत्, 9. अशनि, 10. निर्धात, 11. संघर्षसमुत्थित, 12. सूर्यकांतमणिनिसृत।[67] दशर्वकालिक सूत्र के व्याख्या-ग्रंथों के आधार पर आचार्य महाप्रज्ञ ने इनके अर्थ इस प्रकार किए हैं

1. **अग्नि (अगणिं) :**
   लोह-पिंड में प्रविष्ट स्पर्शग्राह्य तेजस् को अग्नि कहते हैं।[69]
2. **अंगारे (इंगालं) :**
   ज्वालारहित कोयले को अंगार कहते हैं। लकड़ी का जलता हुआ धूम-रहित खण्ड।[70]
3. **मुर्मुर (मुम्मुरं) :**
   कंडे या करसी की आग, तुषाग्नि चोकर या भूसी की आग, क्षारादिगत अग्नि को मुर्मुर कहते हैं। भस्म के विरल अग्नि-कण मुर्मुर हैं।[71]

4. **अर्चि (अच्चिं) :**
   मूल अग्नि से विच्छिन्न ज्वाला, आकाशनुगत परिच्छिन्न अग्निशिखा, दीपशिखा के अग्रभाग को अर्चि कहते हैं।[72]
5. **ज्वाला (जालं)**
   प्रदीप्ताग्नि से प्रतिबद्ध अग्निशिखा को ज्वाला कहते हैं।[73]
6. **अलात (अलायं) :**
   अधजली लकड़ी।[74]
7. **शुद्ध अग्नि (सुद्धागणिं) :**
   इंधनरहित अग्नि।[75]
8. **उल्का (उक्कं) :**
   गगनाग्नि विद्युत् आदि।[76]

प्रज्ञापना सूत्र की टीका में आचार्य मलयगिरि ने इन शब्दों के कुछ-कुछ भिन्न अर्थ किए हैं[77]

1. **अंगारे** धूम-रहित।
2. **ज्वाला** जाज्वल्यमान खदिर आदि (लकड़ी) की ज्वाला अथवा अग्नि से प्रतिबद्ध दीपशिखा।
3. **मुर्मुर** भूसी आदि की भस्म मिश्रित अग्निकणरूप।
4. **अर्चि** अग्नि से प्रतिबद्ध ज्वाला।
5. **अलात** अधजली लकड़ी।
6. **शुद्धाग्नि** लोहपिंड में प्रविष्ट अग्नि।
7. **उल्का** आकाशीय पिंड-खंड के पतन से उत्पन्न अग्नि।
8. **विद्युत्** आकाशीय बिजली का चमकना।
9. **अशनि** आकाशीय बिजली के गिरने वाले अग्निमय कण।
10. **निर्धात** वैक्रिय अशिनपात।
11. **संघर्षसमुत्थित** अरणी आदि लकड़ी के निर्मथन से समुद्भूत।
12. **सूर्यकांतमणिनिःसृत** सूर्य की प्रखर किरणों का सम्पर्क होने पर सूर्यकांतमणि से जो उत्पन्न होती है।

आचारांग-निर्युक्ति में दी गई सूची इस प्रकार है[79]

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

''इस जगत में तेउकाय (अग्नि) के दो प्रकार हैं 1. सूक्ष्म तेउकाय, 2. बादर तेउकाय।

सूक्ष्म तेउकाय (अग्नि) संपूर्ण लोक में है, और बादर तेउकाय मात्र अढाई द्वीप-समुद्र में ही है।

''बादर तेउकाय के पांच प्रकार इस प्रकार हैं

1. अंगारे, 2. अग्नि, 3. अर्चि, 4. ज्वाला, और 5. मुर्मुर यह पांच प्रकार बादर तेउकाय (अग्नि) के सूत्र में कहे गए हैं

1. अंगारे जहां धूम और ज्वाला न हो ऐसा जला हुआ इंधन।

2. अग्नि इंधन में रहा हुआ जलन क्रिया स्वरूप, विद्युत् (आकाश में चमकने वाली), उल्का और अशनि (वज्र) के संघर्ष से उत्पन्न होने वाला तथा सूर्यकांतमणि से संसरण (प्रगट) होने वाला इत्यादि।

3. अर्चिः इंधन के साथ रहा हुआ ज्वाला स्वरूप।

4. ज्वाला अंगारे से अलग हुई जलती ज्वालाएं।

5. मुर्मुर कोई-कोई अग्नि के कण वाला भस्म।

बादर अग्निकाय के ये पांच भेद हैं।

दशवैकालिक के व्याख्या-ग्रंथों जिनदासचूर्णि, अगस्त्यसिंहचूर्णि और हारिभद्रीय टीका द्वारा प्रदत्त अर्थों तथा आचारांग-निर्युक्ति की तुलना जब प्रज्ञापना की टीका से करते हैं, तो स्पष्ट होता है कि जहां अंगारे, ज्वाला, मुर्मुर, अर्चि और अलात के विषय में बहुतांश में समान अर्थ है, वहां अग्नि, शुद्धाग्नि, उल्का, विद्युत्, अशनि, निर्घात, संघर्ष-समुत्थित तथा सूर्यकांतमणिनिःसृत के विषय में अर्थ-भेद अथवा व्याख्या का अभाव है।

दशवैकालिक-व्याख्याओं में 'अग्नि' को 'लोहपिण्डप्रविष्ट' तेजस् के रूप में बताया गया है, वहां प्रज्ञापना की टीका में शुद्धाग्नि को 'लोह-पिण्ड' आदि में स्थित अग्नि के रूप में बताया है; जबकि दशवैकालिक हारिभद्रीय टीका और जिनदासचूर्णि दोनों में निरिन्धन अग्नि को शुद्धाग्नि के रूप में माना है। आचरांग निर्युक्ति में 'अग्नि' के अन्तर्गत इंधन में रही हुई जलन क्रिया स्वरूप अग्नि के साथ विद्युत्, उल्का, अशनि, संघर्ष-उत्पन्न और सूर्यकांतमणि-निःसृत अग्नि को लिया है, जबकि प्रज्ञापना (मूल) में विद्युत् आदि छह भेद स्वतंत्र रूप में ही हैं और 'अग्नि' को स्वतंत्र भेद के रूप में नहीं माना है; दशवैकालिक (मूल) में विद्युत् आदि छह भेदों में केवल उल्का का उल्लेख है ओर व्याख्या में उसे 'गगनाग्नि' तथा 'विद्युत्' (आकाशीय

बिजली) आदि के रूप में बताया है।

इन सभी भेदों की समीक्षा करने पर स्पष्ट हो रहा है कि अग्नि के भेदों के विषय में परम्परा का क्रमिक विकास हुआ है। दशवैकालिक की सूची पूर्वतर है और पण्णवणा की उत्तरकालीन। दिगम्बर ग्रंथों में मूलाचार[79] में अंगारे, ज्वाला, अर्चि, मुर्मुर, शुद्धाग्नि और अग्नि ये छह भेद बतलाए हैं। इसमें दशवैकालिक की तरह अग्नि और शुद्धाग्नि को अलग-अलग लिया है तथा आचारांग-निर्युक्ति की तरह आकाशीय विद्युत्, वज्र (अशनि) आदि को शुद्ध अग्नि के अन्तर्गत ही बतलाया है। इसके आधार पर ऐसा प्रतीत होता है कि दशवैकालिक में निर्दिष्ट 'अग्नि' में अयःपिंड (लोहपिंड) प्रविष्ट अग्नि को रखा गया था, जिसे प्रज्ञापना में शुद्धाग्नि में माना गया तथा केवल 'अग्नि' के भेद को हटाकर उल्का, आकाशीय विद्युत्, अशनि, निर्घात आदि को स्वतंत्र भेद के रूप में बताया जो दशवैकालिक की व्याख्या में 'उल्का' (गगनाग्नि) में थे तथा आचारांग-निर्युक्ति तथा दिगम्बर ग्रंथ मूलाचार में 'शुद्धाग्नि' में थे। दशवैकालिक की 'शुद्धाग्नि' में 'निरिन्धन अग्नि' के रूप में व्याख्या का कोई अलग अर्थ नहीं निकलता। अगस्त्यचूर्णि में ''एते विसेसे मोत्तुण सुद्धागणि'' कहकर शेष सभी का समावेश शुद्धाग्नि में किया है। इस प्रकार शुद्धाग्नि के रूप में ही उल्का, विद्युत्, अशनि, निर्घात आदि को स्वीकार करने पर 'निरिन्धन अग्नि' अर्थ भी घटित होता है। जैसे अप्कायिक जीवों में 'शुद्धोदक' से 'अंतरिक्ष-जल'[80] को लिया है और वायुकायिक में शुद्धवायु में मंद, शांत या आर्द्र वायु[81] को लिया है उससे शुद्ध का अर्थ है प्राकृतिक। उसी 'शुद्धाग्नि' में भी 'उल्का आदि' (गगनाग्नि) को माना जाय, तो उल्का आदि के भेद शुद्धाग्नि में आ जाएंगे, जैसा आचारांग-निर्युक्ति में 'अग्नि' के रूप में इन्हें माना है अथवा मूलाचार में 'शुद्धाग्नि' के रूप में माना है।

संघर्ष-समुत्थित अग्नि के उदाहरण में 'अरणी की लकड़ी' की रगड़ का उदाहरण है। 'आदि' शब्द से दो चकमक-पत्थरों की रगड़ या संघर्ष को लिया जा सकता है।

सूर्यकांतमणि संभवतः अवतल (concave) लेन्स के सदृश मणि है जिस पर प्रखर सूर्य किरणों को केन्द्रित कर अग्नि पैदा की जा सकती है।

इन सभी प्रकार की अग्नि की उत्पत्ति जीव की योनि बनने पर होती है, जिसकी चर्चा हम कर चुके हैं (पृ. 11), किन्तु तेजस्काय की जीव-योनि की निष्पत्ति में कारक पौद्गलिक उपादानों को समझे बिना तेउकायिक जीव के उक्त सभी प्रकारों में रही सदृशता या लाक्षणिकता स्पष्ट नहीं हो सकती। तेउकायिक जीवों की योनि में उष्णता की अनिवार्यता बहुत स्पष्टतः निर्दिष्ट भी है और प्रत्यक्षतः जानी जाती है हालांकि

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

'उष्णता' से तात्पर्य होगा सामान्य तापमान से अत्यधिक तीव्र तापमान। किन्तु उचित तापमान का विभिन्न पदार्थों के सम्बन्ध में विभिन्न नाप होगा। कितने तापमान पर कौन-सा पदार्थ अग्नि की योनि बन सकता है, यह मीमांसा आवश्यक है।

इसके अतिरिक्त 'वायु' की उपस्थिति की भी अग्निकायिक जीवों के लिए अनिवार्यता बताई गई है।[82] यह कौन-सी वायु है जिसके बिना तेउकायिक जीव जीवित नहीं रह सकते हैं? इसकी मीमांसा अपेक्षित है। आचारांग-भाष्य में इसे प्राणवायु बताया गया है।[83]

तीसरा कारक है कौन-सा पदार्थ अग्नि पैदा कर सकता है, कौन-सा नहीं? यानी क्या सभी पदार्थ अग्नि को उत्पन्न करने में सक्षम है और कौन-सा नहीं? यह मीमांसा भी करणीय है।

पहले हम विज्ञान के आधार पर अग्नि की प्रक्रिया को समझें और उसके पश्चात् उक्त मीमांसा करें, तो सारा विषय बहुत ही स्पष्ट होगा।

विज्ञान द्वारा अग्नि की व्याख्या

पाश्चात्य जगत् में वैज्ञानिक विकास से पूर्व अग्नि के विषय में काफी अंध-विश्वास एवं मान्यताएं फैली हुई थी। उसे 'देवता' रूप मानकर उसकी पूजा आदि करने का उल्लेख मानव-सभ्यता के आदिम युग के इतिहास में प्राप्त होता है।[84] वैज्ञानिक क्षेत्र में रासायनिक विज्ञान के विकास के साथ 'अग्नि' की समुचित व्याख्या लेवोइजियर (Lavoisier) नामक रसायन-वैज्ञानिक ने प्रस्तुत की तथा भावी अनुसंधान की दिशाएं स्पष्ट होने के साथ ही पता लग रहा है कि ऑक्सीजन के साथ ज्वलनशील पदार्थ के रासायनिक संयोग और उष्मा के विकिरण की प्रक्रिया कंबश्चन है तथा उसके मूल में अभिक्रिया में भाग लेने वाले पदार्थों का 'आयनीकरण' जिम्मेवार है।[85]

इस प्रकार, अग्नि एक रासायनिक प्रक्रिया है। इसकी पारिभाषिक संज्ञा है कंबश्चन या दहन-क्रिया। इसकी स्पष्ट परिभाषा इस प्रकार है दहन-क्रिया का अर्थ है ज्वलनशील पदार्थों (इंधन) का ऑक्सीजन के साथ रासायनिक संयोग तथा उष्मा का उत्सर्जन।

कंबश्चन में प्रयुक्त इंधन (ज्वलनशील पदार्थों) को परिभाषित एवं व्याख्यायित करते हुए बताया गया है ''इंधन वह पदार्थ है, जो जलाने पर यानि ऑक्सीजन के सम्पर्क में आने पर और उसके साथ रासायनिक अभिक्रिया करने पर उष्मा पैदा करता है। इंधन में निम्नलिखित ज्वलनशील मूल तत्त्वों में से एक या अनेक का होना

अनिवार्य है कार्बन, हाइड्रोजन और हाइड्रो-कार्बन।''[86] इंधन या ज्वलनशील पदार्थ तीनों अवस्थाओं के हो सकते हैं ठोस, तरल या गैस (वायु)।[87] कुछ पदार्थ ठोस अवस्था में जल सकते हैं तो कुछ तरल बनकर जलते हैं और कुछ गैस के रूप में बदलकर या गरम होकर जलते हैं। जो आग की **लपटें** दिखाई देती हैं वे वास्तव में गैस रूप में जलने की प्रक्रिया है।

दहन-क्रिया एक प्रकार की रासायनिक अभिक्रिया होने से यह क्रिया उतनी ही शीघ्रता से तथा तीव्रता से हो पाती है जितना उसमें भाग लेने वाले सभी पदार्थों (कार्बन, ऑक्सीजन आदि) के बीच सम्पर्क अधिक निकट का होता है तथा उनका सम्पर्क-क्षेत्र विशाल होता है।... कंबश्चन (अर्थात् ज्वलनशील पदार्थों का ऑक्सीजन के साथ संयोग) सहित सभी प्रकार की रासायनिक अभिक्रियाएं उक्त सिद्धांत के आधार पर होती हैं।[88] ज्वलनशील पदार्थ चाहे ठोस, तरल या गैस-अवस्था में हो सकते हैं, पर शुद्ध ऑक्सीजन या ऑक्सीजन-युक्त हवा (air), जिससे कंबश्चन होना है, तो हमेशा गैस अवस्था में ही होनी चाहिए।[89]

ठोस इंधन या ज्वलनशील पदार्थों में प्राकृतिक इंधन के रूप में लकड़ी, कोयला, लिग्नाइट आदि का प्रयोग होता है। तरल पदार्थों में पेट्रोल तथा गैसीय पदार्थों में प्राकृतिक गैसों का प्रयोग होता है।

वैज्ञानिकों ने पदार्थों को दो प्रकार में बांटा है

1. ज्वलनशील (Combustible)
2. अज्वलनशील (Incombustible)

लकड़ी, कोयला, घी, तेल, रसोई में प्रयुक्त गैस, घास, रुई, कपड़ा, कागज आदि ज्वलनशील पदार्थ हैं। इनमें भी पेट्रोल, केरोसीन, डीज ल आदि अतिज्वलनशील (highly inflammable) हैं। दूसरी ओर राख, धूल, मिट्टी, पत्थर, पानी आदि अज्वलनशील हैं। वायुओं में कार्बन डाईऑक्साइड (CO_2) जैसी वायु भी अज्वलनशील है। इन सबका प्रयोग अग्निशामक पदार्थ के रूप में किया जाता है।

अधिकांश ज्वलनशील पदार्थों के भीतर मुख्यतः कार्बन, हाइड्रोजन आदि घटक होते हैं जो स्वभावतः अतिशीघ्र कंबश्चन की क्रिया घटित कर सकते हैं। कंबश्चन या दहन की प्रक्रिया इस प्रकार घटित होती है

1. ज्वलनशील तत्त्व मौजूद होना चाहिए।
2. उसके साथ प्राणवायु (ऑक्सीजन) का सम्पर्क होना चाहिए।
3. अमुक निर्धारित तापमान प्राप्त होना चाहिए। एक विशेष तापक्रम पर कई

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

पदार्थ ऑक्सीजन/हवा के साथ प्रक्रिया करके 'जलने' लगते हैं। इस तापक्रम को 'ज्वलन-बिंदु' या 'विस्फोटक बिन्दु' (flash-point) कहते हैं। पदार्थ के जलने में हवा/प्राणवायु की भूमिका मुख्य होती है। प्राणवायु अलग-अलग प्रकार के पदार्थों के साथ भिन्न-भिन्न गति से प्रक्रिया करती है यानी भिन्न-भिन्न गति से जलाती है तथा उसी हिसाब से ताप व प्रकाश पैदा करती हैं। उदाहरणार्थ हवा में लकड़ी 295° से., कोयला 477° से., केरोसीन 295° से. तथा हाइड्रोजन गैस 580 से 590° डिग्री से. तक जलेंगे। इस तापमान से कम पर कंबश्चन नहीं होगा। कौन-सा पदार्थ कितने तापमान पर ज्वलन-क्रिया करेगा, इसका पूरा विवरण टिप्पण में है।[90]

4. उपर्युक्त तीनों की एक प्रणाली (System) बननी चाहिए।

इतना होने पर एक रासायनिक क्रिया होती है जिसमें कार्बन जैसे मूल तत्त्व ऑक्सीजन के साथ रासायनिक रूप में संयुक्त होते हैं जिसके परिणामस्वरूप 'अग्नि' प्रकट होती है और साथ ही साथ CO_2 (कार्बन डाईऑक्साइड) यानी धुंआ तथा राख व अन्य अधजले ठोस पदार्थ भी उत्पन्न होते हैं।[91] इसी के साथ ताप, प्रकाश व कभी-कभी ध्वनि रूप ऊर्जा का विकिरण होता है। हाइड्रोजन ऑक्सीजन के साथ संयुक्त होने पर बाष्प बन जाती है जो H_2O के रूप में होती है। इस प्रकार SO_2 (सल्फर डाई ऑक्साइड), NO_2 (नाइट्रोजन ऑक्साइड), O_3 (ओजोन) आदि गैस भी उत्पन्न हो सकती हैं। कभी-कभी CO (कार्बन मोनोक्साइड) अथवा मिथैन गैस के रूप में भी निष्पत्ति होती है। इस प्रकार की गैसें (मिथेन, इथेन, कार्बन डाईऑक्साइड आदि) उत्पन्न होकर उपयुक्त तापमान पर पुनः ऑक्सीजन के साथ रासायनिक क्रिया करती हैं और अग्नि को और अधिक तेज बनाती हैं। जैसे लकड़ी जलती है तब कार्बोनिक गैस बनती है, जो ऑक्सीजन के साथ रासायनिक क्रिया कर 'ज्वाला' या 'लपट' के रूप में जलती है।[92]

जब अग्नि की प्रक्रिया मंद-मंद रूप में चलती है, तब इस प्रकार की गैस नहीं बनती, उस समय इंधन में विद्यमान सेल्यूलोज, कार्बोहाइड्रेट्स या कार्बन मंद गति से गरम होती है। जब ज्वलन-बिंदु पर पहुंचती है तब प्राणवायु (ऑक्सीजन) के साथ रासायनिक क्रिया होती है और एक्सोथर्मिक प्रक्रिया (यानी जिसमें उष्मा के रूप में ऊर्जा का विकिरण हो) के द्वारा उष्मा (या ताप) और कार्बन डाई ऑक्साइड गैस बनती है। इस प्रकार की आग 'अंगारे' के रूप में जलती है।[93]

जब ऑक्सीजन की कमी होती है, जैसे राख से ढक जाने पर, तब अंगारे बहुत कम गर्मी पैदा करते हैं। ऑक्सीजन की आपूर्ति, 'ताप' ऊर्जा का उत्पन्न होना और उसका विकिरण द्वारा ह्रास होना, इन सब में राख की परत एक संतुलन बना देती है। अतः अंगारे लाल रहकर धीमी गति से जलते हैं।[94]

घर्षण से अग्नि चकमक जैसे पत्थर को तो जब आपस में रगड़ा जाता है तो घर्षण से गर्मी पैदा होती है तथा पत्थर के छोटे-छोटे कण टूटकर लाल गरम हो जाते हैं। ये गरम कण आसपास की हवा से चिन्गारी रूप में जलने लगते हैं। ऐसे घर्षण में विद्युत् के चार्ज भी पैदा होते हैं।[95]

इस प्रकार 'अग्नि' किसी ज्वलनशील पदार्थ की प्राणवायु (ऑक्सीजन) के साथ रासायनिक प्रक्रिया द्वारा 'स्वयंभू' चलने वाली 'जलने' की प्रक्रिया है। आनुषंगिक रूप में इसके साथ उष्मा, प्रकाश की ऊर्जा का विकिरण होता है।

''साधारण अग्नि में पदार्थ का ज्वलन-अंक तक गर्म होना जरूरी है। उस अंक तक पहुंचने के पहले ही वो पदार्थ गैस रूप में वाष्पीकृत हो सकता है। उस प्रकार के पदार्थ के जलने की प्रक्रिया बहुत प्रचंड हो जाती है, जैसे पैट्रोल। जलने की गति पदार्थ के उस गुण पर निर्भर करती है कि वो ज्वलनशील है या अति-ज्वलनशील। जलने की प्रक्रिया को तेज या कम किया जा सकता है, यदि उसमें प्रयुक्त होने वाली प्राणवायु की आपूर्ति को नियंत्रित किया जाए। तेज हवा देकर जलने की प्रक्रिया को तेज किया जा सकता है।''[96]

अग्नि किसी भी रूप में क्यों न हो, यदि उसे जलाने में सहयोग करने वाली वायु जो मुख्यतः प्राणवायु है, न मिले तो अग्नि नहीं जलेगी। यदि जलती हुई अग्नि को प्राणवायु का मिलना बंद हो जाय तो वह तुरन्त बुझ जाएगी। जलते हुए दीपक पर ढक्कन या बर्तन रख देने से वह थोड़ी देर में बुझ जाता है। क्योंकि ऑक्सीजन की आपूर्ति अवरुद्ध हो गई। जब तक ढक्कन के भीतर बचा हुआ ऑक्सीजन समाप्त नहीं हो जाता तब तक ही दीपक जलता रहेगा, उसके पश्चात् वह तुरन्त बुझ जाएगा। इंधन तब तक ही जलता है, जब तक उसे ऑक्सीजन मिलता रहता है यह एक सार्वत्रिक नियम है। जलते हुए अंगारों पर धूल, मिट्टी, पानी आदि डालने से भी अंगारे बुझ जाते हैं। इनके प्रयोग से ऑक्सीजन का सम्पर्क टूट जाता है। ये सारे पदार्थ अग्निशामक हैं, क्योंकि ये स्वयं अज्वलनशील हैं। ऑक्सीजन को छोड़कर हवा में मौजूद नाइट्रोजन, आर्गोन, नीयोन, झेनोन आदि गैस 'इनर्ट' (निष्क्रिय) होने से इनके द्वारा अग्नि नहीं जलती। हवा में ये सारी गैसें लगभग 80 प्रतिशत तथा ऑक्सीजन 20 प्रतिशत है। किन्तु अग्नि में उपयोगी तो केवल ऑक्सीजन ही है। यदि किसी बर्तन या बल्ब आदि में ऑक्सीजन नहीं होती, और इनमें से कोई वायु भर दी जाती है, तो उसमें अग्नि नहीं जल सकती। (यद्यपि अपवाद रूप में क्लोरीन या फ्लोरीन गैस में भी हाइड्रोजन आदि पदार्थों द्वारा विशेष रासायनिक क्रिया के परिणामस्वरूप ज्वलनक्रिया हो सकती है, पर क्लोरीन, फ्लोरीन अथवा ऑक्सीजन की मौजूदगी के बिना अग्नि जलना संभव नहीं है।) निष्क्रिय गैसों में ऑक्सीजन के अभाव में तो

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

अग्नि कभी नहीं जल सकती। **इलेक्ट्रीक बल्ब में निष्क्रिय गैस भरी जाती है या शून्यावकाश रखा जाता है। इसलिए उसके अन्दर ऑक्सीजन के अभाव तथा ज्वलनशील पदार्थ के अभाव के कारण अग्नि जलने की क्रिया नहीं हो सकती। बल्ब में टंगस्टन धातु गरम होने पर भी जलती नहीं है। नाइट्रोजन आदि निष्क्रिम गैसें इसीलिए बल्ब में भरी जाती हैं।** इस विषय की विस्तृत चर्चा 'बल्ब की प्रक्रिया' विषय के अंतर्गत की जाएगी। देखें प्रस्तुत भाग-1 का प्रभाग 9, पृष्ठ 54।

क्लोरीन-फ्लोरीन के अपवाद को छोड़कर कहीं भी ऑक्सीजन के अभाव में किसी भी प्रकार की अग्नि जलने की क्रिया को किसी ने अनुभव नहीं किया है। इसलिए यह व्याप्ति बन जाती है, जहां-जहां ऑक्सीजन का अभाव है, वहां-वहां अग्नि का अभाव है।

डा. जे. जैन ने एक प्रश्न की चर्चा की है ''क्या 'अग्नि' में ऑक्सीजन के साथ एक स्वपोषी रासायनिक प्रक्रिया होना ही काफी है? या उस प्रक्रिया से आग से सचित्त तेउकाय पैदा करने में 'ताप' के साथ-साथ 'प्रकाश' का पैदा होना भी जरूरी शर्त है? यानि सचित्त अग्नि का मापदंड क्या है?

ऐसी स्वपोषी रासायनिक क्रियाएं बहुत सी हैं जिनमें ताप पैदा होता है लेकिन दृश्य-प्रकाश पैदा नहीं होता है। क्या उनको सचित्त कहा जाय?

1. थर्मिट प्रक्रिया को आग की श्रेणी में रखना होगा क्योंकि उसमें ताप के साथ 'प्रकाश' भी पैदा होता है।

2. क्लोरोफिल प्रकाश के साथ रासायनिक क्रिया करके हवा की CO_2 से कार्बन व ऑक्सीजन बनाता है लेकिन 'प्रकाश' पैदा नहीं करता है। अतः अचित्त है।

3. CaO (चूने) के पानी के साथ रासायनिक क्रिया करने से 'ताप' पैदा होता है, लेकिन प्रकाश पैदा नहीं होता है। ब्लीचिंग पाउडर भी इसी श्रेणी में आता है। (यह 'सचित्त अग्नि' नहीं है।)

4. स्वपोषी क्रिया का मतलब क्या है? यदि प्रक्रिया में भाग लेने वाले पदार्थों की आपूर्ति बराबर बनी रहे, तथा उनमें एक बार प्रक्रिया शुरू हुई, तो फिर चलती रहेगी। यानि 'प्रक्रिया' शुरू करने के लिए उनका आपस में मिला रहना (जैसे इंधन हवा में पड़ा रहे बिना आग को शुरू किए) ही काफी नहीं है, उनमें आपस में 'प्रक्रिया' शुरू करानी पड़ती है बाह्य साधन से। जैसे ताप का संग्रहण हो जाना (Sponge iron, bleaching powder आदि में)। लेकिन पानी व चूने की रासायनिक प्रक्रिया शुरू कराने के लिए यह शर्त नहीं है। केवल उन दोनों के मिल जाने से रासायनिक प्रक्रिया शुरू हो जाती है। जैसे HCl (नमक का अम्ल) व Zn (जस्ता)

का मिलाना। उसमें गर्मी पैदा होती है। कुछ क्रियाएं गरम करने से शुरू होती हैं। जैसे उच्च तापमान की रासायनिक क्रियाएं। यदि वो स्वपोषी हैं तथा ताप प्रकाश नहीं निकलता है तो सचित्त अग्नि की श्रेणी में नहीं है।

साधारण अग्नि में **हवा** का होना जरूरी है। 'अग्नि' को शुरू कराने के लिए उस पदार्थ में कुछ ताप-शक्ति का प्रवेश कराना भी जरूरी है। यह ताप बाहरी अग्नि से, चिन्गारी से, सूर्य की रोशनी से या em. (वि.चु.) लहरों से या विद्युत् से या अन्य रासायनिक प्रक्रिया से दिया जा सकता है। केवल एक बार ताप देकर यह प्रक्रिया शुरू की जाती है। बाद में यह 'आग' स्वपोषी बन जाती है।''[97]

अग्नि की प्रक्रिया के लिए चार अनिवार्य शर्तें मानी जा सकती हैं

1. जब तक ऑक्सीजन (या अपवाद रूप क्लोरीन-फ्लोरीन) उपलब्ध नहीं होती, अग्नि नहीं जलती।

2. जब तक ज्वलनबिन्दु का निश्चित तापमान प्राप्त नहीं होता, अग्नि नहीं जलती 'थ्रेसोल्ड' (न्यूनतम सीमा-बिन्दु) पार करे बिना।

3. जब तक ज्वलनशील पदार्थ इंधन रूप में नहीं मिलता, तब तक अग्नि नहीं जलती।

4. जब तक उष्मा के साथ-साथ प्रकाश की ऊर्जा का विकिरण नहीं होता, तब तब अग्नि नहीं जलती।

संक्षेप में

1. ऑक्सीजन
2. ज्वलनशील पदार्थ
3. ज्वलनबिन्दु-तापमान
4. उष्मा और प्रकाश का उत्सर्जन

इन चारों का एकत्र योगदान अग्नि की अनिवार्य शर्त है।

डा. जे. जैन ने इस विषय में विस्तृत जानकारी दी है

''तापमान (Temperature)

''हमारे शरीर का तापमान 37°C रहता है। अन्य पदार्थ इसके **सापेक्ष** कितने ऊंचे या नीचे **तापमान** पर है, उसी सापेक्षता से उनको गरम या ठंडा कहा जाता है।

तापमान अणु, परमाणु व इलेक्ट्रोन की एक **विचलित** (excited) अवस्था को

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

जाहिर करता है। इसमें ताप-ऊर्जा जरूर है लेकिन ज्यादा तापमान होने पर भी इसमें तेजस्काय का जीव होना जरूरी नहीं है। जैसे बुझे हुए चूल्हे की बहुत ही गर्म राख!

1. रासायनिक प्रक्रिया (Exothermic) से तापमान बढ़ता है, जैसे 'जलना'। यह भाग लेने वाले पदार्थों के गुण पर निर्भर करता है। इसमें ताप व प्रकाश दोनों निकलते हैं। धीमे-जलने की प्रक्रिया में प्रकाश बहुत कम निकलता है। तीव्र-जलने में या ज्वलनशील पदार्थों में वे 'गैस' अवस्था में तब्दील होकर जलते हैं, जिसे आग की लपटें कहते हैं।

2. घर्षण से इससे 'ताप' व चार्ज पैदा हो सकते हैं। क्या और कितना पैदा होगा यह घर्षण में भाग लेने वाले पदार्थों के गुण पर निर्भर करता है। जैसे चकमक का पत्थर। पत्थर की सतह का तापक्रम बढ़ता है। बादलों में आपसी घर्षण से बिजली का 'charge' पैदा होता है। दोनों हथेलियों के रगड़ने से उसका तापमान बढ़ जाता है।

3. ताप किरणों को सोखना सूर्य की रोशनी और ताप को पृथ्वी सोखती है, जब वह सूर्य के सामने होती है। इससे उसका तापमान बढ़ता जाता है। खासकर ठोस व द्रव पदार्थों का। गैस पदार्थ का तापमान बढ़ता है conduction व convection (सवंहन) क्रिया से। पृथ्वी पर रखे सुचालक पदार्थों का तापमान जल्दी बढ़ जाता है। रात्रि में गर्म पृथ्वी अपनी गर्मी आकाश में emit करके अपने को वापिस ठंडी करती है। दिन के समय में भी गर्म व प्रकाशित पृथ्वी खुद आकाश में प्रकाश व ताप radiate करती है यानि **सूर्य की किरणों** को सोखकर, प्रकाश व ताप का केवल 'परावर्तन' किया जाता है, न कि ताप व प्रकाश का **उत्पादन**।

इसी प्रकार **सूर्य की किरणों** को नतोदर परावर्तक (cancave-reflectors) द्वारा घनीभूत किया जा सकता है। सूर्य-चूल्हों में इस विधि से सूर्य की किरणों द्वारा खाना पकाया जाता है, इतनी गर्मी इकट्ठी की जाती है कि पानी को भाप में बदला जाता है। ये पदार्थ सचित्त-अग्निकाय के सीधे (संस्पर्श) contact में नहीं आते हैं, अतः सचित्त नहीं होते और न नतोदर-दर्पण (concave mirror). 'ताप-प्रकाश' ऊर्जा पैदा करता है केवल घनीभूत करता है। अतः नतोदर दर्पण (cancave mirror) स्वयं भी **सचित्त-अग्निकाय** या चूल्हे की गिनती में नहीं आएगा।

''तापमान व तेउकाय

किसी पदार्थ को केवल गर्म करने से ही उसमें तेउकाय के जीव पैदा नहीं होते हैं। वैसे परम-शून्य तापक्रम (Aboslute zero) की अपेक्षा हर पदार्थ गर्म है। यदि किसी पदार्थ (ठोस, द्रव्य, गैस) का तापक्रम हमारे शरीर के तापक्रम से ज्यादा

है (37° से.), तो हम उस पदार्थ को गर्म कहते हैं। यदि इस तापमान से कम है तो उस पदार्थ को ठंडा पदार्थ कहते हैं। लेकिन ''तेउकाय जीव किसी पदार्थ के जलने पर ही पैदा होते हैं।'' (लाल गर्म लोहा भी तेउकाय का जीव नहीं रखता है, जब तक वो प्राणवायु के साथ प्रक्रिया करके 'जलना' शुरू नहीं कर देता है।

लोहार का लाल-लोहा प्राणवायु से जलना शुरू कर सकता है। हालांकि यह 'धीमा-जलना' है। भट्टी में 'पिघला' लाल-लोहा, **प्राण-वायु के साथ शीघ्र** प्रक्रिया करता है। अतः इसमें तेउकाय पैदा होने की ज्यादा सम्भावना है। 400°C तक गर्म लोहे के पिंड में तेउकाय के पैदा होने की सम्भावना कम है। इसका अपना रंग भी नहीं बदलता है। लेकिन इस तापक्रम से ज्यादा ऊपर गर्म करने पर इसका रंग बदलकर लाल-रंग होना शुरू हो जाता है।

यहां ध्यान देने की बात है कि केवल उच्च तापमान तक पहुंच जाने मात्र से यहां तक कि लाल-गरम हो जाने से ही तेउकाय के जीव पैदा नहीं हो जाते हैं। उस पदार्थ के साथ प्राणवायु से रासायनिक क्रिया कर जलना जरूरी है।''[98]

अनुकूल तापमान

ज्वलनशील पदार्थ को अनुकूल संयोग न मिले तो अग्नि की उत्पत्ति नहीं होती। ऑक्सीजन का संयोग हो, पर उपयुक्त तापमान न हो, तो अग्नि पैदा नहीं होगी। जैसे पैट्रोल अतिज्वलनशील पदार्थ है और खुली हवा के संयोग में भी है, पर यदि उपयुक्त तापमान नहीं मिलेगा तो ज्वलनक्रिया निष्पन्न नहीं होगी। पैट्रोल का ज्वलनबिन्दु लकड़ी या कोयला की तुलना में नीचे होता है, इसलिए साधारण तापमान बढ़ने पर भी पैट्रोल जल जाता है। इस प्रकार कुछ पदार्थ (जो अतिज्वलनशील हैं) बहुत थोड़े तापमान की वृद्धि के साथ जल उठते हैं, जबकि अन्य पदार्थों को जलने के लिए बहुत ऊंचा तापमान चाहिए। दियासलाई के घर्षण द्वारा तापमान की वृद्धि कर नोक पर लगे हुए बारूद (जो अतिज्वलनशील पदार्थ है) को जलाया जाता है। जलती हुई दियासलाई से और अधिक तापमान पैदा होता है जिसमें अन्य ज्वलनशील पदार्थ जलाए जा सकते हैं। जलते हुए कोयले की अग्नि का तापमान लगभग 1300 डिग्री सेल्सियस नापा गया है।

पर्याप्त रूप में उच्च तापमान तथा ऑक्सीजन का योग ये दोनों मिलने पर ही ज्वलनशील पदार्थ द्वारा अग्नि पैदा हो सकती है। इसे अनेक उदाहरणों से स्पष्ट किया जा सकता है। जैसे

1. अग्नि की लपटें उच्च तापमान पर जलती हुई गैस है।
2. अंगारे और मुर्मुर (अग्निकण) उच्च तापमान पर जलते हुए ठोस इंधन हैं।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

3. आकाशीय बिजली में आयनीकृत गैस का उष्ण प्लाज मा है, जो उस समय प्रकाशित होने के साथ ऑक्सीजन के साथ जलता है, जब बिजली चमकती है, कड़कती है। उससे पूर्व वह बादल में स्टेटिक विद्युत् के रूप में अचित्त पुद्गल के रूप में स्थित है।

4. चकमक के घर्षण से उत्पन्न अग्नि में भी घर्षण से गर्म होकर हवा (ऑक्सीजन) के साथ जलने वाले सूक्ष्म कण होते हैं।

5. तरल इंधन अमुमन गैस बनकर "flash-point" पर ऑक्सीजन के साथ जलता है।

तात्पर्य यह हुआ चाहे ठोस हो, तरल हो या गैस कोई भी ज्वलनशील पदार्थ ज्वलन-बिन्दु पर ऑक्सीजन के साथ रासायनिक क्रिया द्वारा ही अग्नि पैदा करते हैं। प्लाज मा अवस्था में भी यही प्रक्रिया है जब तक ऑक्सीजन का संयोग न होगा, तब तक अग्नि प्रज्वलित नहीं होगी। साथ में ताप और प्रकाश का उत्सर्जन भी सहवर्ती है।

धातुएं उच्च तापमान पर पिघलती हैं। यदि ऑक्सीजन न मिले, तो धातु पिघल सकती है, जल नहीं सकती।

निम्न कोष्ठक में धातु का पिघलनांक दिया गया है

धातु	पिघलनांक
सोना	1062 डिग्री से.
प्लेटीनम	1770 डिग्री से.
टंगस्टन	3643 डिग्री से.

इलेक्ट्रीक कार्बन आर्क का तापमान	5500 डिग्री.
सूर्य का भीतरी तापमान	2 करोड़ डिग्री.
ताराओं का उत्कृष्ट तापमान	4 करोड़ डिग्री.[99]

ज्वलन-क्रिया में पदार्थ का जो ऊर्जा रूप में रूपान्तरण होता है, वह अधिकांश उष्मा-ऊर्जा के रूप में होता है, किन्तु अपेक्षाकृत वह मात्रा काफी कम होती है। उदाहरणार्थ 3000 टन कोयलों को जलाने पर केवल 1 ग्राम कोयले जितनी संहति का ऊर्जा का रूप में परिणमन होता है, शेष पदार्थ का रूपान्तरण कार्बन मोनोक्साइड और राख के रूप में होता है जिनकी संयुक्त संहति 3000 टन में से केवल 1 ग्राम कम जितनी होती है, जबकि केवल 92 यूनिट ऊर्जा प्रति ग्राम प्राप्त होती है। इसी

प्रक्रिया को यदि न्यूक्लीयर रिएक्टर में घटित किया जाता है, तब उसमें कार्बन का न्यूक्लीयस ऑक्सीजन के न्यूक्लीयस के साथ मिलकर सिलीकोन के न्यूक्लीयस को निष्पन्न करता है तथा ऊर्जा का उत्सर्जन 14×10^9 यूनिट जितना प्रतिग्राम होता है।[100]

इस प्रकार ज्वलन-क्रिया एक रासायनिक क्रिया है जिसमें ज्वलनशील पदार्थ के कार्बन आदि तत्त्व ऑक्सीजन के साथ मिलकर उष्मा और प्रकाश के रूप में ऊर्जा का उत्सर्जन करते हुए राख आदि पदार्थ, कार्बन मोनोक्साइड या कार्बन डाई ऑक्साइड आदि गैस निष्पन्न करते हैं। इसी ज्वलनक्रिया को हम प्रज्वलन या अग्नि के रूप्प में देखते हैं। अग्नि, ज्वाला आदि का प्रकटीकरण इसी की परिणति है।

अग्नि और उष्मा में अन्तर

अग्नि (fire) और उष्मा (heat) दोनों एक नहीं है। 'अग्नि' कंबश्चन (दहन-क्रिया) के रूप में प्रगट होने वाली रासायनिक क्रिया है, जबकि उष्मा ऊर्जा का एक रूप है, जो पदार्थ-स्थित अणु-गुच्छों (molecule) की गति की तीव्रता-मंदता के अनुपात में पदार्थ से विकिरित होती है।[101]

उष्मा-विकिरण का उत्सर्जन[102]

उष्मीय विकिरणें अथवा उष्मा विकिरणें (thermal radiations) सभी पदार्थों द्वारा उत्सर्जित होती रहती हैं। इसी के माध्यम से हमें पदार्थ की उष्मा का अनुभव होता है। सभी तापमान या उष्णतामान (temperature) का गुण सभी पदार्थों में सदा विद्यमान रहता है। सभी पदार्थ शून्य डिग्री निरपेक्ष तापमान (zero degree absolute) से अधिक तापमान वाले होते हैं। शून्य डिग्री निरपेक्ष से ऊपर ज्यों-ज्यों पदार्थ का तापमान बढ़ेगा, त्यों-त्यों उसके उष्मीय विकिरणों का उत्सर्जन बढ़ेगा। यह उत्सर्जन जिस ऊर्जा के रूप में होता है, उसे उष्मा-ऊर्जा (thermal energy) कहते हैं। उष्मा-ऊर्जा का उत्सर्जन दो बातों पर निर्भर है

1. पदार्थ का तापमान
2. पदार्थ की सतह का स्वभाव।

पदार्थ से निकलने वाली उष्मा-विकिरणों की तरंगें भी विद्युत्-चुम्बकीय तरंगों के रूप में ही होती है, ठीक वैसी ही जैसी प्रकाश की तरंगें होती हैं। किन्तु इनकी तरंग-लंबाई (wave-length) 'इन्फ्रारेड' तरंगों की कोटि में होने से आंखों द्वारा दिखाई नहीं देती। (ये तरंग-लंबाई 8×10^{-7} से लेकर 4×10^{-4} मीटर के बीच हैं। जबकि दृश्य प्रकाश की तरंग-लंबाई 4×10^{-7} से 8×10^{-7} तक हैं।)

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

इनके कुछ विशेष लक्षण इस प्रकार हैं

1. ये सदा समरेखा में प्रकाश की गति (वेग) से प्रसारित होती हैं।
2. इन्हें माध्यम की अपेक्षा नहीं है, ये शून्यावकाश (vacuum) में भी प्रसारित हो सकती हैं।
3. ये जिस माध्यम से गुजरती है, उसे गरम नहीं करती।
4. मूल स्रोत से दूरी के बढ़ने पर इनकी तीव्रता घटती जाती है।
5. प्रकाश-तरंगों की भांति इनका परावर्तन आदि होता है।
6. प्रकाश-तरंगों की तुलना में इनकी ऊर्जा कम होती है।

स्टिफन-बोल्ट्झमेन नियम के अनुसार उष्मा-विकिरण की मात्रा का निर्धारण होता है।[103]

इस सिद्धांत से यह स्पष्ट होता है कि जैसे जैन दर्शन 'आतप' को पौद्गलिक परिणमन मानता है, वैसे विज्ञान के अनुसार भी 'उष्मा-विकिरण' भी केवल भौतिक ऊर्जा या द्रव्य है। जैसे प्रकाश केवल पौद्गलिक परिणमन है तथा केवल भौतिक ऊर्जा या द्रव्य है, वैसे ही उष्मा-विकिरण भी अचित्त या निर्जीव ही है। सभी पदार्थों से ये विकिरण सतत निकलते रहते हैं और हमारे शरीर द्वारा उनका ग्रहण होता रहता है। इस प्रक्रिया के सन्दर्भ में धातु के गरम होने की प्रक्रिया को सरलता से समझा जा सकता है।

धातु में विद्युत्-प्रवाह

धातु की विद्युत् चालकता का कारण है इलेक्ट्रोनों का स्वतंत्र विहरण। ये इलेक्ट्रोन जब वाहक में से गुजरते हैं, तब वाहक में दोलन (oscillation) करने वाले धन आयनों (+ve ions) के साथ उनकी टक्कर होती रहती है। इन टक्करों के दौरान इलेक्ट्रोन की ऊर्जा का कुछ अंश दोलन करने वाले आयनों को मिलता है। इसके परिणामस्वरूप आयनों के दोलन और अधिक तीव्र और अस्त-व्यस्त हो जाते हैं। यह आयनों को प्राप्त ऊर्जा उष्मा-ऊर्जा के रूप में प्रादुर्भूत होती है।

इस प्रकार धातु (वाहक) में से जब विद्युत् का प्रवाह बहता है, तब उष्मा-ऊर्जा का उत्पादन होता है। इसे 'जूल उष्मा' कहा जाता है। इस प्रक्रिया को 'जूल प्रभाव' (Joule Effect) कहा जाता है, क्योंकि इसका आविष्कार जूल नामक वैज्ञानिक ने किया था। विद्युत्-आवेश और वाहक के दोनों छोरों के बीच विद्यमान विद्युत् स्थिति-अन्तर, जो वोल्टेज के रूप में है, के गुणनफल से उष्मा-ऊर्जा का परिमाण निकाला जाता है। इकाई-समय में उत्पन्न उष्मा-ऊर्जा विद्युत्-प्रवाह की राशि (करंट

जो एम्पियर में है) के वर्ग के अनुपात में होती है। यह जूल का नियम (Joule's Law) कहलाता है।[104]

इसी नियम के अनुसार टंगस्टन धातु के फिलामेंट में गुजरने वाले विद्युत्-प्रवाह के अनुपात में ऊष्मा-ऊर्जा पैदा होती है। यह ऊर्जा भी पौद्गलिक है। यही उष्मा-ऊर्जा प्रकाश के साथ विकिरित होती है। इस प्रकार ऑक्सीजन के अभाव में धातु को गरम करने पर ये जलती नहीं हैं, केवल उनका तापमान बढ़ जाता है। अत्यधिक तापमान होने पर उनके परमाणु से ऊर्जा का उत्सर्जन प्रकाश के रूप में होने लगता है। साथ में थोड़े रूप में उष्मा-ऊर्जा भी उत्सर्जित होती है, पर जलने की क्रिया नहीं होती। यदि तापमान पिघलन-बिन्दु तक पहुंच जाता है, तो धातु पिघलने लगती है और तरल रूप ले लेती है। यदि तापमान और अधिक बढ़ाया जाए तो अन्ततोगत्वा यह बाष्प रूप में परिणत हो जाती है। इस सारी प्रक्रिया में कहीं पर भी कोई रासायनिक क्रिया नहीं होती, केवल भौतिक क्रिया ही होती है यानी ठोस से तरल और तरल से बाष्प रूप में परिणमन होता है तथा ऊर्जा का उत्सर्जन होता है। भौतिक क्रिया का तात्पर्य है कि तापमान बढ़ने के साथ धातु के मोलीक्यूल उत्तेजित होते हैं और उनकी गति तीव्र हो जाती है जो प्रकाश और उष्मा की ऊर्जाओं के रूप में परिणत होती है तथा धातु प्रकाशित हो जाती है।

धातु का प्रकाशित होना धातु के भीतर रही हुई ऊर्जा का उत्सर्जन मात्र है, इसमें धातु जलती नहीं है, न ही राख, गैस आदि निष्पन्न होते हैं। पुनः धातु जब ठंडी होती है, तब पुनः अपना असली रूप प्राप्त कर लेती है यानि जैसी थी वैसी ही हो जाती है। अग्नि में इंधन जलता है, तब मूल इंधन समाप्त हो जाता है, रासायनिक प्रक्रिया घटित होती है, इंधन का रूपान्तरण राख, गैस, आदि रूप में होकर ऊर्जा का उत्सर्जन होता है, अग्नि की प्रक्रिया के बाद इंधन पुनः अपना रूप प्राप्त नहीं करता। यह स्पष्ट है कि अग्नि रासायनिक क्रिया है, धातु की उक्त क्रिया केवल भौतिक क्रिया है।[105]

अब हम इलेक्ट्रीक बल्ब में प्रकाश करने वाले टंगस्टन के तार की प्रक्रिया को स्पष्टतः समझ सकते हैं। जब तार में विद्युत्-प्रवाह बहता है, तो विद्युत्-ऊर्जा का रूपान्तरण उष्मा-ऊर्जा में होने से टंगस्टन धातु ऊंचे तापमान पर प्रकाशित होने लग जाती है। इस सारी प्रक्रिया में कहीं पर भी ज्वलन-क्रिया या अग्नि का परिणमन नहीं होता। अग्नि की प्रक्रिया में अनिवार्यतः आवश्यक ऑक्सीजन का बल्ब में नितान्त अभाव है। इसलिए उपयुक्त तापमान होने पर भी तथा प्रकाश एवं उष्मा का उत्सर्जन होने पर भी अग्नि की प्रक्रिया घटित नहीं होती, न ही इंधन जलने के पश्चात् निष्पन्न होने वाले राख, गैस की निष्पत्ति होती है।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

अग्नि से सम्बद्ध अन्य कुछ ज्ञातव्य बातें

1. कुछ रासायनिक क्रियाएं ऐसी होती हैं, जिनमें उष्मा बढ़ती है, पर अग्नि नहीं होती। जैसे पानी में चूना डालने से एक्सोथर्मिक रिएक्शन होता है।

2. हवा के ऑक्सीजन के साथ लोहा सामान्य तापमान पर ही आर्द्रता प्राप्त होने पर ही फेरस आक्साइड ('जंग' के रूप में) पैदा करता है। पर इसमें तापमान सीमा के भीतर ही रहता है। इस प्रक्रिया में उष्मा या प्रकाश निष्पन्न नहीं होते। यह अग्नि की क्रिया नहीं है।

3. फोस्फरस सामान्य तापमान पर ऑक्सीजन के साथ मिलकर ऑक्साइड बनाता है और प्रकाश भी करता है। इस प्रकाश को 'फोस्फेरन्स' कहा जाता है। यहां तापमान नहीं बढ़ता है।

7. आकाशीय विद्युत् (Lightning)

इलेक्ट्रीसीटी का भिन्न-भिन्न रूपों में भिन्न-भिन्न प्रकार से रूपान्तरण होता है। स्थित विद्युत् (static electricity)' चल-विद्युत् (current electricity) और विद्युत् का डीस्चार्ज (निरावेशीकरण) इन तीन रूपों में विद्युत् (इलेक्ट्रीसीटी) का परिणमन हो सकता है। जैसे हम देख चुके हैं विद्युत् स्वयं अपने आप में एक पौद्गलिक पर्याय के रूप में है। उसी पौद्गलिक पर्याय का कौन-सा रूपान्तरण 'सचित्त तेउकाय' के रूप में परिणत होगा और कौन-सा केवल पौद्गलिक या अचित्त परिणमन ही रहेगा इसे भली-भांति समझना होगा। आकाशीय विद्युत् जो खुले आकाश में बिजली के रूप में चमकती है तथा विद्युत् के अन्य परिणमन कहां तक एकरूप है, कहां तक भिन्न इसका चिन्तन हमें करना होगा।

हम देख चुके हैं

1. स्थित अवस्था में इलेक्ट्रीसीटी अवाहक या कुवाहक पदार्थों में भी होती है। जब तक वह उसी रूप में रहती है, वह केवल भौतिक या पौद्गलिक रूप है।

2. प्रवाह (current) के रूप में सुचालक या अर्धचालक पदार्थों में जब विद्युत् धारा प्रवाहित होती है, तब भी वह केवल पौद्गलिक रूप में है। तार में बहने वाली विद्युत् कितनी ही तेज क्यों न हो, जब तक वह तार के भीतर रहती है, तब तक वह अपने आप में केवल पौद्गलिक अस्तित्व है, अचित्त है। शरीर में प्रवहमान विद्युत्-प्रवाह भी अपने आप में पौद्गलिक है।

3. इलेक्ट्रीसीटी का डीस्चार्ज या विद्युत्-आवेश का निरोवशन किस प्रकार होता है इस विषय में अब हम चर्चा करेंगे तथा देखेंगे आकाशी विद्युत् की प्रक्रिया के रूप में यह क्रिया कैसे घटित होती है?

पृथ्वी का वातावरण[106]

आकाशीय विद्युत् (lightning) तथा उसका पृथ्वी पर पतन, जो 'अशनिपात' या बिजली के कड़कने के रूप में जाना जाता है, के घटित होने में निम्नांकित कारक

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

जिम्मेदार हैं

1. पृथ्वी स्वयं में विद्युत् चार्ज से आवेशित है।

2. बादलों में 'स्थित विद्युत् आवेश' उत्पन्न होते हैं।

3. पृथ्वी का वातावरण (atmosphere) 400 किलोमीटर तक ऊपर फैला हुआ है। उसके दो स्तर ट्रोपोस्फीयर और स्ट्रेटोस्फीयर कहलाते हैं। इनके बीच हवा में 'आयनीकरण' होने पर प्लाज़्मा का निर्माण होता है।

4. बादलों के दो स्तरों के बीच एक शक्तिशाली विद्युत् बल का निर्माण।

सर्वप्रथम तो हमें यह जानना होगा कि वातावरण में हवा के साथ ऑक्सीजन मौजूद रहता है तथा अन्य गैस या हलके रजकण तथा हलके तन्तु आदि भी मौजूद रहते हैं। बाष्प के रूप में पानी के मोलीक्यूल भी ऊपर चले जाते हैं। ज्वलनशील गैस या अन्य सूक्ष्म कण आदि उच्च तापमान का योग मिलने पर अग्नि के रूप में परिणमन हो सकता है।

पृथ्वी की सतह से लगभग 12 किलोमीटर तक का वातावरण 'ट्रोपोस्फीयर' कहलाता है। उसके पश्चात् लगभग 50 किलोमीटर तक फैला हुआ वातावरण 'स्ट्रेटोस्फीयर' कहलाता है। स्ट्रेटोस्फीयर का स्तर वातावरण की इलेक्ट्रीकल प्रक्रियाओं के लिए जिम्मेवार है, जिसमें विद्युत् चमकने की घटनाएं होती हैं।

पृथ्वी स्वयं इलेक्ट्रीसीटी की सुचालक है, किन्तु वातावरण के नीचे के स्तर पर हवा विद्युत् की कुचालक है। ऊंचे स्तर पर बाह्य अंतरीक्ष से आने वाली ब्रह्मांडीय विकिरणों (cosmic rays) की बम-वर्षा सी होती है। ये विकिरणें तीव्र ऊर्जा वाली होती हैं। ये जब वातावरण से टकराती हैं तब वातावरण में मौजूद हवा एवं अन्य गैसों का आयनीकरण हो जाता है। आयनीकरण से तात्पर्य है कि परमाणु से इलेक्ट्रोन (या पोज़ीट्रोन) वियुक्त हो जाते हैं, जिससे परमाणु स्वयं + (धन) अथवा –(ऋण) आवेश वाला बन जाता है। आयनीकृत हवा या गैस विद्युत् की सुचालक बन जाती है।

ज्यों-ज्यों 'वातावरण' में ऊपर जाते हैं, त्यों-त्यों विद्युत् की सुचालकता बढ़ती जाती है। स्ट्रेटोस्फीयर के ऊपर के स्तर पर यानि उसके शिखर पर सारा 'वातावरण' अत्यन्त तीव्र सुचालक बन जाता है। (यह पृथ्वी से लगभग 60 किलोमीटर ऊपर घटित होता है।) पृथ्वी की सतह और स्ट्रेटोस्फीयर के ऊपर के स्तर के बीच इलेक्ट्रीक प्रक्रिया संभव बन जाती है।

चूंकि ये दोनों सुवाहक हैं, इनके बीच वोल्टेज का अन्तर विद्युत्-बल का कार्य करेगा। जो बादल बहुत ऊपर होते हैं, उनमें पानी वाष्प के रूप में ही होता है, पानी के कण के रूप में नहीं। ये बादल सामान्य वातावरण की हवा की तरह इलेक्ट्रीसीटी

के कुचालक नहीं होते। पृथ्वी की सतह पर जो इलेक्ट्रीक पोटेंशियल होता है, उसका और बादलों के नीचे के हिस्से में एकत्रित इलेक्ट्रीक पोटेंशियल के बीच जो फर्क (Potential difference) है, वह जबरदस्त मात्रा में लगभग 2 करोड़ से 20 करोड़ वोल्ट जितना हो सकता है। इसकी वजह से तीन किलोमीटर मोटी वातावरण की पट्टी में एक जबरदस्त विद्युत्-क्षेत्र प्रवर्तित होता है। इस क्षेत्र की दिशा ऊपर की ओर होती है। इस क्षेत्र के बीच की हवा का आयनीकरण हो जाता है, जिससे वह सुचालक बन जाती है।

प्राकृतिक तूफान (Thunderstorm)

हमारी पृथ्वी पर मौसम के परिवर्तन की प्रक्रिया चलती रहती है। इसके फलस्वरूप मेघ-निर्माण, हवामान तथा हवा के दबाव में उथल-पुथल, तापमान का अन्तर, हवा में धूली कणों का एकत्रीकरण आदि ऐसे कारक पैदा होते हैं जो निरन्तर प्राकृतिक तूफानों के निमित्त बनते रहते हैं। पृथ्वी के चारों ओर के वातावरण के परिणमनों के कारण प्रतिदिन 40000 प्राकृतिक तूफान या तडित्-झंझा (Thunderstorm) कहीं-न-कहीं, किसी-न-किसी रूप में उठ खड़े होते हैं, जिनमें गर्जन और विद्युत् (Lightning) का क्रम चलता रहता है। औसतन प्रति दो सैकिंड में विश्व में कहीं-न-कहीं ऐसा तूफान आता रहता है और इस तूफान की अवधि औसतन एक घंटे की होती है। इन तूफानों के दौरान स्ट्रेटोस्फीयर और पृथ्वी के बीच जो इलेक्ट्रीक चार्ज का आदान-प्रदान होता है, उसके परिणामस्वरूप ही पृथ्वी एवं वातावरण की विद्युत्-स्थिति को बनाए रखना संभव होता है। अन्यथा विद्युत् का असंतुलन पृथ्वी के लिए खतरनाक सिद्ध हो सकता है।[107]

जब तूफान की स्थिति बनती है, तब ऊपर 6 किलोमीटर तक धन विद्युत्-आवेश वाले कण तथा 2 से 3 किलोमीटर तक ऋण विद्युत्-आवेश वाले कण बादलों में जमा होते जाते हैं। डॉ. जे. जैन ने इसे पूरे क्रम को इस रूप में प्रस्तुत किया है[108]

''(i) जब वर्षा के बादलों में आंशिक जमे हुए पानी व बर्फ के रवों के बीच आपसी टक्कर होती है तो उस घर्षण से धन और ऋण आवेश (चार्ज) पैदा होते हैं। यह चार्ज पैदा करने की प्रक्रिया उसी प्रकार होती है जैसे एक कमरे में गलीचे पर चलने से किसी खास शुष्क दिवस में शरीर पर static (स्थिर) चार्ज पैदा हो जाते हैं। ये चार्ज उस आदमी को झटके के रूप में महसूस होंगे, जब वह दरवाजे की कुंडी को छूता है।

(ii) चुम्बकीय क्षेत्र में बाष्प के बादल जब ज्यादा गति से घूमते हैं तो उनमें बिजली का चार्ज पैदा होने की संभावना हो सकती है। यह उसी प्रकार

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

होता है जैसे एक जेनेरेटर में रोटर पर चार्ज पैदा होते हैं।

(iii) आमतौर पर ऋण चार्ज मध्य या निचली सतह पर इकट्ठे होते हैं। तथा (+) धन चार्ज (अणु या आयन) ऊपर उठकर उस बादल की ऊपरी सतह पर इकट्ठे होते रहते हैं।

(iv) चार्ज पैदा होने की गति निर्भर करती है (क) बादलों की विभिन्न परतों की सापेक्षिक गति पर, (ख) अवशीतन की मात्रा पर, (ग) आंशिक जमे हुए पानी व पूर्णतः जमे हुए बर्फ के अनुपात पर, (घ) बादल की अंदरुनी हलचल की मात्रा पर। अवशीतन की गति व मात्रा निर्भर करती है ऊपर उठती हुई गरम हवा की धारा की गुणवत्ता व तीव्रता पर। गुणवत्ता का मतलब है नमी की मात्रा तथा नमी से सने हुए रज-कण से।

(v) **चार्ज की मात्रा (वोल्टेज) :** यह निर्भर करती है बादल के उस हिस्से की मोटाई व चालकता पर जिससे वो धन और ऋण चार्ज को अलग-अलग बांटकर रखती है।

''जैसे ही विद्युत्-आवेशों का अंतर (Potential difference) एक सीमा को पार करता है, तो बादलों की विद्युत्-विरोधी शक्ति यकायक टूट जाती है। उस समय बादल व हवा अपनी कुचालकता से उन विपरीत विद्युत्-आवेशों को मिलने से नहीं रोक सकती। उसका नतीजा यह होता है कि ऋण आवेश का टूटता हुआ पहाड़ 'डीस्चार्ज' के रूप में बादल में कौंध जाता है जिसे हम तड़ित-विद्युत् (Lightning) या 'बिजली का चमकना कहते हैं'।

''बादलों के नीचे के हिस्से में जो ऋण विद्युत्-आवेश है, वह प्रेरण (Induction) द्वारा जमीन पर धन विद्युत्-आवेश उत्पन्न करते हैं। यद्यपि बीच में मौजूद उठती हुई बाष्प से लदी हवा इन दोनों विपरीत विद्युत्-आवेशों को पृथक् रखने की कोशिश करती है, पर जब वोल्टेज अत्यंत तीव्र हो जाता है, तब उसे पार कर भारी विद्युत् डीस्चार्ज जमीन की ओर जहां न्यूनतम अवरोध होता है, वहां कड़क कर धरती पर गिरता है, इसे ही वज्रपात या बिजली का कड़कना (thunderbolt) कहा जाता है। आगमों में यह 'अशनिपात' के नाम से अभिहित है।

''जमीन की सतह की खास परिस्थितियों में विलोम कड़कती बिजली भी पैदा होती है, जिसमें ऋण विद्युत्-आवेश पृथ्वी से बादल की ओर कड़कती बिजली के रूप में दौड़ पड़ते हैं। यह नजारा आमतौर पर निम्न अक्षांश वाले क्षेत्रों में पाया जाता है, जैसे इंडोनेशिया, दक्षिण अमरीका, मध्य अफ्रीका आदि।

तड़ित्-विद्युत् की संरचना

1. ''जो कड़कती बिजली हमें आकाश में दिखाई देती है, वह विखंडित हवा और गैस है। गैस की परत के दोनों तरफ जब विद्युत्-आवेश (Voltage) अति उच्च हो जाता है तो वो गैस की विद्युत्रोधी शक्ति में छिद्र पैदा कर देता है। उस अति उच्च वोल्टेज से गैस आयनीकृत होकर प्लाज़्मा बन जाती है जो विद्युत्-चाप के रूप में प्रकट होती है। विद्युत्-चाप रूपी प्लाज़्मा एक लचीला सुचालक है। पलक झपकते ही बादल की पूरी वोल्टेज निरावेषित (मुक्त) हो जाती है।

2. ''विद्युत्-चाप रूपी यह प्लाज़्मा पदार्थ की चतुर्थ अवस्था होती है। आयनीकरण के कारण इस प्लाज़्मा का तापक्रम हजारों डिग्री (300000°C) तक बढ़ जाता है। इसके भीतर की गैसें ऋण व धन आयन के रूप में विखण्डित होकर विद्युत् प्रवाह बनाती है। जो एक कौंध के रूप में एक सिरे से दूसरे सिरे तक बहु-शाखित या लहरिया-बिजली के समान बहकर उच्च वोल्टेज को पूरा खिंचाव-रहित कर देती है। यह कौंध एक ही बादल के अंदर, दो बादलों के बीच में या बादल और धरती के बीच हो सकती है।

3. ''इस गर्म प्लाज़्मा में ऑक्सीजन, नाइट्रोजन और जल-वाष्प आदि के आयन रहते हैं। इनसे प्रकाश के फोटोन का विकिरण होता है। यह इलेक्ट्रो-मेग्नेटिक विकिरण उच्च ताप व प्रकाश के अलावा उच्च दबाव की भयंकर ध्वनि/गर्जन पैदा करता है। क्षणिक विद्युत्-चाप के समाप्त होते ही जब वोल्टेज शून्य रह जाता है, तब निस्तेज गैसें वापिस यौगिक रूप में प्रकट होती हैं। इस प्लाज़्मा की उपज के रूप में ओजोन गैस तथा नाइट्रोजन आदि के अन्य ऑक्साइड और अन्य यौगिक पदार्थ पैदा होते हैं। इस प्रक्रिया से हर साल 3 करोड़ टन तक स्थिरीकृत नाइट्रोजन बनती है।

''इस विद्युत्-चाप से कभी-कभी ऐसे आग-गोले बन जाते हैं तो द्रुतगति से चलकर पृथ्वी में समा जाते हैं तथा रास्ते की वस्तुओं को जला डालते हैं। साधारण विद्युत्-चाप (वज्रपात) जो आकाश से पृथ्वी पर गिरता है, वो भी रास्ते में पड़ी वस्तुओं को अपनी तीव्र गर्मी व ऊर्जा के कारण झुलसा कर जला डालता है।''

डॉ. बिहारी छाया[109] अपने 'बिजली' के विषय में लिखित लेख में बताते हैं*

''बादल के नीचे के हिस्से में जमा हुई ऋण विद्युत् पृथ्वी की सतह पर जमा धन विद्युत् द्वारा आकृष्ट होती है। इस आकर्षण के फलस्वरूप बादलों में से नीचे की ओर ऋण विद्युत्-आवेश का एक प्रवाह बहता है और पृथ्वी की सतह के ऊपर की

*गुजरात समाचार।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

ओर धन विद्युत्-प्रवाह बहता है। इन दोनों का संयोग हवा के मध्य में ही हो जाता है। उस समय तीव्र धन विद्युत्-आवेश प्रकाश के वेग के तीसरे हिस्से = (1/3 × 3 लाख किलोमीटर/सैकिंड अर्थात् लगभग एक लाख किलोमीटर प्रति सैकिंड वेग) से गति करता हुआ दिखाई देता है। इसकी वजह से गगन में तीव्र प्रकाश की रेखा या चमक देखने को मिलती है, जिसे हम 'बिजली चमकी' ऐसा कहते हैं। बिजली की एक चमक में जो विद्युत्-प्रवाह बहता है, वह 20 हजार से 40 हजार एम्पियर के बराबर शक्तिशाली होता है। समझने के लिए तुलना की जाय तो 1000 वोल्ट पावर वाले बिजली के बल्ब में केवल लगभग 4 एम्पियर का विद्युत् प्रवाह ही बहता है। जो दो बिंदु के बीच यह विद्युत् पैदा होती है, उनका इलेक्ट्रीक दबाव लगभग 20 करोड़ वोल्टेज जितना होता है। इस प्रकार 20 हजार से 40 हजार एम्पियर का विद्युत्-प्रवाह 20 करोड़ वोल्ट के विद्युत् दबाव के बीच एक तीव्र प्रकाश की चमक या रेखा 'बिजली' (Lightning) है। (तुलना के लिए गृह-कार्य में प्रयुक्त विद्युत् का वोल्टेज केवल 250 वोल्ट ही होता है।) जिस समय बिजली चमकती है उस समय जो उष्मा-ऊर्जा का विकिरण होता है, उससे वहां का तापमान बढ़कर इतना तीव्र हो जाता है, जो सूर्य के सतह के तापमान से भी चौगुना हो जाता है। ऐसी प्रचंड बिजली का अस्तित्व केवल एक सैकिंड के हजारवें अंश जितने समय तक ही रहता है।

''यदि इतना तीव्र विद्युत्-प्रवाह किसी प्राणी या मनुष्य के शरीर में प्रविष्ट हो जाए तो शरीर के समस्त ज्ञानतंतुओं और समस्त रक्तवाहिनियों की सर्कीटें जो मस्तिष्क और हृदय के साथ जुड़ी हुई है, शीघ्र प्रभावित हो जाती हैं, इससे हृदय की धड़कन रुक जाती है और ज्ञानतंतुओं पर पड़ने वाले प्रभाव से श्वासोच्छ्वास की प्रक्रिया रुक जाती है। बहुत बार श्वासोच्छ्वास पुनः चालू न होने से व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है। यदि अतितीव्र विद्युत्-प्रवाह प्रवेश कर ले तो नर्वस सिस्टम की समग्र तंत्रिका-कोशिकाएं (न्यूरोन्स) नष्ट हो सकती हैं। कभी-कभी संयोगवश विद्युत्-प्रवाह की कुछ मंदता के कारण सारी तंत्रिका-कोशिकाएं नष्ट नहीं होती, पर उनमें सूक्ष्म छिद्र हो जाते हैं (यानी क्षतिग्रस्त हो जाती हैं।)''

तड़ित-विद्युत् एवं अशनिपात को तेउकाय क्यों कहा गया?

डा. जे. जैन एवं डॉ. बिहारी छाया तथा भौतिक विज्ञान की पाठ्य-पुस्तकों के उपर्युक्त उद्धरणों से यह स्पष्ट होता है कि

1. बिजली चमकने की प्रक्रिया खुले वातावरण में होती है। जहां अग्नि को उत्पन्न करने वाली ऑक्सीजन प्राणवायु उपलब्ध है।

2. बिजली चमकने के (प्रकाश के) साथ उष्मा ऊर्जा का उत्सर्जन तापमान की

अत्यधिक वृद्धि करता है। इससे हवा में विद्यमान ज्वलनशील गैस या अन्य सूक्ष्म पदार्थों को ज्वलन-बिंदु प्राप्त हो जाता है।

इस प्रकार 'अग्नि' या ज्वलन की क्रिया के लिए उपयुक्त सामग्री प्राप्त होती है यानि अग्नि की योनि या तेउकाय की योनि उपलब्ध होती है। तात्पर्य यह हुआ कि यद्यपि इलेक्ट्रीसीटी के रूप में डीस्चार्ज होने वाली ऊर्जा स्वयं पौद्गलिक होने पर भी जब बिजली चमकती है तो उसके कारण तुरंत अग्नि-दहन की प्रक्रिया के रूप में सचित्त तेउकाय की उत्पत्ति होती है। इस कारण से 'विज्जू' (आकाशीय बिजली या विद्युत्) को तेउकायिक जीवों की गणना में लिया गया है।

डॉ. जे. जैन के अुनसार ''बिजली खुद कोई प्रकाशक व तापक पुद्गल नहीं है। यह केवल इलेक्ट्रो-मेग्नेटिक फील्ड लिए हुए चार्ज या ऊर्जा है। यह ताप व प्रकाश आदि अन्य ऊर्जा में परिणत जरूर हो सकती है। आकाश में जब यह 'विद्युत्-चाप' बनाती है तो वो ऊर्जा के अन्य रूप में परिणत हो जाने से **दिखाई** व **सुनाई पड़ती है** तथा सचित्त अग्निकाय बनती है।''[110]

इलेक्ट्रीसीटी स्वयं केवल ऊर्जा है। किन्तु जब आकाशीय विद्युत् किसी पर गिरती है, तब उच्च तापमान भी उसके साथ विकिरित होता है, जो ज्वलनशील पदार्थ को भस्मसात् कर देता है। जहां शरीर के भीतर यह प्रवेश कर लेती है, वहां उसका प्रभाव नर्वस सिस्टम पर होने से वह व्यक्ति को मार देती है या शरीर के तंत्रों को क्षतिग्रस्त कर देती है। डॉ. जे. जैन के अनुसार ''बिजली का अग्नि में रूपान्तरण होने की वजह से आकाशीय विद्युत् सचित्त तेउकाय बन जाती है। कभी-कभी उसके उच्च ऊर्जा या उष्मा का परिणमन आग के गोले के रूप में भी होता है। आग के गोले तेजी से पृथ्वी के भीतर समा जाते हैं। मार्ग में भी जो कोई ज्वलनशील पदार्थ आता है, उसे वह जला देती है। ये वज्रपात या अशनिपात (Thunder bolt) के रूप में पृथ्वी पर गिरता है, वह भी अपनी तीव्र उष्मा या तापमान के कारण मार्ग में आने वाले पदार्थों को जला कर राख बना देते हैं।''[111]

'प्राणवायु' के कारण आकाशीय बिजली को सचित्त माना गया है, इसे स्पष्ट करते हुए डॉ. जे. जैन ने लिखा है[112]

''कुचालकता व आयनीकरण (ionisation) कुचालक पदार्थों में विद्युत्-प्रवाह नहीं हो सकता है। अतः विद्युत् उनमें ताप भी पैदा नहीं कर सकती है। जैसे लकड़ी। साधारणतया 'गैस' में भी विद्युत्-प्रवाह नहीं हो सकता है। लेकिन उच्च विद्युत्-दबाव (voltage) हजारों वोल्ट पर, गैस आयनीकृत (ionise) हो जाती है, जिससे विद्युत्-प्रवाह 'चाप' के रूप में शुरू हो जाता है। इसके अलावा यदि ऐसी गैस (जैसे जल-वाष्प या धातु-वाष्प) उसमें मिला दी जाय, जिसका आयनीकरण-वोल्टेज (ionisation-voltage)

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

कम होता है, तो अपेक्षाकृत कम वोल्टेज पर ही उस गैस की काफी मोटाई आयनीकृत (ionise) होकर प्लाज़्मा बना सकती है। जैसे आकाशीय बादल में विद्युत्-चाप का पैदा होना। इसमें बादलों में इकट्ठी हुई स्टेटिक विद्युत् (चार्ज) प्लाज़्मा रूप में निरावेशित (discharge) होकर प्रवाहित हो जाती है। इसमें बिजली की गर्जन, चमक व ताप पैदा होता है। इस प्रवाह को सचित्त माना गया है। उस प्लाज़्मा में प्राणवायु से रासायनिक क्रिया भी देखने में आई है। उसमें गैस के परिवर्तन की प्रक्रिया देखी गई है।''

डॉ. जे. जैन ने 'विज्जू' और 'इलेक्ट्रीसीटी' की भिन्नता को बताते हुए लिखा है ''उत्तराध्ययन अध्याय 36 में बादर अग्निकाय के भेद में 'विज्जू' शब्द से बिजली को तेउकाय स्वीकार किया है। (यह सही तो है लेकिन 'विज्जू' शब्द केवल उसी प्राकृतिक बिजली, जो आकाश में कड़कती हुई विद्युत्-चाप यानि ऊष्ण-प्लाज़्मा के रूप में दिखाई देती है के लिए प्रयुक्त हुआ है। यह कृत्रिम 'विद्युत्-ऊर्जा' या बादलों में इकट्ठे 'स्टेटिक-चार्ज' की विद्युत्-ऊर्जा के लिए प्रयुक्त हुआ प्रतीत नहीं होता है।''[113]

अब आगम में 'विज्जू' बिजली या विद्युत् (Lightning) को सचित्त तेउकाय की गणना में किस अपेक्षा से माना गया है, उस अपेक्षा की स्पष्टता इस प्रकार होती है

1. जब तक बादलों के अंदर विद्युत्-आवेश स्थित (static) इलेक्ट्रीक ऊर्जा की अवस्था में अवस्थित रहते हैं, तब तक केवल पौद्गलिक यानि अचित्त द्रव्य हैं।

2. जब वे इलेक्ट्रीक चार्ज हवा के आयनीकरण की वजह से 'डीस्चार्ज' होते हैं, तब इलेक्ट्रोमेग्नेटीक (विद्युत्-चुम्बकीय) ऊर्जा के रूप में भी पौद्गलिक अवस्था में होता है।

3. जब यह ऊर्जा जो अत्यधिक तापमान-सहित होती है, ज्वलनशील पदार्थों (गैस, सूक्ष्म पदार्थ) के सम्पर्क में खुली हवा (जिसमें ऑक्सीजन भी होता है) में आती है तब कबंश्चन की क्रिया घटित होकर चमकती हुई बिजली के साथ ही अग्नि का स्वरूप प्रकट हो जाता है और बिजली सचित्त तेउकाय बन जाती है। जहां-जहां यह ज्वलनशील पदार्थों को जलाती है, वहां-वहां सब जगह सचित्त तेउकाय का अस्तित्व होता है।

यह बहुत स्पष्ट समझ में आता है कि ज्वलन-बिंदु से भी अत्यधिक तीव्र तापमान और खुली हवा में ऑक्सीजन की उपलब्धि तथा ज्वलनशील पदार्थों का योग ये सब मिलकर 'विज्जू' को सचित्त तेउकाय बना डालते हैं। इसी प्रकार अशनिपात या वज्रपात भी तीव्र अग्नि का रूप बन जाता है।

8. इलेक्ट्रीसीटी और अग्नि (तेउकाय)

केवल पौद्गलिक परिणमनों की निष्पत्ति-रूप विद्यमान शुद्ध इलेक्ट्रीसीटी और ज्वलन-क्रिया की निष्पत्ति रूप तेउकायिक जीव के रूप में उत्पन्न अग्नि की भिन्नता को अनेक आधारों पर स्पष्ट समझा जा सकता है

1. लकड़ी, रबड़, कपड़ा आदि विद्युत् के कुचालक हैं, तथा ताप (उष्मा) के भी कुचालक हैं, जबकि लोहा, तांबा आदि धातु विद्युत् के सुचालक हैं तथा ताप (उष्मा) के भी सुचालक हैं।

2. लकड़ी, रबड़, कपड़ा आदि ज्वलनशील होने से ऑक्सीजन का योग मिलने पर शीघ्र जल जाते हैं, लोहा आदि धातु साधारण तापमान पर जलते नहीं, केवल गरम होते हैं। अत्यधिक तापमान पर भी यदि ऑक्सीजन न मिले तो धातु गरम होकर प्रकाशित हो जाती है तथा पिघलनांक बिंदु पर तरल हो जाती है, जलती नहीं।

3. मिट्टी, धूल, पृथ्वी (पत्थर आदि) विद्युत् के सुवाहक हैं, पर अग्नि की दृष्टि से अज्वलनशील हैं तथा अग्निशामक हैं।

4. अग्नि में पदार्थ नष्ट होता है या खत्म होता है तथा उसमें पदार्थ के रासायनिक ढांचे में बदलाव आता है।

डा. जे. जैन के अनुसार, ''हाइड्रोकार्बन इंधन जलकर गैस रूप में (CO_2 और H_2O आदि) परिवर्तित होते हैं। या अन्य इंधन जलकर 'ठोस-अवशेष' (राख आदि) में बदल जाते हैं। ये राख-आदि (non-fuel) इंधन नहीं होते हैं। रासायनिक क्रिया द्वारा इनका पर्याय बदलता है। **घर्षण की अग्नि में** पहले घर्षण से गर्मी पैदा होती है, गर्मी से उस पत्थर के बारीक टूटे कण 'लाल' रंग में चमकने लगते हैं फिर 'हवा' से रासायनिक प्रक्रिया करके अग्नि पैदा करते हैं। (चकमक की अग्नि)।''[114]

विद्युत में पदार्थ पुनः मूल स्थिति में आ जाता है।

5. पानी अग्नि को बुझा देता है, उसका शस्त्र है। किन्तु ionised पानी में विद्युत् का प्रवाह गुजर सकता है। इलेक्ट्रोलाइसीस की प्रक्रिया में पानी के भीतर

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

विद्युत् प्रवाहित कर हाइड्रोजन-ऑक्सीजन को अलग-अलग किया जाता है। उच्च वोल्टेज की विद्युत् गीली दिवार या नम (शीलन) वाली भूमि में आसानी से प्रविष्ट हो जाती है जो बहुत बार खतरे का कारण बन जाता है। इस प्रकार अग्नि का शस्त्र पानी अग्नि बुझाने वाला है, पर विद्युत्वाही बन सकता है।

6. केरोसिन जैसा ज्वलनशील पदार्थ ऑक्सीजन का संयोग होने पर जल उठता है, पर E.D.M. मशीन में उसे 'coolant' के रूप में काम में लिया जाता है तथा 'sparking' के बावजूद भी ऑक्सीजन के अभाव के कारण जलता नहीं है। (इस विषय की विस्तृत चर्चा आगे की जाएगी। देखें पृष्ठ 146-152)

9. बल्ब की प्रक्रिया

इलेक्ट्रीक बल्ब जिसे 'incandescent lamp' कहा जाता है क्या है? कैसे बनता है? उसकी क्या प्रक्रिया है? उसमें शून्यावकाश है या नहीं? उसमें ऑक्सीजन है या नहीं? उसमें 'इनर्ट गैस' (निष्क्रिय वायु) क्यों भरी जाती है? आदि-आदि प्रश्नों को स्पष्ट समझना जरूरी है। निम्नलिखित 'इंटरनेट' से उपलब्ध सामग्री में ये सारे प्रश्न वैज्ञानिक दृष्टि से बहुत स्पष्ट किए गए हैं। इसलिए इन्हें यहां अविकल रूप से हम अंग्रेजी में ही उद्धृत कर रहे हैं और फिर इसका पूरा अनुवाद दिया गया है।

How are incandescent light bulbs made?—SU

The glass enclosures are made from a ribbon of hot glass that's first thickened and then blown into molds to form the bulb shapes. These enclosures are then cooled, cut from the ribbon, and their insides are coated with the diffusing material that gives the finished bulb its soft white appearance.

The filament is formed by drawing tungsten metal into a very fine wire. This wire, typically only 42 microns (0.0017 inches) in diameter is first wound into a coil and then this coil is itself wound into a coil. The mandrels used in these two coiling processes are trapped in the coils and must be dissolved away with acids after the filament has been annealed.

The finished filament is clamped or welded to the power leads, which have already been embedded in a glass supporting structure. This glass support is inserted into a bulb and the two glass parts are fused together. A tube in the glass support allows the manufacturer to pump the air out of the bulb and then reintroduce various inert gases. When virtually all of the oxygen has been eliminated from the bulb, the tube is cut off and the opening is sealed. Once the base of the bulb has been attached, the bulb is ready for use.

What types of gas are used in light bulbs and how do their effects differ?—SF, Westfield, NJ

The glass envelope of an incandescent bulb can't contain air

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

because tungsten is flammable when hot and would burn up if there were oxygen present around it. One of Thomas Edison's main contributions to the development of such bulbs was learning how to extract all the air from the bulb. But a bulb that contains no gas won't work well because tungsten sublimes at high temperatures—its atoms evaporate directly from solid to gas. If there were no gas in the bulb, every tungsten atom that left the filament would fly unimpeded all the way to the glass wall of the bulb and then stick there forever. While there are some incandescent bulbs that operate with a vacum inside, most common incandescent lamps contain a small amount of argon and nitrogen gases.

Argon and nitrogen are chemically inert, so that the tungsten filament can't burn in the argon and nitrogen, and each argon atom or nitrogen molecule is massive enough that when a tungsten atom that's trying to leave the filament hits it, that tungsten atom may rebound back onto the filament. The argon and nitrogen gases thus prolong the life of the filament. Unfortunately, these gases also convey heat away from the filament via convection. You can see evidence of this convection as a dark spot of tungsten atoms that accumulate at the top of the bulb. That black smudge consists of tungsten atoms that didn't return to the filament and were swept upward as the hot argon and nitrogen gases rose.

However, some premium light bulbs contain krypton gas rather than argon gas. Like argon, krypton is chemically inert. But a krypton atom is more massive than an argon atom, making it more effective at bouncing tungsten atoms back toward the filament after they sublime. Krypton gas is also a poorer conductor of heat than argon gas, so that it allows the filament to convert its power more efficiently into visible light. Unfortunately, krypton is a rare constituent of our atmosphere and very expensive. That's why it's only used in premium light bulbs, together with some nitrogen gas.

Incidentally, the filament in many incandescent bulbs is treated with a small amount of phosphorous-based 'getter' that reacts with any residual oxygen that may be in the bulb the first time the filament becomes hot. That's how the manufacturer ensures that there will be no oxygen in the bulb for the tungsten filament to react with.

Why is an incandescent light bulb hotter than a fluorescent light?—TJ, Woodbridge, VA

An incandescent light bulb produces light by heating a small

filament of tungsten to about 2500°C. At that temperature, the thermal radiation that the filament emits includes a substantial amount of visible light. But the filament also emits a great deal of infrared light (heat light) and it also transfers heat via conduction and convection to the glass bulb around it. When you put your hand near the bulb, you feel both the infrared light and the heat that has worked its way to the surface of the bulb. The bulb feels hot.

In contrast, a fluorescent lamp tries to produce light without heat. It collides electorns with mercury atoms to produce an atomic emission of ultraviolet light. This ultraviolet light is then converted to visible light by the layer of white phosphor powders on the inside of the lamp's glass envelope. In principle, this whole activity can be performed without creating any thermal energy. However, many unavoidable imperfections cause the lamp to convert some of the electric energy it consumes into thermal energy. Nonetheless, the lamp only becomes warm rather than hot.

Why does an object like metal give off light when it is heated?—ER, Fresno, CA

All objects emit thermal radiation—electromagnetic waves that are associated with the transfer of heat. That's because all objects contain electrically charged particles and whenever electrically charged particles accelearate, they emit electromagnetic waves. Since all objects have thermal energy in them, their electrically charged particles are always undergoing thermal motion and their thermally induced accelerations cause them to emit electromagnetic waves.

At normal temperatures, the electromagnetic waves of thermal radiation are too low in frequency and too long in wavelength for us to see. But when an object's temperature exceeds about 500°C, the object emits a dim glow. By 1800°C, the object emits the yellowish glow of a candle. By 2700°C, the object emits the yellowish-white light of an incandescent bulb. By 5800°C, the object emits the white light of the sun.

How does a light bulb work?—DH, Casselberry, FL (and also KH)

In a common incandescent light bulb, an electric current flows through a double-spiral coil of very thin tungsten wire. As the electric charges in the current flow through this tungsten filament, they collide

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

periodically with the tungsten atoms and transfer energy to those tungsten atoms. The current gives up its energy to the tungsten filament and the filament's temperature rises to about 2500°C. While all objects emit thermal radiation, very hot objects emit some of the thermal radiation as visible light. A 2500°C object emits about 12% of its heat as visible light and this is the light that you see coming from the bulb. Most of the remaining heat emerges from the bulb as invisible infrared light or 'heat' light. The glass enclosure shields the filament from oxygen because tungsten burns in air.

अनुवाद

प्रश्न बल्ब लाईट (बिजली का लट्टू) का निर्माण कैसे किया जाता है?

उत्तर बल्ब लाईट का कांच का गोला गरम कांच को पहले मोटा बनाकर बाद में बल्ब के आकार में ढाल दिया जाता है। इस गोले को ठंडा करने के बाद इसके अंदर की तरफ ऐसे पदार्थ का लेप कर दिया जाता है जिससे उसका रंग सफेद दिखाई देता है।

टंगस्टन धातु का पतला तार (filament) बनाया जाता है जिसकी चौड़ाई केवल 42 माइक्रोन (अर्थात् .0017 इंच) ही होती है। पहले उसका एक गुच्छा बनाया जाता है और फिर इस गुच्छे को भी गुच्छे के रूप में बंट दिया जाता है। गुच्छे बनाने के लिए काम में लिए जाने वाले दंडक (मेन्ड्रेल) को गुच्छे में ही फंसा दिया जाता है और फिर तेजाब की सहायता से उन्हें गाल दिया जाता है।

तैयार फिलामेंट को ऊर्जा देने वाले विद्युत् चालक (lead) के साथ वेल्ड कर दिया जाता है। लीड को पहले से ही एक कांच के आधार देने वाले ढांचे के साथ जड़ दिया जाता है। इस आधार रूप कांच को बल्ब के अंदर उतारकर दोनों कांचों का मिलन कर दिया जाता है। आधार रूप कांच के अंदर रही हुई नलिका के माध्यम से बल्ब के गोले में रही हुई हवा को बाहर पंप कर देने की सुविधा निर्माताओं को मिल जाती है और उसके बाद फिर उस गोले में दूसरी निष्क्रिय वायु भर दी जाती है। जब बल्ब में रहा हुआ ऑक्सीजन समाप्त प्रायः कर दिया जाता है, नलिका को काट दिया जाता है और छिद्र को सील कर दिया जाता है। बल्ब के आधार को जोड़ने पर बल्ब उपयोग के लिए तैयार हो जाता है।

प्रश्न बल्ब में किन-किन प्रकार की वायुओं को भरा जाता है और उनके प्रभावों में क्या-क्या भिन्नता है?

उत्तर बल्ब लाईट के कांच के आवरण के भीतर 'हवा' को नहीं रखा जा सकता क्योंकि टंगस्टन धातु (फिलामेंट) जब गरम होती है तो ज्वलनशील बन जाती

है और यदि उसमें ऑक्सीजन विद्यमान हो, तो वह जल जाएगी। ऐसे बल्बों के विकास में थोमस (आल्वा) एडिसन का एक मुख्य अवदान यही था कि उन्होंने बल्ब की सारी हवा को बाहर निकालने की विधि सिखाई किन्तु जिस बल्ब में कोई गैस नहीं होती, वह बल्ब अच्छी तरह कार्य नहीं कर सकता, क्योंकि टंगस्टन (धातु) ऊंचे तापमान पर बाष्पीकृत हो जाती है अर्थात् उसके परमाणु घनावस्था से उड़कर सीधे बाष्पावस्था में चले जाते हैं। यदि बल्ब में कोई वायु न हो, तो टंगस्टन का प्रत्येक परमाणु जो फिलामेंट से निकलेगा, वह बिना किसी रुकावट के सीधे ही बल्ब की कांच की दिवारों के भीतरी भाग में हमेशा के लिए जमा हो जाएगा चिपक जाएगा। केवल कुछ प्रकार की बल्ब लाईटें ही ऐसी होती हैं जिनमें अंदर शून्यवकाश होता है, बाकी सामान्य बल्बों में थोड़ी मात्रा में आर्गोन और नाइट्रोजन वायु होती है।

आर्गोन और नाइट्रोजन वायु रासायनिक दृष्टि से निष्क्रिय हैं। इसलिए टंगस्टन का फिलामेंट आर्गोन और नाइट्रोजन में ज्वलनक्रिया नहीं कर सकता (क्योंकि ऑक्सीजन का अभाव है)। उधर आर्गोन और नाइट्रोजन के अणुगुच्छ इतने भारी होते हैं कि टंगस्टन का परमाणु, जो कि फिलामेंट से निकलता है, उनसे टकराता है और पुनः फिलामेंट की ओर लौट जाता है। इस प्रकार आर्गोन और नाइट्रोजन वायु फिलामेंट के आयुष्य को बढ़ा देते हैं। दुर्भाग्य से ये वायु भी उष्मा को 'कन्वेक्शन' के द्वारा फिलामेंट से ग्रहण करती रहती है। इसका प्रमाण यह है कि बल्ब के ऊपरि हिस्से में टंगस्टन से निकले हुए परमाणु 'काले धब्बे' के रूप में जमा हो जाते हैं। ऊपर दिखाई देने वाला काला धब्बा (smudge) टंगस्टन के उन परमाणुओं के जमा होने से बनता है जो वापिस फिलामेंट में नहीं लौट पाते हैं, पर गरम आर्गोन और नाइट्रोजन वायुओं के साथ ऊपर उठ जाते हैं।

कुछ विशेष लाइटों में बल्ब में 'क्रिप्टोन' गैस भरी जाती है जो आर्गोन गैस की भांति ही रासायनिक दृष्टि से निष्क्रिय ही है। किन्तु क्रिप्टोन का परमाणु आर्गोन के परमाणु की अपेक्षा से अधिक भारी होता है। इसलिए वह टंगस्टन के परमाणुओं को बाष्पीकृत होने के बाद वापिस फिलामेंट की ओर ढकेलने में अधिक सक्षम होते हैं। क्रिप्टोन गैस का एक लाभ और भी है कि वह आर्गोन की अपेक्षा उष्मा का मंदतर वाहक है। इसलिए उसकी उपस्थिति में फिलामेंट अपनी ऊर्जा को और अधिक मात्रा में दृश्य प्रकाश की ऊर्जा में परिवर्तित कर सकता है। दुर्भाग्य से क्रिप्टोन की मात्रा हमारे वातावरण में बहुत स्वल्प होने से उसका प्रयोग खर्चीला पड़ जाता है। इसीलिए उसका उपयोग केवल विशिष्ट लाईटों के बल्ब में किया जाता है तथा साथ में नाइट्रोजन का भी थोड़ा मिश्रण किया जाता है।

बल्ब में यदि कोई ऑक्सीजन बच भी जाए, तो उसे नष्ट करने के लिए एक

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

तरकीब और काम में ली जाती है उसके लिए बल्ब के भीतर थोड़ा-सा 'फास्फरस-आधृत' 'गेटर' (लेप) होता है, जो भीतर बचे हुए ऑक्सीजन के साथ अनुक्रिया कर उसे समाप्त कर देगा जब पहली बार फिलामेंट को गरम किया जाएगा। इस प्रकार बल्ब-निर्माता इस बात का पक्का निश्चय कर लेते हैं कि बल्ब में टंगस्टन के फिलामेंट के साथ अनुक्रिया करने वाला कोई ऑक्सीजन विद्यमान नहीं है।

प्रश्न ट्यूब लाईट (फ्लोरेशन्स लाईट) की अपेक्षा बल्ब की लाईट अधिक गरम क्यों हो जाती है?

उत्तर बल्ब की लाईट में रहा हुआ टंगस्टन का छोटा-सा फिलामेंट लगभग 2500 डिग्री सेल्सियस तक गरम हो जाता है। इस तापमान पर फिलामेंट जिन उष्मा-विकिरणों का उत्सर्जन करता है उनके साथ अच्छी मात्रा में दृश्य प्रकाश का भी उत्सर्जन होता है। किन्तु इसके साथ-साथ फिलामेंट अवरक्त (इन्फ्रारेड) विकिरणों का उत्सर्जन भी बड़ी मात्रा में करता है जो उष्मा-प्रकाश के रूप में है और उसके द्वारा उष्मा ऊर्जा को बल्ब के कांच तक चालन (कंडक्शन) और संवहन (कन्वेक्शन) प्रक्रिया के माध्यम से पहुंचाया जाता है। जब कोई व्यक्ति बल्ब के समीप अपना हाथ रखता है तो उसे अवरक्त-प्रकाश तथा उष्मा इन दोनों की अनुभूति होती है तथा बल्ब गरम लगता है।

इसके विपरीत ट्यूब लाईट में

फ्लोरेसेंट लाईट प्रकाश देती है, उष्मा पैदा नहीं करती। इसमें इलेक्ट्रोन का प्रवाह पारे (मर्क्यूरी) के परमाणुओं से टकराता है। इससे ये परमाणु अल्ट्रा-वायलेट (परा-बैंगनी) किरणों को उत्सर्जित करते हैं। ये किरणें ट्यूब की अंदर की दिवारों पर लिपे हुए फोस्फोर पाउडर पर गिरती हैं जिससे दृश्य प्रकाश के रूप में इनका उत्सर्जन होता है। सिद्धान्ततः इस सारी प्रक्रिया को बिना किसी उष्मा-ऊर्जा उत्पादन के सम्पादित किया जा सकता है। फिर भी व्यवहार में कई अपरिहार्य अपूर्णताओं के कारण थोड़ी-बहुत विद्युत्-ऊर्जा उष्मा में परिणत हो ही जाती है जिसके फलस्वरूप ट्यूब गरम तो नहीं, मामूली कोष्ण (warm) हो जाती है।

प्रश्न धातु जैसा पदार्थ जब गरम किया जाता है, तो प्रकाश क्यों देता है?

उत्तर सभी पदार्थ उष्मा-विकिरणों का उत्सर्जन करते ही रहते हैं। ये विद्युत्-चुम्बकीय तरंगों के रूप में सभी पदार्थों से निकलती रहती हैं जिसके माध्यम से उष्मा (ऊर्जा) का हस्तान्तरण होता रहता है। यह इसलिए होता है कि सभी पदार्थों में विद्युन्मय आवेश-युक्त कण होते हैं और जब कभी इन विद्युत्-आवेश-युक्त कणों को प्रवेग मिलता है, उन पदार्थों में से विद्युत्-चुम्बकीय तरंगों का उत्सर्जन होता है।

चूंकि सभी पदार्थों में अपनी-अपनी उष्मा-ऊर्जा विद्यमान होती ही है, उनमें रहे हुए विद्युत्-आवेश-युक्त कण निरन्तर रूप में उष्मा-गति करते रहते हैं और इन उष्मा-प्रेरित प्रवेगों के कारण वे विद्युत्-चुम्बकीय तरंगों को उत्सर्जित करते रहते हैं।

सामान्य तापमान पर उष्मा-विकिरणों की विद्युत्-चुम्बकीय तरंगों की कम्पन-आवृत्ति (फ्रिक्वेंसी) इतनी कम होती है कि वे हमें दृष्टिगोचर नहीं हो पाती, किन्तु जब तापमान बढ़कर 500 डिग्री सेल्सियस के आसपास पहुंचता है, पदार्थ एक मंद चमक वाली किरण उत्सर्जित कर देता है। 1000 डिग्री से. तापमान पहुंचने पर पदार्थ से पीली रोशनी वाली मोमबत्ती जैसी चमक निकलती है। जब तापमान 2700 डिग्री से. के आसपास पहुंचता है, तब यह प्रकाश पीली-सफेद रोशनी वाला होता है जैसा बल्ब लाईट में दिखाई देता है। यदि 5800 डिग्री से. तक तापमान हो जाए, तो पदार्थ उसी प्रकार की सफेद रोशनी फेंकेगा जैसी सूर्य की रोशनी होती है।

प्रश्न बल्ब लाईट कैसे कार्य करता है?

उत्तर सामान्य बल्ब लाईट में टंगस्टन के एक पतले दोहरे गुच्छे (कुंडली) वाले सर्पिल तार में विद्युत् प्रवाह बहता है। जब विद्युत्-प्रवाह में रहे हुए विद्युत् आवेश (वाले कण) तार (फिलामेंट) में से गुजरते हैं तब वे टंगस्टन धातु के परमाणुओं के साथ समयबद्ध रूप में टकराते हैं और अपनी ऊर्जा उन परमाणुओं को हस्तान्तरित करते रहते हैं। इस प्रकार विद्युत्-प्रवाह अपनी (विद्युत्) ऊर्जा को टंगस्टन के फिलामेंट को प्रदान करता है, जिससे टंगस्टन का तापमान बढ़ता-बढ़ता 2500 डिग्री से. तक पहुंच जाता है। (यह विद्युत्-ऊर्जा का ताप-ऊर्जा में परिणमन है।) वैसे तो सभी पदार्थ सामान्यतः उष्मा-विकिरण फेंकते रहते हैं, पर अत्यंत गरम पदार्थ अपनी उष्मा विकिरणों के कुछ हिस्से को दृश्य रोशनी के रूप में उत्सर्जित करते हैं। 2500 डिग्री से. तापमान वाला पदार्थ (टंगस्टन फिलामेंट) लगभग 12 प्रतिशत उष्मा-ऊर्जा को दृश्य रोशनी के रूप में उत्सर्जित करता है। इसी रोशनी को हम बल्ब लाईट से बाहर निकलती देखते हैं। उष्मा का शेष भाग (बहुतांश में) बल्ब से बाहर अदृश्य इन्फ्रा रेड (अवरक्त) विकिरणों के रूप में या उष्मा-ऊर्जा के रूप में (जिसे हम उष्मा-रोशनी कह सकते हैं) निकलता है। **बल्ब का कांच का गोला (जो संवेष्टन करता है) फिलामेंट को ऑक्सीजन के सम्पर्क में आने से बचाता है, जिससे वह हवा में जलने से बच जाए। (यही प्रक्रिया स्पष्टतः बल्ब और अग्नि के भेद को स्पष्ट करती है।)**

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

10. ट्यूब लाईट की प्रक्रिया

ट्यूब लाइट में किस प्रकार प्रकाश पैदा किया जाता है, इस विषय में "How Stuff Works" इंटरनेट से उपलब्ध सामग्री को यहां प्रस्तुत किया जा रहा है। इसी के साथ फ्लोरेसेंट लाईट, निओन लाईट आदि में क्या अन्तर है, यह भी स्पष्ट हो रहा है।

"A neon light is the sort of *light* you see used in advertising signs. These signs are made of long, narrow glass tubes, and these tubes are often bent into all sorts of shapes. The tube of a neon light can spell out a word, for example. These tubes emit light in different colurs.

A fluorescent light, on the other hand, is most often a long, straight tube that produces white light. You see fluorescent lights in offices, stores and some home fixtures.

The idea behind a *neon light* is simple. Inside the glass tube there is a gas like neon, argon or krypton at low pressure. At both ends of the tube there are metal electrodes. When you apply a high voltage to the electrodes, the neon gas ionizes, and electrons flow through the gas. These electrons excite the neon *atoms* and cause them to emit light that we can see. Neon emits red light when energized in this way. Other gases emit other colours.

A *fluorescent light* works on a similar idea but it has an extra step. Inside a *fluorescent light* is low-pressure mercury vapor. When ionized, mercury vapor emits ultraviolet light. *Human eyes* are not sensitive to ultraviolet light (although human skin is—see *How Sunburns and Sun Tans World*). Therefore, the inside of a fluorescent light is coated with a *phosphor*. A phosphor is a substance that can accept energy in one form (for example, energy from a high-speed electron as in a TV tube—see *How Television Works*) and emit the energy in the form of visible light. In a fluorescent lamp, the phosphor accepts the energy of ultraviolet photons and emits visible photons.

The light we see from a fluorescent tube is the light given off by the phosphor that coats the inside of the tube (the phosphor *fluoresces*

when energized, hence the name). The light of a neon tube is the colored light that the neon atoms give off directly."

अनुवाद

निओन बत्ती (light) वह है जो विज्ञापन संकेतों में काम ली जाती हैं। ये संकेत बत्तियां लंबी, संकरी शीशे की नलिकाओं से बनती हैं। इन नलिकाओं को विभिन्न आकारों में मोड़ा जाता है। उन्हें किसी अक्षर-विशेष की दृष्टि से आकार दिया जा सकता है। इनमें भिन्न-भिन्न रंग की रोशनी उत्सर्जित होती है।

ट्यूब लाईट या फ्लोरेसेंट लाईट अधिकांशतः लंबी, सीधी नलिका से बनाई जाती है जिसमें सफेद रोशनी निकलती है। ऑफिसों, दुकानों या घरों में इन फ्लोरोसेंट लाईटों का प्रयोग किया जाता है।

निओन बत्ती का सिद्धान्त बहुत ही सरल है। उसमें ट्यूब के अंदर निओन, आर्गोन या क्रिप्टोन जैसी गैस कम दबाव पर भरी जाती है (ऑक्सीजन नहीं होता।) ट्यूब के दोनों छोर पर धातु के इलेक्ट्रोड लगाए जाते हैं। जब इलेक्ट्रोडों पर उच्च वाल्टेज लगाया जाता है, तब निओन गैस के परमाणुओं का 'आयनीकरण' होता है और इलेक्ट्रोन का प्रवाह गैस में से गुजरता है। ये इलेक्ट्रोन निओन के परमाणुओं को उत्तेजित कर देते हैं और उसके फलस्वरूप वे रोशनी (प्रकाश) के रूप में ऊर्जा का विकिरण करते हैं जिसे हम देख सकते हैं। निओन गैस के परमाणु लाल किरणों का उत्सर्जन करते हैं। दूसरी गैसें दूसरे रंगों का विकिरण उत्सर्जित करते हैं।

फ्लोरेसेंट लाईटें (ट्यूब लाईटें) भी इसी प्रकार के सिद्धान्त पर कार्य करती हैं, किन्तु उसमें एक चरण और अधिक है। ट्यूब लाईट के अंदर कम दबाव पर मर्कुरी वेपर (पारे की बाष्प) भर दी जाती है। जब इसका आयनीकरण होता है, तब यह अल्ट्रा-वायलेट (परा-बैंगनी) विकिरणों का उत्सर्जन करती है। हमारी आंखें इन्हें देख नहीं सकती। (हां, हमारी चमड़ी इसके प्रति संवेदनशील होती है।) इसलिए ट्यूब लाईट को अंदर की दिवार पर 'फोस्फर' (स्फूरदीप्ति) यानि रोशनी का स्फुरण करने की क्षमता वाले पदार्थ का लेप लगा हुआ रहता है। इस पर अल्ट्रा-वायलेट किरणें गिरने से यह फोस्फर पदार्थ दृश्य रोशनी के रूप में प्रकाश-किरणों का उत्सर्जन करती हैं। फोस्फर पदार्थ का तात्पर्य है वह पदार्थ जो एक रूप में ऊर्जा को ग्रहण करता है (जैसे तेज गति वाले इलेक्ट्रोन की ऊर्जा को टी.वी. ट्यूब में ग्रहण किया जाता है।) और दृश्य प्रकाश की तरंगों के रूप में उसी ऊर्जा को विसर्जित कर देता है। फ्लोरेसेंट लाईट या ट्यूब लाईट में फोस्फोर पदार्थ अल्ट्रा वायलेट फोटोनों (प्रकाशाणु) की ऊर्जा को ग्रहण करता है और दृश्य फोटोनों (प्रकाशाणु) का उत्सर्जन करता है। (इसमें कहीं भी कार्बन, ऑक्सीजन आदि नहीं होते।)

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

इस प्रकार ट्यूब लाईट से आने वाली रोशनी जो हम देख रहे हैं वह फोस्फर (स्फुरदीप्त) पदार्थ के द्वारा उत्सर्जित प्रकाश है, जो ट्यूब की अंदर की ओर परत के रूप में होता है। (यह फोस्फर पदार्थ जब ऊर्जा प्राप्त करता है, तो प्रतिदीप्ति (fluorescence) देता है, इसलिए इस लाईट को प्रतिदीप्ति लाईट कहा जाता है। जबकि निओन बत्ती में नियोन गैस के परमाणु ही सीधे रंगीन प्रकाश का उत्सर्जन करते हैं।)

"Electrodes, tube life and sputtering

The electrode has the task of carrying current from the power supply wires to the rare gas. Because it is continually subjected to the bombarding of electrons and ions, it heats up, and therefore must be designed to withstand heat. Since the metal is hot, it is highly active chemically, and may combine with gases or impurities within the tube. But by far the greatest difficulty with electrodes arises from what is known as 'sputtering'. Sputtering occurs when the electrode, under the impact of the heavy ions, flies to pieces bit by bit. The metal of the electrode gradually flies off and coats the inside of the glass tube. This effect in itself causes no harm, since the blackening caused by the metal deposit is confined to the ends of the tubes near the electrodes. Eventually, of course, the entire electrode is consumed by the process, but since the action is very slow, the electrode will nevertheless last for normal life. However, sputtering is accompanied by a decrease of gas pressure in the tube. This loss of pressure eventually makes the tube inoperative.

The sputtered metal from the electrode absorbs some of the fill gas in the tube. As the gas is absorbed, the pressure in the tube is reduced leading to what is called 'hardening' of the tube. The reduced gas pressure means there are fewer gas molecules in the tube and the electrons and ions can travel greater distances before hitting each other or a gas molecule. These particles therefore can build up significant speed before they impact the electrode. The high energy impact on the electrode causes a good deal of heat in the glass near the elctrode. Eventually the glass around the electrode will heat until the relative vacuum in the tube sucks in the hot glass, causing the tube to fail. In the early days, this sort of trouble was very common; in fact, the short life of tubes (due to sputtering) was one of the greatest hindrances to the commercial introduction of tube lighting."[115]*

*The Luminous Tube by Wayne Strattman.

अनुवाद

इलेक्ट्रोड्स, ट्यूब (लाईट) की आयु और चिटकना

इलेक्ट्रोड का कार्य है पावर सप्लाई से करंट को विरल गैस तक पहुंचाना। चूंकि उस पर लगातार इलेक्ट्रोनों एवं आयनों की बमवर्षा होती रहती है वह गरम हो जाता है। इसलिए उसकी संरचना ऐसी होनी जरूरी है जिससे वह गरमी को बर्दाश्त कर सके। इलेक्ट्रोड की धातु गरम होने पर रासायनिक दृष्टि से सक्रिय हो जाती है और ट्यूब में मौजूद गैसों और अशुद्धियों के साथ संयोग कर सकती है। इससे भी बड़ी कठिनाई चिटकने की क्रिया के कारण होती है। 'स्पूटरिंग' यानि चिटकना तब घटित होता है जब भारी आयनों के टकराव के द्वारा इलेक्ट्रोड की धातु धीरे-धीरे क्षीण होती जाती है। अर्थात् इलेक्ट्रोड की धातु के परमाणु चिटकते रहते हैं और शीशे की ट्यूब के अंदर जमा होते जाते हैं। यह प्रक्रिया अपने आपमें कोई हानिकर नहीं होती, पर इससे धातु की जो परत ट्यूब के अन्त में भीतर में जमती है उससे ट्यूब का अन्तिम हिस्सा जो इलेक्ट्रोड के पास है श्यामल होता जाता है। (यह श्यामीकरण 'चिटकने' से होता है।) आखिर में तो पूरा इलेक्ट्रोड ही इस प्रक्रिया के कारण क्षरण-ग्रस्त हो जाता है। किन्तु चूंकि सारी क्रिया बहुत ही मंद गति से चलती है, इलेक्ट्रोड अपनी सामान्य अवधि तक चल जाता है। फिर भी चिटकने की प्रक्रिया के साथ ही ट्यूब में विद्यमान गैस का दबाव कम होता जाता है जिससे आखिरकार ट्यब लाईट काम करना बंद कर देती है। (**'ब्लेकनिंग' का कारण कार्बन जमा होना नहीं है।**)

चिटकने वाली इलेक्ट्रोड के धातु-कणों द्वारा ट्यूब में विद्यमान गैस को ग्रहण कर लेने पर ट्यूब में गैस का प्रेसर कम हो जाता है। कम हुए दबाव का अर्थ है ट्यूब में गैस के अणुगुच्छों की संख्या में कमी। इससे इलेक्ट्रोन और आयन आपस में टकराने या गैस-अणुगुच्छ से टकराने से पूर्व लंबी दूरी तय कर लेते हैं। इलेक्ट्रोड पर प्रभाव लाने से पूर्व के तीव्र गति या वेग प्राप्त कर लेते हैं। उच्च ऊर्जा के कारण इलेक्ट्रोड में ट्यूब के अन्तिम छोर के पास गरमी की अच्छी मात्रा पैदा हो जाती है। आखिरकार इलेक्ट्रोड के चारों ओर का शीशा गरम हो जाएगा। यह क्रम तब तक चलता है जब तक ट्यूब में विद्यमान सापेक्ष शून्यावकाश गरम कांच में चूस न लिया जाए। परिणामस्वरूप ट्यूब काम करना बंद कर देगी। प्रारंभ के दिनों में यह कठिनाई बहुत ही आई। वस्तुतः तो ट्यूब का लघु जीवन-काल चिटकने के कारण ही होता है। इसी के कारण ट्यूब लाईट के व्यापार में प्रारंभ में बड़ी कठिनाईयां आई।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

भाग-1

टिप्पणी-क्रम

1. मुनि यशोविजय विद्युत् सजीव या निर्जीव? (द्वितीय आवृत्ति), पृष्ठ 8 पर उद्धृत।
2. वही, पृष्ठ 8 पर उद्धृत आचारांग, 5/5/165
3. आचार्य तुलसी, जैनसिद्धान्तदीपिका, 1/14
4. आचार्य पूज्यपाद, सर्वार्थसिद्धि, 5/33

   ''बाह्यान्तरकारणवशात् स्नेहपर्यायाविर्भावात् स्निह्यते स्मेति स्निग्धः।...स्निग्धत्वं चिक्कणगुणलक्षणपर्यायः।''

   बाह्य और आभ्यन्तर कारण से जो स्नेह-पर्याय उत्पन्न होती है, उससे पुद्गल स्निग्ध कहलाता है।

   (जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश 'स्निग्ध शब्द' में उद्धृत।)
5. प्रज्ञापना सूत्र (पण्णवणा), पद 13, सूत्र 21-22 :

   ''अजीवपरिणाम-पदं

   21. अजीवपरिणामे णं भंते! कतिविहे पण्णत्ते? गोयमा! दसविहे पण्णत्ते, तं जहा बंधणपरिणामे गतिपरिणामे संठाणपरिणामे भेदपरिणामे वण्णपरिणामे गंधपरिणामे रसपरिणामे फासपरिणामे अगरुयलहुयपरिणामे सद्दपरिणामे ॥

   22. बंधणपरिणामे णं भंते! कतिविहे पण्णत्ते? गोयमा! दुविहे पण्णत्ते, तं जहा निद्धबंधणपरिणामे य लुक्खबंधणपरिणामे य।

   गाहा

   समणिद्धयाए बंधो ण होति, समलुक्खयाए वि ण होति।
   वेमायणिद्ध-लुक्खत्तणेण बंधो उ खंधाणं ॥1॥

   णिद्धस्स णिद्धेण दुयाहिएणं, लुक्खस्स लुक्खेण दुयाहिएणं।
   णिद्धस्स लुक्खेण उवेइ बंधो, जहण्णवज्जो विसमो समो वा ॥2॥''

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

6. आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती, गोम्मटसार, गाथा 615

   णिद्धस्स णिद्धेस दुराहिएण, लुक्खस्स लुक्खेण दुराहिरण।
   णिद्धस्स लुक्खेण हवेज्ज बंधो, जहण्णवज्जे विसमे समे वा।

7. आचार्य उमास्वाति, तत्त्वार्थ सूत्र, 5/33

8. (अ) आचार्य पूज्यपाद, सर्वार्थसिद्धि, 5/24

   (ब) षट्खंडागम में भी सादि वैस्रसिक बंध के उदाहरण में बताया गया है ''जो सो थप्पो सादियविस्ससा बंधो णाम तस्स इमो णिद्देसो वेमादा णिद्धदा वेमादा ल्हुक्खदा बंधो। से तं बंधणपरिणामं पप्प से अब्भाणं वा महाणं वा सज्झाणं वा विज्जूणं वा उक्काणं वा कणयाणं वा दिसादाहणं वा धूमकेदूणं वा इंदाउहाणं वा से खेत्तं पप्प कालं पप्प उऊं पप्प अयणं पप्प पोग्गलं पप्प जे चामण्णे एवमादिया अमंगलप्पहुडीणि बंधणपरिणामेण परिणंमति सो सव्वो सादियविस्सस्साबंधो णाम।'' ''यह जो स्थाप्य सादिकविस्रसाबंध है, उसका यह निर्देश है विमात्रा में स्निग्धता और विमात्रा में रूक्षता से (पुद्गलों में) बंध होता है। वे पुद्गल बन्धन को प्राप्त होकर विविध प्रकार के अभ्ररूप से, मेघ, संध्या, विद्युत्, उल्का, कनक, दिशादाह, धूमकेतु, इन्द्रधनुष रूप से तथा क्षेत्र काल, ऋतु, अयन और पुद्गल को प्राप्त कर जो बंधनपरिणाम से परिणत होते हैं तथा इनको लेकर अन्य जो अमंगलप्रभृत्ति बंधन परिणाम रूप से परिणत होते हैं, वह सब सादि-विस्रसा बंध है।'' (षट्खण्डागम, 14/5/32, 37/30,34) जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, बंध शब्द (भाग-3, पृष्ठ 169-170), राजवार्तिक 5/24

9. (a) प्रोफेसर जी.आर. जैन, Cosmology Old & New (being a modern Commentary on the fifth chapter of Tattvarthadhigama Sutra)

   (1) Page 145—"Then further it may be snighda or r"uk] sa; these terms when applied to the elementary particles refer to the positive or the negative charge of electricity."

   (2) Pages 160, 161—"As mentioned incidentally on page 145 these terms s] nigdha and r"uk] sa appear to have been arbitrarily used as the terms positive and negative have been used by modern electricians to denote the two kinds of electricity.

   One is likely to question as to what led us to identify Snigdha and R"uk] sa qualities or Pudgala with positive and negative electrification's. In support of our interpretation we quote the following words from Sarv"artha Siddhi (on S"utra 5.24)

''स्निग्धरूक्षत्वगुणनिमित्तो विद्युत्...''

(Lightning discharge in clouds is produced by the qualities of Snigdha and R"uk] sa i.e. due to the development of positive and negative charges.)

A positive elementary particle combines with another similar particle differing in energy level by two units. Also a negative elementary particle combines with another negative elementary particle differing again in energy level by two units.

A positive particle can also unite with a negative particle and vice versa. Particles at the lowest energy level do not unite. The union of the various particles of different energy levels may form an odd or an even series 3,5,7,9 etc. or 2,4,6,8 etc.

A few examples are given below from modern science to illustrate these combinations:

The heavy electron, referred to on page 87 f.n. has been formed by the union of electrons, i.e., negative elementary particles of matter. If we call negative as R"uk] sa, this is a case of R"uk] sa combining with R"uk] sa.

In the 'Science and Culture' for February 1938 we read that Prof. Eddington "from his theory, has predicted the existence of negatrons" (negative protons) i.e., particles as heavy as the protons but composed of negative particles or negative electric charges. We are pleased to state that such a particle has been discovered and it is an example of R"uk] sa particles combining with R"uk] sa.

The Snigdha combining with Snigdha is illustrated in the formation of protons. Positron is a snigdha elementary particle whereas the proton is a much bigger particle of the same kind. We venture to suggest that a proton has been formed by a close packing of elementary positive particles just as the close packing of protons gives rise to nuclear matter.

Further discoveries of this kind have been announced in the 'Nature', April 16 and May 7, 1938.

Williams and Pickup have obtained results which tend to confirm the existence of particles of mass intermediate between that of the electron and the proton in the cosmic ray streams. Photographs showed the presence of particles of mass about

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

200 times that of the electron, carrying in some cases positive and in others negative charges. One photograph indicated the presence of a particle of mass greater than 430 times that of the electron. Street and Stevenson (1937) obtained results which could be explained by the existence of a negative particle with mass about 130 times that of the electron. Nishina, Takeuchi, and Ishimiya (1937) obtained indications of the particles of both signs having masses about 1/7 to 1/10 of that of the proton, while Ruhlig and Crane (1938) considered that there were particles of mass (120 ± 30) times that of the electron. This leaves no doubt about the combinations between Snigdha and R"uk] sa particles to form similar particles of greater mass."

(3) Page 162—"The structure of the neutron shows that it is an example of a snigdha particle combining with a R"uk] sa particle—a proton combining with an electron in close union....

"The nuclei of modern atoms are also an aggregation of protons, neutrons and Mesons, and therefore serve as examples of Snigdha combining with R"uk] sa.... In the formation of molecules from atoms we again see the union of Snigdha and R"uk] sa atoms.... a crystal of common salt (sodium chloride) is composed of atoms of sodium and chlorine. When it is dissolved into water, it dissociates into positive (snigdha) ions of sodium and negative (R"uk] sa) ions of chlorine."

(4) Page 163—"Sodium atoms combining with chlorine atoms is a case of snigdha uniting with R"uk] sa, whereas two oxygen atoms combining with each other to form a molecule of oxygen is a case of R"uk] sa uniting with R"uk] sa."

(5) Pages 164, 165—न जघन्युगुणानाम्। (न जघन्यगुणानाम् परमाणूनां बन्धो भवति।) (The ultimate elementary particles at the lowest energy level do not unite at all.)

In other words, we should expect to find electrons and positrons in perfectly free state as well and so it is. We quote the following from The Advance Text-book of Magnetism and Electricity: "Conduction of electricity in electrolytes and in gases is effected by positively and negatively charged carriers called ions. In liquids the ions are free charged atoms or groups of atoms; in gases the negative ion is an electron loaded up by having attached to it one or more neutral atoms (at low pressures the electron

throws off its attendant neutral atoms and travels alone), whilst the positive ion is an atom which has lost one electron. The conduction of electricity in solids is also effected by carriers but the latter in this case consist solely of free electrons."

Further in the same book the author adds that these free electrons in metals are not only responsible for the conduction of electricity but that "in the light of modern work there is every reason to believe that the electrons in the metals are the essential agents in the heat transference" also.

Also the positrons have been found to occur in a free state in Nature. In fact their first discovery was made by Anderson in a stream of cosmic rays.

The Jain conception of different energy levels associated with the elementary particles of matter, viz., electrons and positrons is confirmed from many sources. Referring to Pauli's exclusion principle, Prof. Born says "An electron gas is supposed to exist in the interior of metals and to account for their high conductivity. According to our former principles, we should have to give each of the electrons a name, Edward, John, George and so on. .... The extremely satisfactory discovery was made that the new Fermi-Dirac statistics applied to the electrons in metals gives much better results than the older theory." As mentioned on page 99 Fermi-Dirac statistics gives us a means distinguishing between individual electrons having different energies.

Not only in the electrons but in the individual atoms also there is some distinction which certain phenomena seem to indicate but which science has not been able to elucidate so far. For instance, referring to the phenomenon of radioactivity, Prof. Max Born further says, "We may cherish the opinion that there must ultimately be some inner reason for the fact that one atom lives only a few seconds and its apparently identical neighbour many years; but no one has yet succeeded in putting his finger on the cause." This statement clearly shows that atoms do differ in some intrinsic property which Jain writers have been given the designation 'the degree of snigdhatva and r"uk] satva."

(6) Pages 190, 191—"The union of the electrons and the positrons to form different kinds of matter is attributed to the differences in the degrees of Snigdha and R"uk] sa properties of

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

these particles. As mentioned on page 160 f.n. the discharge of electricity between the clouds has been attributed, by the author of Sarvartha Siddhi, to the same property of Snigdhatva and R"uk]satva. Referring to the phenomenon of atomic-interlinking Dr. B.N. Seal in his book The Positive Sciences of the Ancient Hindus (London), suspects that "the crude but immensely suggestive theory of chemical combinations (of the Jains) is possibly based on the observed electrification of smooth and rough surfaces as the result of rubbing. (Mark that the words Snigdha and R"uk]sa have been translated as smooth and rough). In S"utras 33-36 the laws of these combination are discussed in detail and in S"utra 37 the formation of neutral atoms from positive and negative charges, the formation of positive and negative ions and as to how the same atom behaves sometimes as electropositive and sometimes as electro-negative are explained."

(b) J.S. Zaveri and Muni Mahendra Kumar, Microcosmology: Theory of Atom in Jain Philosophy and Modern Science, pages 159-160—

"The four additional touch are formed by combination of four basic touch as follows:—

(i) The negative charge (i.e. r"uk]sa) is associated with lightness.

(ii) The positive charge (i.e. snigdha) is associated with heaviness.

(iii) Combination of cold spar«sa and positive charge results in production of soft spar«sa.

(iv) Combination of hot spar«sa and negative charge results in production of hard spar«sa.

Thus, there are two classes of material objects (i) those possessing four touch i.e., catu]hspara«s$û and (ii) those possessing eight touch i.e., a]s_tspar«si. Out of the eight *varga]n"as* (categories) of *pudgala* which intereact with the psychical existence, the last four are *chatu]hspar«s$û* while the first four are a«s_taspar«s$û. Out of the last four categories, the category of «svãsocchaw"as is considered to be a]staspar«s$û by some "ac"aryas.

The eight touch which can be grouped into four pairs refer to

the following four physical properties of modern science:

(i) Hot, cold correspond to temperature.

(ii) Dry (r"uk]sa) and gluey (snigdha) correspond respectively to positive and negative electrical charges.

(iii) Light, heavy correspond to mass (density)

(iv) Hard, soft correspond to measure of hardness.

(i) Temperature (Hot, Cold)

The first pair hot (u]s]na) and cold («sita) refers to the physical property of temperature, which is the measurement of heat level.

The range of temperature existing in nature is very wide.

(ii) Electric Charge (Dry, Gluey)

The quality of dryness and glueyness refer to the physical property of electric charge. The qualities play an important part in the formation of aggregates (skandha), just as positive and negative electric charges of subatomic particles play important role in the formation of atoms and molecules.

(iii) Mass or Density (Light, Heavy)

The third pair-light (laghu) and heavy (guru) refers to the physical property of mass or density. According to the Jain concept, this pair is acquired by a]s_taspar]s$û aggregates only, and therefore, the catu]hspar]s$û aggregates are devoid of mass. They are *agurulaghu* i.e. neither heavy, nor light. When compared with the modern particle physics, it can be said that all *catu]hspar]s$û* aggregates are in the form of energy and their entire mass is in their motion."

"The param"a]nus have only two sparsa:

(i) either snigdha or r"uk]sa.

(ii) either «sita or "us]na.

Comparing these characteristic qualities of *pudgala* with those of subatomic particles - protons, neutrons, etc., we find that:

(i) snigdha (gluey) and r"uk]sa (dry) correspond to the electric charges + ive and - ive respectively.

(ii) while guru (heavy) and laghu (light) correspond to the quality of 'mass'.

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

Our identification of snigdha and r"uk]sa with + ive and - ive charges is based on the following commentary in Sarvãrthasiddhi on s"utra 5/24 of *Tattv"artha s"utra*—"*...Snigdha-r"uk]satva-gu]na-nimitto vidyut.....*"That is, lightning in clouds is produced by the qualities of snigdha and r"uk]sa, i.e., due to the development of + ive and - ive charges in the clouds.

Similarly, the *spar«sa* guru (heaviness) and *laghu* (lightness) are to be identified with mass. A param"a]nu has no mass but it must possess either a + ive electric charge *(snigdhatva)* or a -ive electric charge *(ruk]stva)*. All *catu]hsapar«s$û* r"uk]sa compositions have no mass. In other words, *param"a]nu pudgala* and all *catu]hsapar«s$û pudgala* are neither guru nor *laghu*. They are *agurulaghu* i.e. without mass."

10. आचार्य वीरसेन, धवला (टीका), 5/प्र. 28 (जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, भाग-3, पृष्ठ 546 द्वारा उद्धृत, विद्युत्करण शब्द)

11. (a) अणुसंखासंखेज्जा तधणत वग्गणा अगेज्झाओ।
आहार-तेज-भासा, मण-कम्म इय धुयक्खंधा ॥7॥
सांतर-निरंतरेदरसुण्णा पत्तेयदेह धुवसुण्णा।
बादरणिगोदसुण्णा सुहुमा सुण्णा महाकंधा ॥8॥
जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, भाग-3, पृष्ठ 513 (वर्गणा शब्द से उद्धृत)

(b) J.S. Zaveri and Muni Mahendra Kumar, Op. cit, pages 118-119: "In Jain Canonical literature, its commentaries, and other literature, most of the above eight important categories are generally included in twenty-three types. Beginning from most minute param"a]nu varga]n"a and ending with the largest achittamah"askandha-varga]n"a, there are infinite number of groups of pudgala. But it is possible to reduce the number of varga]n"as to twenty-three by grouping them together from certain aspects. [(a) Gom, J$ûva-k"an]da, verses 594, 595: (b) Dhavala, book XIV, part V, VI, s"utra 97, verses 7, 8 p. 117]

1. In the first category, there are free (unattached) solitary param"a]nus, which form "A]nuvarga]na".
2. The second category contains composite bodies (skandha) composed of from two param"a]nus to the limit of "numerable param"a]nus."
3. We, then, come to the category of composite bodies made

up of "Innumerable (asamkhy"ata) param"a]nus."
4. Next comes the category of the composite bodies constituted by "infinite (ananta) param"a]nus".

All these four categories are incapable of being attracted, assimilated and transformed by the psychical order of existence. It has been emphasized that it is an immutable physical law of the universe that the quality of associability is for ever absent in the composite bodies constituted by less than infinitely infinite (anant"ananta) param"a]nus. Only when the number of constituent ultimate atoms exceeds the threshold of nonassociability, then and only then they could be used by the psychic order of existence.

This does not mean that all the composite bodies with larger number than mentioned above possess this attribute. Some of them can be associated and some of them cannot be, as we shall see below." (See foot-note 12 (b)).

12. (a) आचार्य वीरसेन, धवला, 14/5/6, 726/545/11

तत्थ आहार-तेज-भासा-मण कम्म इय वग्गणाओ गहणपाओग्गाओ अवसेसाओ अगहणपाओग्गाओ त्ति धेत्तव्वं।

(आहार, तैजस्, भाषा, मन और कार्मण, ये पांच वर्गणाएं ग्रहण-योग्य हैं, शेष सभी अग्रहण योग्य ही हैं। (जै.सि.कोश, वर्गणा शब्द, खंड-3, पृष्ठ 524)

(b) J.S. Zaveri and Muni Mahendra Kumar, Op. cit, pages 119—

"5. 'Ah"ara-varga]n"a

The fifth category is the first one which crosses the above mentioned threshold of associability. In this category fall the groups of aud"arika, vaikriya, "ah"araka and «svasocchv"asa. 'Ah"ara literally means association. Hence, "ah"ara varga]n"a stands for the category of pudgala endowed with associability.

6. Prathama agr"ahya (i.e. First unassociable category)
7. Taijas (Luminous)
8. Second unassociable category.
9. Bh"a]s"a (Matter essential for function of speech)
10. Third unassociable category.

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

11. Manas (Matter essential for the function of thinking)
12. Fourth unassociable category.
13. K"arma] na (Matter responsible for contaminating souls). This is the most subtle category of pudgala which has many practical significances.

14-22. These categories are of little practical significance and are merely of academic interest.

23. The 23rd category is mah"askandha i.e. the largest aggregate which pervades the entire cosmic space."

13. धवला 14/5, 6/सूत्र 737/पृष्ठ 513 (जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, खण्ड-3, पृष्ठ 521, 'वर्गणा शब्द' में उद्धृत) ''जिन द्रव्यों को ग्रहण कर तैजस शरीर रूप से परिणाम कर जीव परिणमन करते हैं, उन द्रव्यों की तैजसद्रव्यवर्गणा संज्ञा कहते हैं।''

14. विस्तृत वर्णन के लिए देखें जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, भाग 3, पृष्ठ 513-516 (वर्गणा शब्द)।

15. धवला, 14/5, 6, 88/64/7 ''आहार-तेजा-भासा-मण-कम्मइयवग्गणाओ चेव एत्थ परूवेदव्वाओ, बंधणिज्जत्तादो, ण सेसाओ, तासिं बंधणिज्जत्ताभावादो। ण, सेसवज्जणपरूवणाए विणा बंधणिज्जवग्गणाणं परुवणोवायाभावादो, वदिरेगावगमणेण विणा णिच्छिदण्णपच्चयउत्तीए अभावादो वा।''

धवला, 14/5, 6, 117/224/1 ''पुव्वुत्ततेवीसवग्गणाहिंतो पंचसरीराणि पुधभूदाणि त्ति तेसि बाहिरववएसो। तं जहा ण ताव पंचसरीराणि अचित्तवग्गणासु णिवदंति, सचित्ताणमचित्तभावविरोहादो। ण च सचित्तवग्गणासु णिवंदति, विस्सासुवचएहि विणा पंचण्हं सरीराणं परमाणूणं चेव गहणादो। तम्हा पंचण्हं सरीराणं बाहिरवग्गणात्ति सिद्धा सण्णा।'' (जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश भाग 3, पृष्ठ 516 वर्गणा शब्द में उद्धृत)।

16. प्रज्ञापना सूत्र (पण्णवणा), पद 12, सूत्र 7-38.

17. भगवती सूत्र (भगवई), शतक 8, उद्देशक 1, सूत्र 1 ''कतिविहाणं भंते! पोग्गला परिणता?'' गोयमा! तिविहा पोग्गला पण्णत्ता, तं जहा पयोगपरिणया, मीसापरिणया, वीससापरिणया।''

18. वही, शतक 8, उद्देशक 1, सूत्र 42

''वीससापरिणया णं भंते पोग्गला कतिविहा पण्णत्ता? गोयमा! पंचविहा पण्णत्ता,

तं जहा वण्णपरिणया, गंधपरिणया, रसपरिणया, फासपरिणया, संठाणपरिणया।''

19. वही, शतक 8, उद्देशक 1, सूत्र 2

''पयोगपरिणया णं भंते! पोग्गला कतिविहा पण्णत्ता? गोयमा! पंचविहा पण्णत्ता, तं जहा एगिंदियपयोगपरिणया, बेइंदियपयोगपरिणया, तेइंदियपयोगपरिणया, चउरिंदियपयोगपरिणया, पंचिदियपयोगपरिणया।''

20. वही, शतक 8, उद्देशक 1, सूत्र 40

''मीसापरिणया णं भंते! पोग्गला कतिविहा पण्णत्ता? गोयमा! पंचविहा पण्णत्ता, तं जहा एगिंदियमीसापरिणया जाव पंचिदियमीसापरिणया ॥''

21. आचार्य तुलसी, जैन सिद्धान्त दीपिका, 1/14

''शब्द-बंध-सौक्ष्म्य-स्थौल्य-संस्थान-भेद-तमश्छाया-तपोद्द्योतप्रभावांश्च।''

22. आचार्य उमास्वाति, तत्त्वार्थ सूत्र, 2/32

''सचित्त-शीत-संवृताः सेतराः मिश्राश्चैकशस्तद् योनयः।''

23. (a) आचार्य शिवकोटि, मूलाराधना (भगवती आराधना), गाथा 1099-1101

''एइंदिय णेरइया संवुढजोणी हवंति देवा य।
वियलिंदिया य वियडा संवुढवियडा य गब्भेसु ॥ 1099
अचित्ता खलु जोणी णेरइयाणं च होइं देवाणां।
मिस्सा य गब्भजम्मा तिविही जोणी दु सेसाणं ॥ 1100
सीदुण्हाखलुजोणी णउइयाणं तहेव देवाणं।
तेऊण उसिणजोणी तिविहा जोणी दु सेसाणं ॥ 1101
(जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, भाग 3, पृष्ठ 389, ''योनिशब्द'' में उद्धृत)

(b) आचारांग वृत्ति, पत्र 45 तत्रैषां संवृता योनिरुष्णा च सचित्ताचित्तमिश्रभेदात् त्रिधा, सप्त चैषां योनिलक्षा भवन्ति।

24. J.S. Zaveri and Muni Mahendra Kumar, Op. cit, page 12—

"There exists in nature 92 different chemical elements, that is, 92 different kinds of atoms. While some of these elements such as oxygen, nitrogen, carbon, etc. are rather abundant, some others such as lanthanum, cerium etc. are very rare. In addition to 92 natural elements, modern science has succeded in making several entirely new elements artificially (the number has become 103)."

25. वही, पृ. 54.57

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

26. (a) Gomber & Gupta, Pradeep's Fundamental Physics (XI), 4 / 16,17

"Electrical Energy arises on account of work required to be done in moving the free charge carriers in a particular direction through a conductor.

Chemical Energy of a body, say a chemical compound is the energy possessed by it by virtue of chemical bonding of its atoms. The chemical energy becomes available in a chemical reaction.

Nuclear Energy is the energy obtainable from an atomic nucleus. Two distinct modes of obtaining nuclear energy are (i) Nuclear fission (ii) Nuclear fusion.

Nuclear fission involves splitting of a heavy nucleus into two or more lighter nuclei, whereas nuclear fusion involves fusing of two or more lighter nuclei to form a heavy nucleus.

In both, the nuclear fission as well as nuclear fusion, a certain mass disappears, which appears in the form of nuclear energy. This is in accordance with Einstein mass energy relation.

Mass Energy Equivalence

In classical (old) Physics, mass and energy are two separate physical quantities. In an isolated system, mass is constant, and energy too remains constant. In the year 1905, Einstein made an increadible discovery that energy can be transformed into mass and vice-versa, i.e. mass can be transformed into energy. One can be obtained at the cost of the other. The mass energy equivalence relation as put forth by Einstein is

$E = mc^2$

here m = mass that disappears,

E = energy that appears,

C = velocity of light in vacuum.

This is when mass is being converted into energy. Conversely, when an amount of energy E is converted into mass, the mass that appears is $m = E/c^2$.

Thus, according to (modern) Quantum Physics, mass and energy are not conserved separately, but are conserved as a single entity called 'mass-energy'.

This relation is of great significance in Physics. It has solved many hitherto unsolved problems in Physics. Further, the law

of conservation of mass and law of conservation of energy have been unified by this relation into a single law of conservation of mass energy. As c is large ($= 3 \times 10^8$ m./s.), c^2 is 9×10^{16}. Hence even a small mass difference (m) can produce enormous amounts of energy.

Most of the energy in the universe e.g. energy from the sun and other stars is obtained on account of conversion of mass into energy.

Transformation of energy

It is the phenomenon of charge of energy from one form to the other. We come across such changes in day-to-day life. For example:

(i) In an electric bulb, electric energy is converted into light energy and heat energy.

(ii) In an electric iron, electric heater, geyser etc., electric energy is converted into heat energy.

(iii) In an electric fan, electric motor, electric energy is converted into mechanical energy.

(iv) In a hydroelectric power station, potential energy of water is converted ultimately into electric energy.

(v) In a heat engine, chemical energy from coal/oil is converted into mechanical energy.

(vi) In a nuclear reactor, mass is being converted into energy.

(vii) In the sun and other stars, mass is being converted into energy, and so on.

Principle of conservation of energy

According to this principle, the sum total of energy of all kinds in an isolated system remains constant at all times. This means that energy can neither be created nor be destroyed. Energy can only be changed from one form to another. The amount of energy appearing in one form is always equal to the amount of energy disappearing in some other form. The total energy thus remains constant, always provided, at all points, we measure the amount of energy present in each form (including mass—which too is a form of energy).

26. (b) Satish K. Gupta, Modern's A.B.C. of Physics vol. II for class XII, CBSE, p. 1198—

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

"Stellar Energy (Energy generation in the sun and stars)"

The sun radiates energy at a tremendous rate of 4×10^{16} Js^{-1}. The stars are also radiating a great amount of energy. Further, they have been radiating energy for several billions of years. It has been estimated that the chemical processes like burning or nuclear fission cannot account for such a large quantity of radiation for several billions of years. Whereas no known chemical process can be source of such a large amount of energy, possibility of fission as the cause of this energy is ruled out on the basis of the hypothesis that sun does not have the required abundance of heavy nuclei of fissionable matter. On the other hand, about 90% of the mass of the sun consists of hydrogen and helium.

Thus, we conclude that thermonuclear reactions are the main source of energy in the sun and in the stars.

27. J.S. Zaveri, Human Body : Design, Function and Development, page 57—

"The nervous system is the most complex system in the human body. It co-ordinates and controls the work of other systems (of the body) and through them controls the function of the body as a whole".

28. (a) Ibid., p. 75—

"The neuron is the structural and functional unit of the nervous system. It is an electrically charged cell, specialized in two key areas of functions: excitability and conductivity."

(b) J.S. Zaveri & Muni Mahendra Kumar, Neuroscience and Karma, pages 26, 27—

"The miraculous functions that brains perform depend on the power of nerve-cells to produce certain electrical and chemical changes. ...There is an electrical potential difference of nearly 1/10 of a Volt between the inside and outside of the nerve-fibre. Similar voltages across the surfaces of all our millions of nerve-cells provide the means by which messages are sent and decisions made in the nervous system. Each nerve-fibre is a charged system, it has a source of energy available to allow the propagation of messages. If the fibre is strongly stimulated, a sort of electrical explosion spreads all the way along its whole length. This is the nerve-impulse which is the signal that travels along nerve-fibres."

(c) Ibid., page xix—

"Every second, 100 millions messages bombard the brain carrying information from the body's senses. A few hundred, at most, are permitted through to brain regions above the brainstem. Of these, the concious mind heeds a few."

(d) Ibid., page xxi—

"Much of our knowledge stems from electric stimulation of the brain or ESB."

(e) Ibid., page 3 —

"Today several disciplines are involved in the study and research of brain and its functions. Physiologists record and study its electrical responses."

29. गुजरात समाचार (दैनिक, अहमदाबाद के 21 अक्टूबर, 2002 के अखबार में प्रकाशित 'साइबोर्ग' विषयक समाचार इसी प्रक्रिया का विस्तार है।

30. डॉ. सुधीर वी. शाह, 'मगज अने ज्ञानतंतुना रोगो', पृ. 6-8

31. Tony Buzain, Use Your Head, Pages 16-17

31. राजस्थान पत्रिका (जयपुर) (दैनिक), 22 दिसम्बर, 2002, रविवारीय परिशिष्ट कैलाश जैन द्वारा लिखित लेख 'वंडर विद्युत्'

''वैज्ञानिक इन्सान के शरीर में उत्पन्न होने वाली रहस्यमय जैविक बिजली की अभी तक कोई स्पष्ट व्याख्या नहीं कर पाए हैं।

प्रकृति की हर वस्तु के अन्दर विद्युत्-आवेश होता है। यह बड़ी सामान्य बात है, लेकिन अक्सर यह गुण बड़े ही गैरमामूली तरीके से सामने आता है। इससे जुड़ी घटनाएं आए दिन सुनने को मिलती हैं। कनाडा के एक शहर में रहने वाली महिला केरोसीन ब्लेयर एक दिन गंभीर रूप से बीमार पड़ गई। इलाज के बावजूद उसकी हालत बिगड़ती गई। वह करीब डेढ़ साल तक गम्भीर बीमार रही और बिस्तर पर ही पड़ी रही। एक दिन अपने पलंग के पास पड़ी लोहे की कुर्सी से छू गया। कुर्सी से छूते ही कुर्सी में विद्युत् आ गई। उसके परिवार वालों ने बड़ी मुश्किल से उसे छुड़ाया। बस, ये फिर सिलसिला ही शुरू हो गया। जैसे ही केरोसीन किसी धातु की वस्तु को छूती, वैसे ही उससे चिपक जाती।

जांच के बाद पता चला कि केरोसीन के शरीर में विद्युत्-प्रवाह होता रहता था। मजे की बात यह थी कि जिस दिन से उसके शरीर की बिजली गायब हुई वह पुनः बीमार पड़ गई।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

एक अन्य घटना लंदन की है। लंदन के स्नायुरोग विशेषज्ञ डॉक्टर जॉन एस. क्राफ्ट को बताया गया कि लंदन में जैनी गर्गन नाम की एक महिला के शरीर में बिजली का करंट आता है। डॉक्टर को यकीन नहीं हुआ और उन्होंने उस युवती के परीक्षण का निश्चय किया। जैनी के घर पहुंचकर उन्होंने उससे हाथ मिलाने के लिए अपना हाथ आगे बढ़ाया। जैनी इससे बचना चाहती थी। फिर भी रोकते-रोकते डॉ. जॉन का हाथ जैनी के हाथ से छू गया। डॉक्टर साहब एक जोरदार झटका खाकर धड़ाम से दूर जा गिरे। होश में आने के बाद डॉक्टर जॉन ने माना कि जैनी के शरीर में हजारों वोल्ट की विद्युत्-शक्ति है।

एक दिन जैनी अपने मकान के बाहर खड़ी थी कि एक ताला बेचने वाला वहां से गुजरा। जैनी के मना करने के बावजूद उसने एक ताला दिखाने के लिए जैनी की हथेली पर रख दिया। उसके बाद क्या हुआ, यह जानने के लिए वह बेचारा होश में नहीं था। बड़ी मुश्किल से उसे बचाया जा सका। जैनी के परिवार वालों ने उसके शरीर में हो रहे विद्युत्-प्रवाह को रोकने के लिए उसे कई डॉक्टरों को दिखाया। वैज्ञानिकों ने भी उसके शरीर में प्रवाहित हो रही बिजली को रोकने की कोशिश की लेकिन कोई सफलता नहीं मिली।

इसी तरह अमरीका की एक 14 वर्षीय किशोरी लुलू हर्स्ट के शरीर में विद्युत् प्रवाह से विचित्र प्रतिक्रियाएं होने लगी। लुलू किसी धातु की वस्तु को छूती, तो उसमें से चिंगारियां निकलने लगतीं। उसके सामने पड़े चीनी मिट्टी और कांच के बर्तन अपने आप टूटकर टुकड़े-टुकड़े हो जाते। एक बार लुलू के घर मेहमान आए। वह मेहमानों के लिए कुर्सी लेने गई। जैसे ही उसने कुर्सी को हाथ लगाया, कुर्सी एकदम उछल गई। इस प्रकार की घटनाओं से ऐसा लगता था कि लुलू के शरीर में अपार शक्ति समा गई हो। लुलू के माता-पिता ने उसकी इस विलक्षणता का व्यावसायिक इस्तेमाल किया। उन्होंने लुलू की इन विचित्र खासियतों को तमाशा लगाकर पैसा कमाना शुरू कर दिया। मंचीय प्रदर्शनों ने लुलू को इतना लोकप्रिय बना दिया कि वह जार्जीय वंडर के नाम से मशहूर हो गई। उसकी लोकप्रियता और हैरतअंगेज प्रदर्शनों ने वैज्ञानिकों का ध्यान खींचा। लुलू के वैज्ञानिक परीक्षणों से पता चला कि उसके शरीर में हाई वोल्टेज बिजली पैदा होती है।

जान शॉ नामक एक ड्राइवर की पत्नी पोनि शॉ भी अपने विद्युतीय करिश्मों के कारण सारे लंदन में मशहूर हो गई थी। 40 साल की उम्र में पोलिन को एक दिन महसूस हुआ कि उसके शरीर में विद्युत् का प्रवाह हो रहा है। इस समय उसके शरीर का रोम-रोम बिलकुल खड़ा हो गया। यहां तक कि सिर के बाल

भी एकदम खड़े हो गए। उसे खुद अपने शरीर में हल्की-सी झनझनाहट-सी महसूस होती थी। पोलिन को छूने से तेज झटका भी लगता था। एक बार कांच के सुन्दर मछली घर को पोलिन ने छू भर लिया कि उसका पानी गर्म होकर उबलने लगा और सभी मछलियां झुलसकर मर गईं। पोलिन के शरीर में विद्युत् प्रवाह लगातार 24 घंटे नहीं रहता था। झटके अचानक लगते थे, लेकिन ये कब शुरू हो जाते, इसका पता खुद पोलिन को भी नहीं लग पाता था। इस समस्या से पोलिन का वैवाहिक और सामाजिक जीवन तबाह हो गया। लोग उसके पास आने से कतराने लगे। एक बार पोलिन बिजली की प्रेस से कपड़ों पर इस्त्री कर रही थी कि अचानक प्रेस में विस्फोट हो गया।

पोलिन के पति ने उसकी शारीरिक जांच मेनचेस्टर की सेल्फाई यूनिवर्सिटी के भौतिक विज्ञान विभाग से करवाई तो पता चला कि पोलिन के शरीर में दो हजार वोल्ट शक्ति की बिजली प्रवाहित होती रहती है। वैज्ञानिकों ने पोलिन को हर समय रबर के दस्ताने पहनने की सलाह दी। उसके टखनों से एक लंबा नंगा तार बांधकर रखा जाता था ताकि वह जमीन को छूता रहे। **कैलाश जैन**

33. राधाशरण अग्रवाल, जैव विद्युत् अथवा प्राण ऊर्जा, पृष्ठ 1-4
34. Prof. Dr. G.R. Jain, op. cit. p. 137—

"Following elementary particles are known to the modern science:

1. Negative elementary charges called the electrons.
2. Positive elementary charges of the same mass called the positrons.
3. Positive elementary charges 1,850 times as heavy called the protons.
4. Elementary particles of matter without any electric charges and of a mass slightly greater than that of the protons called the neutrons.
5. Heavy electrons.
6. Neutrino—A particle of rest-mass zero without any electric charge.
7. Negative elementary charge with mass equal to that of the proton callled negative proton.
8. Mu-Mesons—positive and negative, 200 times heavier than the electron with mean life 10^7 seconds which ultimately decay into electrons.

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

Many more about 100 of them have been discovered so far.

As Prof. Max Born, Restless Universe, p. 266 has said "The existence of first four is firmly established; two light ones, the electron and the positron and two heavy ones the proton and the neutron". He further adds that "these are too many. For it is likely that combination of

a. a proton and an electron will give a neutron

a. a neutron and a positron will give a proton

Either neutron or proton must be composite."

Further, in the same book we read that the nucleus of an atom is composed of protons and neutrons and the electrons and protons which occasionally fly out of the nucleus arise from the following transformations:—

Proton breaking into Neutron + Positron, and Neutron breaking into Proton+Electron."

35. (a) J.S. Zaveri and Muni Mahendra Kumar, Microcosmology : Theory of Atom in Jain Philosophy and Modern Science, pp. 38, 39.—

"Characteristics of Subatomic Particles

Fundamental thing to know about the subatomic particles is that every particle of the same species looks exactly alike. Every electron, proton and neutron looks exactly like every other electron, proton and neutron respectively.

Mass : Particles of different types, however, can be recognized by their distinguishing characteristics. Mass is the first distinguishing characteristic. A proton has about 1980 times more mass, than an electron. (This does not mean that proton is 1800 times larger than electron. A kilogram of iron has the same mass as a kilogram of cotton).

Mass of a particle at rest is called its rest-mass. The mass of a moving particle increases with its velocity and at 99% of the speed of light it is seven times larger than the rest-mass. At velocities above 99% of the speed of light, particle-masses increase dramatically. An electronvolt is a unit of energy but it is also used for measuring a particle's mass (the energy that an electron gains from an electric field of one volt is called an

electron-volt). Thus the rest-mass of an electron is 0.51 million electron volts (Mev) while the rest-mass of a proton is 938.2 Mev. It is customary to use the mass of an electron as a unit. This arrangement makes the mass of a proton 1836.12 and the mass of a neutron 1837. By this system it is easy to see how much heavier a particle is than an electron. A photon has zero rest-mass, and is therefore, called massless particle. ("Massless", is actually a clumsy translation from the language of mathematics to English language.)

All its energy is the energy of motion at the speed of light. It can neither be slowed down nor made to run faster.

Electric Charge : The second characteristic of a subatomic particle is its charge. Every subatomic particle has either a positive charge or a negative charge or is neutral. Its charge determines how the particle will behave in the presence of other particle. A neutral particle will be utterly indifferent to all other particles. Two positively charged or negatively charged particles will repel each other and will put as much distance between them as possible. On the contrary, a negatively charged particle and a positively charged particle will be irresistibly attracted to each other and will move nearer to it if they can.

A subatomic particle can have zero charge (neutral) or 1 unit, either positive or negative, or in certain instances 2 units of charge, but nothing in between. No particle can have 1.25,1.5 or 1.7 units of charge. In other words, electric charge is also quantized like energy, and all the charge quanta are of the same size. A particle with mass and charge emerges as a particle personality.

Spin : The third characteristic of "a subatomic particle is its "spin". A particle spins about a theoretical axis at exactly the same rate, neither slower nor faster. The spin of a particle is related to, but not identical to, our everyday concept of a spin of a top because it does not have any well-defined axis. Like every phenomenon in quantum mechanics, spin is also discontinuous i.e., quantized like energy and charge."

(b) Satish K. Gupta, op.cit., p.4—

"Quantization of charge

In earlier times, it was thought that the charge on a body can be

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

increased in continuous manner. However, experiments show that charge on a body is always some integral multiple of a smallest unit of charge, which in magnitude is equal to the charge on an electron or a proton. The electron has a negative charge equal to 1.6×16^{-19} coulomb and charge on a proton is found to be exactly equal and opposite to that on electron i.e. equal to + 1.6×10^{-19} coulomb. If we regard 1.6×10^{-19} coulomb as e, then an electron has charge -e and a proton has charge + e. Any charged body will possess a total charge -e, –2 e, –3 e ....., if negatively charged and + e, + 2e, + 3e, ..., if positively charged. In other words, a charged body (or a particle) cannot possess charge, which is a fraction of ± e. This experimental fact is called the quantization of charge or discrete nature of charge.

The fact that the charge on a body or a particle is always some integral multiple of a smallest unit of charge (± 1.6 x 10^{-19} coulomb i.e. charge on a proton or an electron) is known as quantization of charge.

The quantization or discrete nature of charge cannot be explained by classical theory electricity."

36. Gomber and Gupta, op.cit, 1/32.

37. Prof. Dr. G.R. Jain, op.cit., pp 10-12—

"Hydrogen Atom :

Diameter .... 1/200,000,000 inch

Weight ... 164/100,000,000,000,000,000,000 0000 gram

Electron :

Diameter 1/500,000,000,000,0 inch

Speed .... 1,300 miles per second

Weight .... 1/2,000 of the weight of the hydrogen atom.

Proton :

Diameter .... about ten times that of the electron.

Weight .... that of the hydrogen atom.

The central positive charge of electricity, the nucleus, has a diameter only about a ten-thousand of that of the atom and practically all the mass of the atom resides in it. The diameter of an atom is one part out of twenty crore parts of an inch. The lightest atom is that of

hydrogen having (Hydrogen is the gas which is evolved by dissolving zinc in sulphuric acid and on account of its lightness is used in filling toy balloons and also bigger ones. Water is a compound of hydrogen and oxygen) a mass only one-quadrillionth (1 followed by 24 ciphers) part of one masha (gramme) while the mass of an electron is even two thousandth part of this. The diameter of an electron is five-billionth (1 followed by 12 ciphers is a billion) part of an inch which is about 2,500 millionth part of the diameter of human hair. In an eight-mile molecule the electrons are only 8 inches in diameter. These electrons revolve round the nucleus several quadrillion times per second with a speed of 1,300 miles per second. (The concentrated electric charge in the centre of an atoms is called the nucleus.) All these figures tend to show that matter is extremely porous. This porosity of matter was clearly understood by the Jain thinkers several centuries before the Christian era. It is this fact which is expressed by words 'सूक्ष्मपरिणामावगाहनशक्ति' (subtlety and accommodating power of the molecules). It is interesting to quote in this connection the words of Prof. Eddington, the great Astronomer Royal at Cambridge. He says: "If we eliminate all the unfilled space in a man's body and collect the nucleii and electrons into one mass, the man would be reduced to a speck just visible with a magnifying glass."

In order to understand fully how innumerable atoms of matter may be compressed in one unit of space (prade«sa), let us proceed a little further and look into the constitutions of atoms as revealed by modern science.

The positive charge of electricity in the centre of the hydrogen atom is called the proton and there is one elementary charge of negative electricity called the electron revolving about this proton in a circular orbit of one 25 millionth part of an inch. (See Fig.)

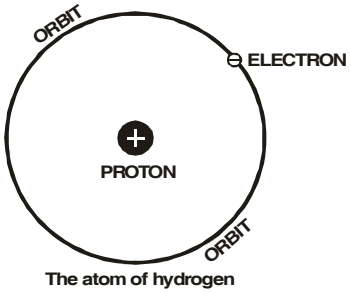

The atom of hydrogen

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

In the same way an atom of helium gas contains two protons and two neutrons in the centre and two electrons. (A neutron is another fundamental particle consisting of a proton and an electron in very close union with each other. It is a neutral particle without any electrical charge. The nucleus of an atom may consist of one or more number of protons). Then there are atoms with three protons in the centre and three electrons going round and so on, until in the heaviest atom of uranium metal there are 92 protons in the centre and 92 electrons going round them in different orbits. In each case the number of protons is equal to the number of electrons. The atoms of iron, copper, silver, and gold consist, respectively, of 26, 29, 47 and 79 protons and electrons each and the number of neutrons are 30, 35, 79 and 118 respectively. In the nucleus, the number of neutrons differs in different atoms. In the nucleii of Helium, Lithium and Beryllium atoms, there are respectively 2, 4 and 5 neutorns and so on. In Figure are shown of helium, lithium and beryllium. The sign + refers to the proton and the sign—refers to the electron and the neutron is shown by a small black disc.

The great variety of matter in the universe depends on the fitting together of 92 kinds of atoms to form all manner of structures. These 92 different kinds of atoms consist of 92 different nucleii with corresponding swarms of electrons.

We have just mentioned that on sufficient heating the molecules of matter get broken up into the constituent atoms. The question next arises as to what happens when an atom or atoms are continuously heated to a very high temperature. The temperature within the interior or certain stars is very high, the highest temperature estimated by Eddington being about four crore degree Centigrade. What would be the state of atoms inside these stars? At these high temperatures the atoms begin to lose their outer electrons, i.e., the electrons which

compose the body of the atom begin to separate from the atom. Such atoms, in the language of science, are called 'ionised' atoms, and the process of separation of the electrons from the atom is called 'ionisation'. In some case it happens that atoms lose entirely their rings of electrons, the atoms are then called 'stripped' atoms."

38. (a) धातुओं में रहे हुए परमाणुओं के बीच जो पारस्परिक बन्धन है, उसे विस्तार से समझने के लिए यहां हम दे रहे हैं उद्धरण Satish K. Gupta, op,cit. p. 1225.—

"Metallic Bonds

A metallic bond is force, which binds the atoms of a metal with one another.

The metallic bonding is explained on electron gas model. According to this model, in metallic atoms, electrons are loosely held by the nucleus due to low ionisation potential. The valence electron of an atom can leave its positive ionic core (nucleus and inner orbital electrons) and enter into the influence of the ionic core of another atom. This collection of mobile free electrons around the ionic core is found to be more stable than the neutral atoms. The force between the mobile valence electrons and positive ionic cores holds the metallic atoms together, which is known as metallic bond.

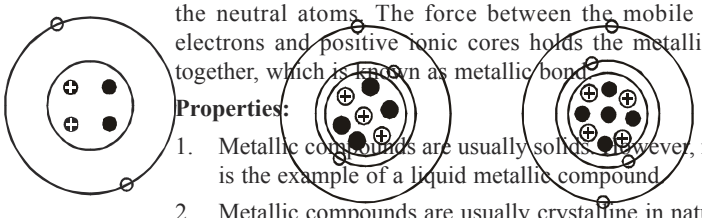

Properties:

1. Metallic compounds are usually solids. However, mercury is the example of a liquid metallic compound.
2. Metallic compounds are usually crystalline in nature.
3. They are good conductors in solid state.
4. Metallic bonds are weak bonds.
5. Metallic bonds are non-directional.
6. Metallic compounds are opaque to light. This is because, light energy falling on them is absorbed by mobile electrons.

(b) सभी धातुएं सामान्य तापमान पर घन या ठोस रूप में होती हैं। (केवल पारा इसका अपवाद है।) ठोस पदार्थों में जो स्फटिक रूप है, उनकी विशेषताएं इस प्रकार बताई गई हैं, वही, पृ. 1259

"Solids

All solids have the property of elasticity and by virtue of this

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

property, the solids behave as in compressible substances and exhibit rigidity and the mechanical strength. Basically, all solids are made of atoms and molecules but due to the different internal arrangement of the molecules inside them, they are divided into two classes, namely crystalline and amorphous materials.

Crystalline Materials

The crystalline materials are those in which atoms or molecules are arranged in a definite and regular way troughout the body of the crystal and possess a definite external geometrical shape.

A few examples of crystalline substances are quartz, mica, sugar, copper sulphate, sodium chloride etc.

The crystalline substances have the following characteristics :

1. The atoms or molecules constituting a crystalline solid are arranged in a definite and regular manner inside the crystal. Due to this, crystalline materials have definite external geometrical shape.
2. The orderly arrangement of atoms and molecules in a crystal extends over a large volume of the crystal i.e. crystals exhibit a long range order of the atoms and molecules.
3. Crystalline substances are bounded by flat sufraces.
4. Crystalline substances are anisotrophic i.e. the physical properties like thermal conductivity, electrical conductivity, compressibility, etc. have different values in different directions.
5. Crystalline materials possess uniform chemical composition i.e. bonds between all the ions, atoms or molecules are of equal strength.
6. A crystalline material has a sharp melting point. It is because, all the bonds between its constituents are of equal strength; and on heating, all the bonds get ruptured suddenly at a fixed temperature. Due to this, the change from solid state to the liquid state occurs suddenly.
7. Below the temperature of crystallisation, the crystalline materials are in stable state. Since a stable state is the state of minimum energy, such a material acquires a state of minimum energy on crystallisation.

(c) ठोस पदार्थ (धातु) में वाहकता है, उसे समझने के लिए यहां उद्धृत है Kakani, Saxena, Chhajer & Lodha, Electricity and Electronics, p. 2—

"Electron Emission

"The emission of electric charges from hot bodies constitutes thermionic emission. Edison discovered that current travels from a negative potential to positive potential through a vacuum.

Structure of Solids :

According to present concepts, a metal is regarded as a conglomerate of crystals. Within each crystal the atoms are held by interatomic forces in a regular pattern of space lattice. Each atom in turn consists of a nucleus surrounded by moving electrons travelling in well-defined orbits. Some of the electrons in the outer orbit of an atom are not rigidly bound to the atom, but are relatively free to travel more or less independently from one atom to the another. These are known as free electrons and it is these free electrons which are responsible for most of the electrical and in this chapter, we will study the effects associated with motion of electric charges. Moving charges constitute the electric currents.

39. (a) Gujarat State Board of School Textbooks, Textbook of Physics (Part-I) (Std.-XII), pp 149-17 (Chapter 7 on Electrical Currents) "In this chapter we will study the effects associated with motion of electric charges. Moving charges constitution the electric currents.

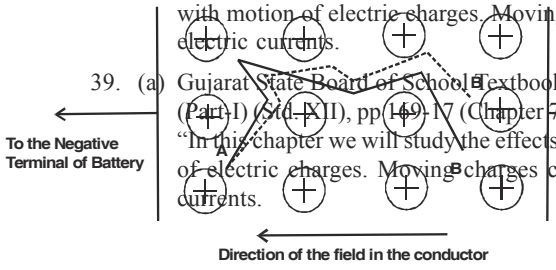

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

"Suppose a conductor is connected to the terminals of a battery as shown in fig. To understand the process occurring in the conductor microscopically, we should first understand the internal structure of a metalic conductor. In a metalic substance, the valence electrons of the constituent atoms do not remain attached to their respective parent atoms, but get detached, leaving the atoms as ions. The ions so formed, are arranged at specific locations forming a geometric pattern known as a crystal lattice. The 'free' electrons move in the space between the ions in a random fashion, which for convenience is shown by a line in fig. In absence of an external electric field, if we consider any cross-section across the conductor, the number of electrons crossing it in all directions are equal. Hence net flow of electrons across the cross- section is zero which means there is zero current.

Now when such a conductor is connected to the terminals of a battery as shown in the fig. an electric field is set up in the conductor and electrons experience a force acting towards the positive terminals of the battery. Under the influence of this force, the electrons acquire a drift towards the positive terminal which is superposed on their random velocity, e.g. an electron which moved from A to B in a given time, now moves from A to B' in the same time. The drift experienced by it during this time is B', and one can now define an appropriate drift velocity. Of course, all along the path of conductor electrons have random 'collisions' with the ions; as explained in detail later. Under such conditions, net flow of electrons across a cross-section does not remain zero, so one has an electric current flowing across the cross-section.

Amount of charge passing through a cross-section of a conductor per unit time is measure of electric current and is called the 'ampere'.

Ampere : If the net of charge flowing across a cross-section of a conductor is one coulomb per second, then the electric current passing is called one ampere. If the charge passing in time t second is Q coulomb, then the electric current is,

I (ampere) = Q (coulomb) / t (second)

Resistance : We referred to term "random collisions" between

the drifting electrons and the ions located at the lattice points. Actually, the ions are not stationary, but execute an oscillatory motion about their mean position, energy of which increases with the increase in the temperature of the conductor. Electrons drifting between the ions have to move through the randomly varying electric fields due to these oscillations and hence are frequently deflected from their paths. These deflections can be effectively considered as results of the "collisions" with ions.

Such random deflections suffered by the drifting electrons act so as to offer a resistance to the drift motion. This factor is a major contributor to the property called electrical resistance of a conductor. Other factors that contribute to the resistance are the impurities in the conductor and its constitutional and mechanical defects.

2. Ohm's law and the Resistivity

A German scientist named Ohm deduced in 1828 a law that "under a given (fixed) physical conditions, the ratio of the electrical potential difference to the current is constant." This constant is known as the resistance of the conductor. Mathematically expressed, the law is,

R = V/I

where V is the potential difference between the ends of a conductor and I is the current flowing through it. With V measured in volts and I in amperes, we have R in units called ohm, Thus,

Ohm = volt/ampere

The constant R appearing in equation depends on the dimensions, nature and the temperature of the conductor.

39. (b) Satish K. Gupta op. cit, p. 113—

"Conductors, Insulators and Dielectrics

The carriers of current in metals are free electrons and the free electron model for the metal can explain some of the observed properties of the metals in a qualitative manner.

The elements, in which the valence shell is filled less than half, are found to be good conductors. For example, in metals such as copper, aluminium, silver, etc., the valence shell contains

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

three or less electrons. Since an atom has a tendency to have a filled valence shell, the valence electrons in the atoms of a metal leave the atoms and are free to move through the metal lattice in a random manner. They constantly collide among themselves and with the positive ions located in the metal lattice. They have practically no affinity to their parent atoms. However, the average velocity of free electrons in a metal is zero.

When an external electric field is applied across the two ends of a metal, the free electrons experience force and get accelerated. There is a net flow of electrons through the metal. It is found that as the strength of the applied electric field is increased, more and more free electrons cross through a section of the metal.

The material which do not have free electrons in them are unable to conduct electricity and are termed as insulators. In fact, the same material may possess the following two properties:

(i) It may not conduct electricity through it and as such it is called insulator.

(ii) It may not conduct electricity through it but on applying electric field, induced charges are produced on its faces. Such, a material is called dielectric. The valence electrons in atoms of a dielectric are tightly bound to their nuclei and ordinarily cannot detach themselves.

(c) Kakani, Saxena, Chhajer & Lodha, op.cit. p.2 —

"Certain materials, such as silver, copper, aluminium and nickel contains relatively large number of free electrons are called conductors; materials such as glass, dry wood, silk and porcelain, have relatively few free electrons and are known as non-conductors or insulators. Materials that have an intermediate number of available free electrons are classed as semi-conductors.

Work function :

The atoms and electrons in any material are ordinarily in rapid vibratory motion, the velocity of their motion, being a function of temperature. At ordinary temperatures the free electrons in the metallic emitter cannot leave its surface because of certain acts as a potential barrier.

To escape from the surface of the emitter the electrons must perform a certain amount of work to overcome the surface potential barrier. At absolute zero, the minimum amount of energy required to enable an electron to escape from the metal surface is known as work function. This depends slightly on the temperature. It is possible to increase the energy of the free electrons in a conductor until they are able to pass through the potential barrier into space.

(d) Satish K. Gupta, op.cit. p. 1072—

'FREE ELECTRONS IN METALS

"Electron is a fundamental constituent of the atom. A metal contains free electrons, which move about freely through the atomic spaces in a random fashion. But as soon as an electron leaves the metal immediately an equal positive charge is produced on the surface of the metal. As a result the electrons pulled back into the metal and hence remains confined to it. The pull on the electrons at the surface is found to depend on the nature of metal surface and is described by a characteristic of the metal, called work function.

The minimum energy which must be supplied to the electron so that it can just come out of the metal surface is called the work function of the metal.

It is denoted by the symbol w and is measured in electron volt (eV).

In order to make the free electrons escape the metal surface, an additional energy must be given to them. This process is called electron emission and may be achieved in the following ways:

(i) **Thermoionic emission:** In this process of electron emission, the additional energy is supplied in the form of heat. The emitted electrons are known as thermo-electrons.

(ii) **Photoelectric emission:** In this process, as already discussed the additional energy is supplied by means of electromagnetic radiation. The emitted electrons are known as photo-electrons.

(iii) **Secondary emission:** In this process, the fast moving electrons on collision with the metal surface knock out electrons, called the secondary electrons.

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

(iv) **Field emission:** In this process, the electrons are emitted by the metal surface on subjecting it to a very strong electric field (108 volt per metre)"

40. (a) Prof. Dr. G.R. Jain, op.cit., p. 7—

"Modern investigations have shown conclusively that all matter is composed of molecules which, in the case of gases, are travelling in all directions with high speeds. Theoretically a piece of chalk may be broken into two pieces, those two into four, and so on to infinity. In reality, matter cannot be subdivided beyond a certain point without loosing its identity. The smallest particle into which matter may be subdivided without destroying its characteristic properties is called a molecule."

"No one has ever seen a molecule; these particles being so small that even the best microscope fails to reveal them. The diameter of a molecule has been measured to be one ten-millionth an inch 1/10,000,000 inch. A drop of water is about 1/8 of an inch.

(b) Satish K. Gupta, op.cit., p. 1221—

"Molecules

An atom is electrically a neutral system. In an atom, electrons revolve around the positive nucleus. The net electric field of an atom even at a small distance from the centre of the atom (nearly equal to10^{-10}m) is almost zero.

Atoms of most of the elements do not exist as atoms as such. When atoms come sufficiently close to each other, such that electron cloud of one atom overlaps that of the other, they interact with each other electrically. The atoms then, remain together rather than to exist as separate neutral atoms. When the atoms are held together because of the above fact, they are said to form molecules. The molecule so formed is said to be stable, if energy is required to split it into its constituent atoms.

The minimum energy required to split a molecule into its constituent atoms is called dissociation energy. Atoms can combine in many ways to form molecules:

(i) Atoms of the same element may combine to form stable molecules. For example, H_2, N_2, O_2, etc.

(ii) Atoms of different elements may combine to form stable molecules. For example, NaCl, KCl etc.

(iii) Atoms of more than two elements may combine to form complex molecules. Sucrose $C_2H_{22}O_{11}$ is one such example.

(iv) Thousands of atom may combine to form biological molecules like DNA and RNA. They exist in the form of chains.

Molecules possess extremely interesting properties. They can rotate like a rigid rotator and vibrate like a spring. These properties are not possessed by atoms. Just as discrete energy states exist in atoms due to orbital motion of electrons, the rotational and vibrational motion of molecule also correspond to discrete energy states. An excited molecule returns to the ground state by emitting photons of energy. This process in case of molecules gives rise to rotational and vibrational spectra.

Bonding in Molecules

When atoms combine to form a molecule, they are held together by the force of attraction called chemical bond. When atoms come close to each other, the energy of the system is reduced and it leads to the formation of bond.

A chemical bond is defined as the attractive force, which holds the atoms together in molecule.

Concept of Bond

The outermost shell of an atom is called the valence shell. The Greek word valence means hook. According to old chemical theory, the atoms had hooks, which hold them together with other atoms.

According to present day theory, the electrons in the outermost shell called valence electrons are impossible for holding the atoms together in atoms.

The atoms combine with each other by the transfer or mutual sharing of electrons and in doing so, each combining atom attains the inert gas configuration.

The outermost shell of atoms of the inert gases have 8 electrons and are most stable.

41. ऊपर उद्धृत टिप्पण संख्या 38 (a), (b), (c) द्रष्टव्य है।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

42. (a) Satish K. Gupta, op. cit,. p. 30 —

"Concept of electric field

Consider that an electric charge q is present at some point in space. If we bring any other charge say q near the charge q, it will experience a force of attraction or repulsion due to the charge q. The force experienced by the charge q is said to be due to the electric field set up by the charge q.

The electric field of a charge is the space property by virtue of which the charge modifies the space around itself. As a result, if any other charge is brought in the space around the charge, it experiences electrostatic force.

Thus, electric field due to a charge is the space around the charge, in which any other charge is acted upon by an electrostatic force."

(b) Ibid., p.161— "The electric field is the space around an electric charge in which its effect can be experienced."

43. Ibid., p. 222—

"Electric Current

"It is defined as the rate of flow of electric charge through any section of a wire. It is denoted by I. Then

I = total charge flowing / time taken

If charge q flows in a time t through any section of a wire, then

I = q/t

If n carriers of electricity, each having charge e, cross any section of the conductor in time t then

I = ne/t

If charge dq flows through a wire in small time dt, then

I = dq/dt

The direction in which the positive charge will flow gives the direction of conventional current. Since the flow of current is attributed to flow of electrons, the direction of electronic current is opposite to that of conventional current.

Although, a direction is associated with electric current, yet it is a scalar quantity. The reason is that the laws of ordinary algebra are used to add electric current. The laws of vector algebra do not apply

to the addition of electric currents.

Unit of electric current. S.I. unit of electric current is ampere. It is also the practical unit of current. It is denoted by A.

1 ampere (A) = 1 coulomb (C)/l second (s) = 1 CS^{-1}

The current through a wire is called one ampere, if one coulomb of charge flows through the wire in one second.

Note : In a metallic conductor, free electrons are carriers of electricity and hence electrons constitute the electric current (charge on an electron = 1.6 x 10^{-19}). 6.25 x 10^{18} electrons crossing per second through any section of a conductor give rise to a current of 1 A."

44. (a) Satish K. Gupta, op.cit., p. 1264—

"Distinction Between Metals, Insulators and Semiconductos

Metals are good conductors of electricity, insulators do not conduct electricity, while the semi- conductors have conductivity in between those of metals and insulators. Let us make distinction between conductors, insulators and semiconductors on the basis of band theory of solids.

A solid is a large collection of atoms. The energy levels of an atom get modified due to the presence of other surrounding atoms and the energy levels in the outermost shells of all the atoms form valence band and the conduction band separated by a forbidden energy gap.

The energy band formed by a series of energy levels containing valence electrons is called valency band At 0 K, the electrons start filling the energy levels in valence band starting from the lowest one. The highet energy level, which an electron can occupy in the valence band at 0 K is called Fermi level.

The lowest unfilled energy band formed just above the valence band is called conduction band.

At 0 K, the Fermi level as well as all the lower energy levels are completely occupied by the electrons. As the temperature rises, the electrons absorb energy and get excited. The electrons jump to the higher energy levels. These electrons in the higher energy levels are comparatively at larger distance from the nucleus and are more free as compared to the electrons in the lower energy levels. Depending on the energy gap between valence band and

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

the conduction band, the solids behave as conductors, insulators and semiconductors."

(b) Text-book of Physics (xii), part II, pp 192, 193—

"All of us are now very familiar with the term electronics. What exactly is electronics? After the discovery of the electron at the end of the last century, its role in deciding the constitution of matter as well as electrical properties of matter like conduction has been increasingly appreciated.

We have already studied how free electrons determine metallic conductivity and that why such conductors obey Ohm's law; viz. Linear relation between the current and the potential drop. We also acquired some familiarity with conduction properties of semiconductors.

Electronics (solid state electrons, to be specific) is the science of devices, which operate by appropriately controlling the conduction through controlling-generation and motion of electrons in suitable solids. Such a control implies getting desired relations between the voltage and the current through the devices. Extensive studies have been made on conduction properties of certain solids, both pure as well as those in which controlled impurities have been added, resulting in a development of large number of such useful devices; which comprise the field of electronics.

1. Good Conductors, Bad Conductors and Pure Semiconductors

Metallic elements located in the first three groups of the periodic table are good conductors of electricity. These include alkali metals, noble metals, aluminum, copper etc. These metals conduct electricity very well because of their free electrons. Non metals are practically bad conductors. They don't have free electrons and such materials have very large resistivity.

The elements like Si and Ge that are in the fourth group of the periodic table, have electrical resistivity that is more than that of metals but less than that of bad conductors. Such materials are called semiconductors. The mode of electrical conduction differs in metal semiconductors. In fact, semiconductors in their pure form practically behave as non-conductors at the absolute

zero of temperature.

Increase in the temperature of a good conductor results in the increase in its resistivity, but increase in the temperature of a semiconductor (within certain range) results in a decrease in its resistivity. A semiconductor, irradiated by electromagnetic radiation of an appropriate frequency also quite often results in an increase in its conductivity.

The electric properties of a substance depend on its crystal structure and its electronic configuration. A large number of semiconducting substances have been produced systematically by preparing suitable compounds. In this chapter, however, we will study only two most important semiconducting elements, Si and Ge; which have crystal structure of diamond."

(c) Kakani, Saxena, Chhajer & Lodha, op.cit, pp. 536—

"Impurities added to pure germanium or silicon will cause a change in the lattice structure, which might add a free electron or create a hole. The importance of hole is that it may serve as a carrier of electricity and a free electron from a neighbouring atom may drop into it."

"The study of transistors is based on semiconductors. Semiconductors which find use in transistors are silicon and germanium, out of which germanium is commonly used.

"When an electric field is applied between both the ends of a semiconductor crystal, the free carriers such as free electrons and holes attain drift velocity. The electrons drift towards the positive electrode and holes move towards the negative electrode."

45. (a) Satish K. Gupta, op.cit pp. 3,4

"In 600 B.C. the Greek philosopher Thales observed that when amber* was rubbed with a woolen cloth, it acquired the property of attracting light objects like feathers of birds, small bits of paper, pieces of dry leaves, etc. In 100 A.D., Dr. William Gilbert was led to the conclusion that there are many other substances like amber, which acquire the property of attracting such light

* It is hardened sap of a tree similar to a pine tree. In Greek, the meaning of amber is electrum and probably the words like electric charge, electric force, electric potential, electricity and finally electron owe their origin to electrum.

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

objects after they had been rubbed with some other suitable substances. For example, if on a dry day, we comb dry hair with a rubber comb, the comb acquires the property of attracting the small bits of paper and dry grass. Similarly, a glass rod acquires the attractive property on being rubbed with silk and an ebonite rod on being rubbed with flannel or catskin. The amber, the rubber comb, the glass rod, the ebonite rod, etc. are said to be charged with electricity.

The woollen cloth (in case of amber), silk (in case of glass rod) and flannel (in case of ebonite rod) are also found to be charged with electricity.

The electricity developed on bodies, when they are rubbed with each other is called frictional electricity. It is also called static electricity as the charges so developed on a body can not flow from one point to some other point.

Two kinds of charges

From experiments, it was concluded that frictional electricity is of two types. When a glass rod is rubbed with silk, glass rod is said to have become positively charged. As said earlier, the silk is also found to be charged with electricity. However, the nature of charge on silk is found to be opposite to that one glass and therefore silk is said to have become negatively charged. On the other hand, when ebonite rod is rubbed with flannel the charge on ebonite rod is found to be of same kind as of silk (when glass rod is rubbed with it). Thus, ebonite rod becomes negatively charged. When rubbed with flannel, while flannel it self becomes positively charged.

Historically, charge produced on a glass rod, when rubbed with silk was called viterous and that produced on ebonite rod, when rubbed with flannel, was called resinous. Actually, the concept of positive and negative charges was introduced by Benjamin Franklin. Experiments proved that bodies having same kind of charge repel each other, while those having opposite kinds of charge attract each other.

In the table given below, if a body in first column is rubbed against a body given in second column, body in first column will acquire positive charge, while that in second column will acquire negative large :

The name of the body, which acquires

Positive charge	Negative charge
Glass rod	Silk cloth
Flannel or catskin	Ebonite rod
Wollen cloth	Amber
Woolen cloth	Rubber shoes
Woolen cloth	Plastic object

Obviously, if the two charged objects are from the same column, they will repel each other and if the two charged objects are from two different columns, they will attract each other.

Additive Nature of Charge

The total electric charge of a body is equal to the algebraic sum of all the electric charges distributed on the different parts of the body. Due to this property, the charge is said to be additive in nature.

We know that mass of an extended body is equal to sum of the masses of its constituent particles. The electric charge also possesses this additive property possessed by mass. However, the additive property in the two cases differ on following two accounts:

(i) The mass of the particles constituting the body is always positive, whereas the charges distributed on the different parts of the body may be positive or negative.

(ii) The total mass of the body is always non-zero, whereas the total charge on a body may be positive, zero or negative.

Conservation of Charge

Just as in mechanics, the total linear momentum of an isolated system always remains constant, the electric charge also obeys a similar law. It is called law of conservation of charge.

It stated that for an isolated system, the net charge always remains constant. In other words, it may get transferred from one part of the system to another, but net charge will always have a constant value. In other words, charge can neither be created nor destroyed.

Following examples explain the law of conservation of charge:

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

1. We know that when a glass rod is rubbed with silk, glass rod becomes positively charged and the silk becomes negatively charged. The amount of positive charge on glass rod is found to be exactly the same as negative charge on silk. Thus, the system of glass rod and silk, which had zero net charge before rubbing, still possesses zero net charge after rubbing.

(b) Ibid, p. 161—

"Some Useful Facts

1. The charges developed on the bodies during the process of rubbing are due to the transfer of charges only from one body to other.
2. Coulomb's law in electrostatics holds only for stationary charges, which are points in size.
3. When the same two charges located in air are placed in a dielectric medium without altering the distance between them, electrostatic force always decreases.
4. A system of charge is said to be in equilibrium, if the net force experienced by each charge of the system is zero.
5. Electrostatic force between two charges is not affected by the presence of a third charge in their space."

(c) Ibid. p.4 (यहां एक उदाहरण के द्वारा इसे समझाया गया है।)

"A polythene piece rubbed rubbed with wool is found to have a negative charge 3 x 10^{-7} C. Estimate the number of electrons transferred from wool to polythene."

Sol. Here, total charge transferred, q = - 3 × 10^{-7} C

Charge on an electron, e = - 1.6 × 10^{-19} C

From quantization of charge, q = ne

Therefore, number of electrons transferred,

$$n = \frac{q}{e} = \frac{-3 \times 10^{-7}}{-1.6 \times 10^{-19}} = 1.875 \times 10^{12}$$

46. (a) Gujarat State Board of Text books, Text book of Physics (Part-2), Std. xii, pp. 1,2—

"The discoveries and the early understanding of the electrical

and the magnetic phenomena, developed independently of each other. The pioneering experimental studies of early scientists like Oersted, Rowland and Faraday established the connections between the magnetic fields and the electric currents. A complete synthesis of the two groups of phenomena was achieved by the theoretical works of Maxwell and Lorentz, the synthesis being now called the electromagnetic phenomena.

It was this deeper understanding of the electromagnetic phenomena, that led to the identification of light as electromagnetic waves. Further technological developments in the production, propagation and detection of the electromagnetic radiation's have revolutionized our global communication techniques.

1. Oersted's Obeservations

In the, year 1819, a Danish school teacher named Oersted discovered that a magnetic field is produced surrounding a conductor carrying a current.

If magnetic needle is suspended parallel to a conducting wire, the needle experiences a force deflecting it when a current is passed through the wire, showing that magnetic field is produced in the region surrounding the wire. Direction of the field is such that the needle tends to align prependicular to the length of the wire carrying the current. These observations of Oersted were presented to the French academy by Arago on 11 Sept., 1820.

2. Biot-Savrat's Law

Within a short period of two months of this discovery, Biot and Savart made a quantitative study of this effect, and on the basis of this study deducted the law relating the strength of the current and the length of the conductor with the strength of the magnetic field generated.

(b) Satish K. Gupta, op. cit. p. 391—

"Magnetic Effect of Current

In 1820, the Danish scientist Oersted discovered the magnetic effect of electric current. Oersted's experiment led to the discovery that when electric current passes through a conductor, magnetic field is produced around it. If a strong current is passed

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

through a conductor, then magnetic field produced around the conductor is also very strong and the earth's magnetic field may be neglected in its comparison. In such a case, magnetic lines of force near the conductor are found to be aircular.

When electric current is passed through a circular conductor, the magnetic field lines near the centre of the conductor are almost straight.

Laplace's Law or Biot-Savart Law

Laplace's law is used to know the magnitude of the magnetic field at a point near a conductor carrying current. This law was first experimentally confirmed by Biot and Savrat and for this reason, it is sometimes referred to as Biot-Savart's law.

(c) J.S. Zaveri and Muni Mahendra Kumar, Microcosmology ... , pp. 14, 15—

"Discovery of Electromagnetic Phenomena

In the nineteenth century the first persons to go beyond the Newtonian Physics were Michael Faraday and James Clerk Maxwell. This radical change in scientific outlook was brought about by the discovery of a new type of force which the mechanistic model failed to describe. This was the 'electomagnetic phenomena'. In fact, Faraday was the first person to bring science and technology to a turning point by producing an electric current in a coil of copper by moving a magnet near it. The colossal technology of electrical engineering was the result of this fundamental experiment converting mechanical energy into electrical one. At the same time, it formed the foundation of the theory of electrodynamics. The fundamental difference between the Newtonian laws and Electrodynamics is the concept of field of force, i.e. an electric charge produces a condition in space around it so that another charge feels a force. This was a much subtler concept than that of Newtonian 'force' and eliminated the existence of ether. It produced a most profound change in the basic concept of physical reality. It was Einstein who clearly recognised this fact 50 years later, when he declared that no ether existed and the electromagnetic fields were physical entities which could travel through empty space and could not be explained mechanically.

Ultimately, it resulted in the realization of the electromagnetic nature of light."

47. Satish K. Gupta, op. cit. p 736

"Source of Electromagnetic Waves

A stationary electric charge produces a static electric field around it. A steady current implies the uniform flow of electric charges. Since, a steady electric current produces a steady magnetic field around it, it follows that an electric charge in uniform motion produces a steady or stationary electric field. Also, an accelerated charge should produce a magnetic field which varies with time and depends on space. Since an electromagnetic wave is associated with a magnetic field, which is dependent on time and space, it follows that an accelerated charge is the source of electromagnetic wave. The most common way of possessing accelerated motion is the possess simple harmonic motion. A charge oscillating harmonically with a frequency V produces electric and magnetic fields at that point, which vary sinusoidally with the frequency V and then produce electromagnetic waves of same frequency.

The variations in electric and magnetic fields in an electromagnetic wave are perpendicular to each other and to the direction of propagation of the wave. As said earlier electromagnetic waves do not require any material medium and they can propagate in free space (i.e. in vaccum) with the velocity of light.

48. (a) Ibid., p. 579, 582—

"Electromagnetic Induction

As said earlier, in 1820, Oersted discovered the magnetic effect of electric current i.e. when a steady current flows through a conductor, a magnetic field is produced around it. In 1831, Michel Faraday discovered the effect, called electromagnetic induction, just converse to the magnetic effect of electric current.

When a coil made of copper wire is placed inside a magnetic field, magnetic flux is linked with the coil. Faraday found that when the magnetic flux linked with the coil is changed, an electric current starts flowing in the coil, provided the coil is a closed one. The charge in magnetic flux linked with a coil may be caused by varying the strength of magnetic field or by the relative motion between the source of magnetic field and the

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

coil. In case the coil is open, an e.m.f. is set up across the two ends of the coil. The current and the e.m.f. so produced, are called induced current and induced e.m.f. respectively. The induced current and the e.m.f. in the coil last only so long as the magnetic flux linked with the coil keeps on changing.

Thus, electromagnetic induction is the phenomenon of production of electric current (or e.m.f.) in a coil when the magnetic flux linked with the coil is changed.

Magnetic Flux

The magnetic flux linked with surface held in a magnetic field is defined as the number of magnetic lines of force crossing the surface normally.

Faraday's Laws of Electromagnetic Induction

The results of Faraday's experiments on electromagnetic induction are known as Faraday's electromagnetic induction. These laws are stated as below:

1. Whenever magnetic flux linked with a circuit (a loop of wire or a coil or an electric circuit) changes, induced e.m.f. is produced.
2. The induced e.m.f. lasts as long as the change in the magnetic flux continues.
3. The magnititude of the induced e.m.f. is directly proportional to the rate of change of the magnetic flux linked with the circuit.

(b) Text-book of Physics, op.cit. pp 39 to 52—

"Electromagnetic Induction and Faraday's Experiments

A scientist named Michel Faraday discovered in the year 1831 that a change in the value of the magnetic flux linked with a conducting coil gives rise to induction of an electromotive force in the coil. The emf generated this way is called the induced e.m.f. When the bar magnet is near the coil, some of the magnetic lines of force are passing through the coil; that is 'some magnetic flux is linked with the coil'. Now when there is relative motion between the coil and the magnet, the amount of flux linked with the coil is changing. When the relative motion stops, there is no further change in the amount of the flux linked. So we

conclude that, "when there is a change in the flux linked with the coil, there is an emf generated in the coil." The observation that a faster motion of the magnet gives rise to a larger deflection shows that the emf generated depends upon the rate of change of the flux linking the coil. The current resulting from this "induced emf." is called the "induced current".

When a Current flows in a coil, magnetic flux is produced due to this current and the coil now acts as a magnet. Which face of the coil acts like a north pole and which face becomes a south pole depends upon the direction of the current in the coil.

Thus, we see that the direction of the induced current and the corresponding direction of the resulting magnetic field is a consequence of the conservation of energy. This leads us to Lenz's law which states :

"If an agency generates an induced emf through its action (such as motion of the magnet as illustrated) the induced emf would be such that the current produced by this emf would generate a magnetic field such as to oppose the action of the agency."

3. Faraday's Law

Faraday gave the law relating the induced emf in a circuit with the rate of change of the flux.

4. Self-induction

We have learnt that when a current passes through a coil, some magnetic field is created so that the coil itself behaves like a magnet. The magnetic flux produced by the current in the coil is linked with the coil itself and when the current in the coil changes, this flux linked with the coil also changes. Under such circumstances also, there would be an emf induced in the coil which is called the 'self-induction'. The value of mutual inductance of a system of two coils depends upon their shapes, sizes, their number of turns, distance between them, their mutual inclination angle and the material on which they are wound.

49. (a) Text-book of Physics (Part - II), op.cit, p. 94—

"Electromagnetic waves discovered relatively recently—only in the later part of the 19th century. It was the result of the synthesis of various facts and laws pertaining to electricity and magnetism, like Gauss' law, Ampere's law, Faraday's law, the closed nature

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

of magnetic field lines etc. by a British scientist James Clerk Maxwell in form of Maxwell's equations. These are the differential equations which interconnect electric and magnetic field parameters through differential equations. Examination of these equations in terms of symmetry between electric and magnetic phenomena also lead to the famous contribution due to Maxwell of the term called the displacement current a term which provided the missing aspect to complete the symmetry."

(b) Satish K. Gupta, op.cit., p. 731—

"These equations govern the behaviour of electric and magnetic fields. Maxwell showed that these equations predict the existence of electromagnetic waves, which propagate through the space in the form of varying electric and magnetic fields. He also showed that these waves are transverse in nature and travel with the speed of light.

1. **Gauss's law in electrostatics.** It states that the total electric flux through any closed surface- is always equal to $1/e_0$ times the net charge enclosed by the surface.
2. **Gauss's law in magnetism.** It states the net magnetic flux crossing any closed surface is always zero.

   A direct consequence of Gauss's magnetism is that an isolated magnetic monopole does not exist.
3. **Faraday's law of electromagnetic induction.** It states that the induced e.m.f. produced in a circuit is numerically equal to rate of change of magnetic flux through it.

In this form, the law states that the line integral of electric field along a closed path is equal to rate of change of magnetic flux through the surface bounded by that closed path."

50. Ibid., p. 731—

Nature of Electromagnetic Waves

"From Faraday's law of electromagnetic induction, it was concluded that a magnetic field changing with time at a point in space produce an electric field at that point. On the other hand, Maxwell's concept of displacement current led to the conclusion that an electric field varying with time at a point produces a magnetic field at that point. This symmetry in the laws of electricity and magnetism leads to the conclusion that a time varying electric field gives rise to a time

varying magnetic field and vice-versa. Maxwell showed that such electric and magnetic fields can propagate through space with the velocity of light and were called electromagnetic waves. The electric and magnetic fields in an electromagnetic wave vary with time and space and are prependicular to each other and to the direction of propagation."

51. (a) तत्त्वार्थ सूत्र 5/24 शब्द-बंध-सौक्ष्म्य-स्थौल्य-संस्थान-भेद-तमस्-छाया तपोद्द्योतवन्तश्च।

(b) जैन सिद्धांत दीपिका, 1/15 शब्द-बन्ध-सौक्ष्म्य-स्थौल्य-संस्थान-भेद-तमस्-छाया-तपोद्द्योत प्रभावांश्च।

(c) 'उत्तराध्ययन सूत्र 28/12, 13

सद्दंधयार उज्जोओ पहा छायातवे इवा।
वण्णरसंगंधफासा पुग्गलाणं तु लक्खणं ॥

एगत्तं च पुहत्तं च संखा संठाणमेव य।
संजोगा य विभागा य पज्जवाणं तु लक्खणं ॥

(यहां बहुत स्पष्ट रूप में प्रकाश, शब्द, आतप आदि को पौद्गालिक (यानि अचित्त) बताया गया है।)

(d) Dr. G.R.Jain, Cosmology Old & New, pp 130-136—

"Manifestation of Pudgala (Matter) take the form of sound, union, fineness grossness, figure, divisibility, darkness, shade or image, sunshine and moonlight. (Tr. of Tattvaratha Sutra 5/24). Commentary—" ...the division of light energy into two categories: 'Atapa and Uddyota, is based on scientific considerations: 'Atapa is the sunlight or light of a fire, or electric lamp, etc., and uddyota is the moonlight, the light emitted by the jewels or the phosphorescent light of a fire-fly (*Sarv "artha Siddhi,* 5/2-4). The former predominates in heat rays and the latter in light rays. The efficiency of modern electric lamp is only 7-10 % and that of arc-lamp 15% (in the tube light lamps, the efficiency has reached about 60%). In other words only 7 or 15 percent of energy is converted into light and the rest appears in the form of heat. Thus the light given by these sources has a much greater proportion of heat than light, and hence the name 'Atapa. The same is the case with the sun where only 35 percent of the radiation appears in the form of light.

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

The efficiency of the tiny lamp in the body, of the glowworm is 99 percent of light rays and 1 percent of heat rays; hence the most proper name given to it is Uddyota."

52. J.S. Zaveri and Muni Mahendra Kumar, Microcosmology ... , p. 15—

"Electromagnetic Radiation—Light

"Much earlier, there were two theories about light : One which Newton favoured was that it was composed of particles called, corpuscles, the other was that it was made of waves. A proper theory of the propagation of light did not come until 1865, when Maxwell succeeded in unifying the forces of electricity and magnetism. Maxwell's equations predicted that electromagnetic waves travel at a fixed speed. Thus, light is a rapidly alternating electromagnetic field travelling through space in the form of waves at a fixed speed.

In due course, it was established that radio-waves, light and X-ray are all waves forming the electromagnetic spectrum, a tiny fraction of which—the visible spectrum—is visible in the form of light. This remained the accepted and proven theory of light upto 1905.

Einstein's theory of light was that it is composed of tiny particles called photons. A beam of light is analogous to a stream of bullets. To prove his theory, Einstein referred to a phenomenon called the photo-electric effect, in which when light impinges on a metal surface, it sends electrons flying off. If a photon hits an electron, it knocks it away just as one billiard ball hitting another one knocks it away.

It was also found that the velocity of the rebounding electrons did not depend upon the intensity of the impinging light, but on its colour."

53. Satish K. Gupta, op.cit., p. 739—

"Human eye is sensitive to only visible part of the electromagnetic spectrum. Different types of detectors are used to detect and study the different parts of the spectrum.

The follwing table gives the wavelength range of different colours of visible light :

Visible Spectrum

Colour	Wavelength (m)	Colour	Wavelength (m)
Violet	$3.9 \times 10^{-7} - 4.5 \times 10^{-7}$	Yellow	$5.7 \times 10^{-7} - 5.9 \times 10^{-7}$
Blue	$4.5 \times 10^{-7} - 4.5 \times 10^{-7}$	Orange	$5.9 \times 10^{-7} - 6.2 \times 10^{-7}$
Green	$5 \times 10^{-7} - 5.7 \times 10^{-7}$	Red	$6.2 \times 10^{-7} - 7.8 \times 10^{-7}$

54. (a) Ibid., p. 736—

Hertz's Experiment

"In 1865, Maxwell had predicted the propagation of electromagnetic waves in the form of varying electric and magnetic fields, which produce each other. It was concluded that the accelerated charges the source of electromagnetic waves. In 1887, Hertz experimentally demonstrated the production of electromagnetic waves by using a spark oscillator and then succeeded in detecting them also.

(b) Text book of Physics (Part II), op.cit, pp.94, 95—

"From Maxwell's field equations connecting the electric and the magnetic fields vectors 'E and 'B the wave equation for electromagnetic waves emerged, showing that the disturbances in 'E and 'B can jointly propagate in the form of waves. It was also found that the velocity of these waves in space as calculated from the electric and magnetic parameters was exactly equal to the velocity of light—strongly suggesting that light is a form of electromagnetic waves. It should be noted that all these deductions were logically deduced using theory only from the brilliant formulation of electromagnetic field equations.

2. Experiment of Hertz

Althougth existance of the electromagnetic waves theoritically deduced, an experimental demonstration that such waves can be produced in laboratory remaind to be achieved. It is said that Maxwell himself was very much desirous of being a witness to such an achievement during his lifetime.

Thirty-two years after the proposition of electromagnetic field, equations of Maxwell, Hertz demonstrated production of such waves in laboratory.

55. (a) Ibid., pp. 98, 99—

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

"Characteristics of Electromagnatic Waves

"Electromagnetic waves have the following characteristics :

(1) At regions far from the source the electric and the magnetic field, vectors oscillate in the same phase.

(2) The directions of oscillations of the electric and the magnetic fields are mutually perpendicular; and are in a plane prependicular to the direction of propagation of the wave.

(3) These waves are non-mechanical and of transverse type.

(4) Their velocity in free space (vacuum) is given by

$c = 3 \times 10^8$ ms^{-1}

Light waves have the same velocity in vacuum as experimentally measured.

(5) The velocity of electromagnetic waves depends upon the electromagnetic properties of that medium.

(b) Satish K. Gupta, p. 735—

Properties of Electromagnetic Waves

A few important properties of electomagnetic waves are as given below :

(1) Electromagnetic waves propagate in the form of varying electric and magnetic fields, such that the two fields are perpendicular to each other and also to the direction of propagation of the wave. In other words, electromagnetic waves are transverse in nature.

(2) Electromagnetic waves are produced by accelerated charges.

(3) Electromagnetic waves do not require any material medium for their propagation.

(4) In free space, electromagnetic waves travel with a velocity,

$$c = \frac{1}{\sqrt{\mu\varepsilon}}\, 1 = 3 \times 10^8 \text{ m s}^{-1}$$

i.e. with a velocity equal to that of light in free space.

In a material medium, velocity of electromagnetic waves is given by

$$v = \frac{1}{\sqrt{\mu\varepsilon}}$$

where μ and ε are aboslute permeability and absolute permittivity of that medium.

(5) The electromagnetic waves obey the principle of superposition.

(6) The variations in the amplitudes of electric and magnetic fields in the electromagnetic waves always take place at the same time and at the same point in the space. Thus, the ratio of the amplitudes of electric and magnetic fields is always constant and it is equal to velocity of the electromagnetic waves. Mathematically,

$$\frac{E}{B} = c$$

(7) The energy in electromagnetic waves is divided equally between the electric and magnetic field vectors.

(8) The electric vector is responsible for optical effects due to an electromagnetic wave. For this reason, electric vector is called *light vector.*

56. (a) Text-book of Physics (Part II), p. 100—

The Electromagnetic Spectrum

After successful generation of electromagnetic waves by Hertz, scientists were convinced of the reality of electromagnetic waves, thus a study of the electromagnetic waves of different wavelengths began.

The X rays discovered by Rontgen in 1898 were shown to be electromagnetic waves in 1906. Subsequently, the spectrum of electromagnetic waves has bee studied over a range of wavelengths covering 10^{-8} meter on the short wave side to around 10^{15} meter on the long wave side. The electromagnetic radiation is continuously distributed over the entire region. Our vision is limited to a very small part of this specturm covering the waves with wavelengths of 4000 Å 8000 Å, which we recognize as visible light. Our eyes do not respond to the electromagnetic radiations out side this range.

(b) Modern's A.B.C. of Physics, by Satish K. Gupta, pp. 737, 738—

Electromagnetic Spectrum

1. Gamma Rays—Highly energetic radiations.

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

2. **X-rays** have frequencies in the range 10^{16} to 3×10^{19} Hz. X-rays possess a high penetrating power.

3. **Ultra-violet rays.** Ultra-violet rays were discovered by Ritter in 1801. The ultra-violet rays are part of solar spectrum. They can be produced by the arcs of mercury and iron. They can also be obtained by passing discharge through hydrogen and xenon. The frequency of ultra-violet rays lies in the range of 8×10^{14} to 10^{16} Hz.

4. **Visible light.** It forms a very narrow part of the electromagnetic spectrum and its frequency ranges from 4×10^{14} to 8×10^{14} Hz. The visible light is emitted due to the atomic excitation. Human eye is sensitive to only visible part of the electromagnetic spectrum.

5. **Infra red rays.** Infra-red rays were discovered by Herschell. Infra-red rays are heat radiation and therefore all hot bodies are the sources of infra-red rays. About 60% of the solar radiation is infrared in nature. The frequency range of infra-red rays is $10^{13} - 4 \times 10^{14}$ Hz.

6. **Microwaves.** The microwaves are produced by oscillating electronics circuits. The frequency of microwaves lies between $10^{19} - 3 \times 10^{11}$ Hz Hz. The microwaves are used in radar and other communication systems.

7. **Radiowaves.** Like microwaves, radiowaves are also produced by oscillating electronic circuits. The frequency of radiowaves varies from a few Hz to 10^{19} Hz. The radiowaves are used as carrier waves in radio broadcasting and TV transmission.

Eelctromagnetic Spectrum

Name	Frequency range (Hz)	Wavelength range (m)	How produced
Gamma-rays	$5 \times 10^{20} - 3 \times 10^{19}$	$6 \times 10^{-13} - 10^{-10}$	Nuclei of atoms.
X-rays	$3 \times 10^{19} - 10^{16}$	$1 \times 10^{-10} - 3 \times 10^{-8}$	Bombardment of high Z target by electrons.
Ultra-Violet rays (UV)	$10^{16} - 8 \times 10^{14}$	$3 \times 10^{-8} - 4 \times 10^{-7}$	Excitation of atoms and vacuum spark.
Visible light	$8 \times 10^{14} - 4 \times 10^{14}$	$4 \times 10^{-7} - 8 \times 10^{-7}$	Excitation of atoms, spark and are flame.
Infra-Red rays (IR)	$4 \times 10^{14} - 10^{13}$	$8 \times 10^{-7} - 3 \times 10^{-5}$	Excitation of atoms and molecules.

Heat radiation	$3 \times 10^{13} - 3 \times 10^{9}$	$10^{-5} - 10^{-1}$	Heating.
Microwaves	$3 \times 10^{11} - 10^{9} -$	$10^{-3} - 3 \times 10^{-1}$	Oscillating currents in special vacuum tubes.
Ultra High radio Frequencies (UHF)	$3 \times 10^{9} - 3 \times 10^{8}$	$10^{-1} - 1$	Oscillating circuits.
Very High radio Frequencies (VHF)	$3 \times 10^{8} - 3 \times 10^{7}$	$1 - 10$	Oscillating circuits.
Radio frequencies	$3 \times 10^{7} - 3 \times 10^{4}$	$10 - 10^{4}$	Oscillating circuits.
Power frequencies	$60 - 50$	$5 \times 10^{6} - 6 \times 10^{6}$	Weak radiation from a.c. circuits.

57. Satish K. Gupta, op. cit, p. 739—

"Infra-red rays were discovered by Herschell. Infra-red rays are heat radiation and therefore all hot bodies are the sources of infra-red rays. About 60% of the solar radiation is infra-red in nature. Following are a few sources to produce infra-red rays.

1. **Nernst lamp.** The filament of Nernst lamp is made from the mixture of ziroconium, thorium and cerium. When a current is passed through such a filament, then at a temperature of about 1200 K, infra-red rays are emitted.

2. **Globar.** It is basically a rod of silicon carbide, which when heated to a temperature of about 900 K by passing current, produces infra-red rays.

3. **LASER.** It is used to produce monochromatic infra-red rays. For example, He-Ne LASER gives infra-red rays of wavelength 0.69×10^{-6} m, 1.19×10^{-6} m. and 3.39×10^{-6} m. CO_2 LASER provides infra-red rays of wavelength 10.6×10^{-6} m.

To detect infra-red rays, thermocouples, thermopiles, bolometers, photoconducting cells are used.

Properties :

1. Infra-red rays are electromagnetic waves and travel with a speed of 3×10^{8} ms^{-1}.
2. Infra-red rays obey laws of reflection and refraction.
3. Infra-red rays can produce interference and can be polarised.
4. When allowed to fall on matter, infra-red rays produce an increase in temperature.
5. Infra-red rays affect a photographic plate.
6. When absorbed by molecules, the energy of infra-red rays gets converted into molecular vibrations.

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

7. They are scattered less as compared to the visible light by the atmosphere. Hence, infra-red rays can travel through longer distances through atmospehre under the conditions of smoke, fog, etc. Nitrogen and oxygen gases are found to be transparent medium to all the wavelengths of infra-red rays.

Applications :

1. Infra-red rays from the sun keep the earth warm and hence help to sustain life on earth.
2. The coal deposits in the interior of earth are the result of conversion of forest wood into coal due to infra-red rays.
3. Infra-red rays are used in solar water heaters and cookers.
4. Infra-red rays photographs are used for weather forecasting.
5. Infra-red rays are used for taking photographs during the conditions of fog, smoke, etc.
6. Infra-red rays absorption spectra is used in the study of molecular structure and then to check the purity of the chemicals.
7. Infra-red rays are used for producing dehydrated fruits.
8. Infra-red rays are used to provide electrical energy to satellites by using solar cells.
9. Infra-red rays are used to treat muscular strains.

58. Ibid., p. 740—

"Ultra-Violet Rays

Ultra-violet rays were discovered by Ritter in 1801. The ultra-violet rays are part of solar spectrum. They can be produced by the arcs of mercury and iron. They can also be obtained by passing discharge through hydrogen and xenon.

Properties :

1. Ultra-violet rays are electromagnetic waves and travel with the speed of 3×10^8 ms^{-1}.
2. They also obey the laws of reflection and refraction.
3. They can also undergo interference and can be polarised.
4. When allowed to fall on metals, they cause the emission of photoelectrons.
5. They can affect a photographic plate.

6. Ultra-violet rays can cause flourescence in certain materials (Tube Lights)
7. Ultra-violet rays can not pass through glass but quartz, flourite and rock salt are transparent to them.
8. Ultra-violet rays possess the property of synthesizing vitamin D, when the skin is exposed to the sunlight."

59. Ibid., p. 740—

"X-Rays

The discovery of X-rays was accidentally made by a German professor Rontgen in 1895. In laboratory, X-rays can be produced by using Coolidge X-ray tube.

Properties. X-rays have the following properties:

1. X-rays are electromagnetic waves of very short wavelength ranging from 0.01 Å to 10Å.
2. X-rays travel in vacuum with the speed of light (3×10^8 ms^{-1}, as they are also electromagnetic waves.
3. They are not deviated by electric and magnetic fields.
4. They affect the photographic plate very intensely.
5. They ionise the gas through which they pass.
6. They cause fluorescence in substances like zinc sulphide, barium platinocyanide, calcium tungstate, etc.
7. Like light, X-rays can also cause photoelectric effect.
8. They travel in straight line and while doing so, they cast the shadows of the object falling in their path.
9. X-rays can undergo reflection, refraction, interference, diffraction and polarisation.
10. X-rays can penetrate the materials that are opaque to visible or ultra-violet light. They can easily pass through paper, thin sheet of metals, wood, flesh, etc. but they cannot penetrate denser objects such as bones, heavy metals etc.
11. They have injurious effect on human bodies. Exposure of human body to X-rays causes reddening of the skin. The long exposures result into surface sores.
12. When X-rays fall on certain metals, secondary X-rays are

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

produced, which are characteristic rays of the metal. The secondary X-rays are accompanied by fast moving electrons.

60. Text Book of Physics, op cit., pp. 97-98—

"This discussion shows that, at a point where an electromagnetic wave is passing, the electric and the magnetic field vectors oscillate in phase along mutually perpendicular directions, and are both located in a plane which is perpendicular to the direction of prepagation of the wave.

To be more specific, these oscillations have the following meaning.

If at any point at a specific time, the E and B vectors have zero values, their values will increase with the time along two mutually perpendicular directions, then reach their maximum values simultaneously and start decreasing; again reaching zero. Then they reverse their directions, reach their maxima and again decrease. This way the field vectors oscillate along mutually perpendicular directions, remaining confined to a plane which is perpendicular to the direction of the electromagnetic wave, so long as the wave is propagated through that point.

It should also be noted that in this process, the kinetic energy of the charge oscillating between the two spheres is radiated away in the form of the energy of electromagnetic radiation, which propagates in the space. The frequency of the waves generated is the same as the frequency of the oscillation of charge between the spheres. The expression c (velocity) = λ (wavelength) xf (frequency) holds true. Thus, if one wants to generate waves of 300 meter wavelength, the frequency of oscillations should be

$$\lambda = 300 = \frac{300 \times 10^6}{f}$$

Seven years after the experiments by Hertz, Jagdishchandra Bose produced electromagnetic waves in the range of wavelength 5 mm to 25 mm. Around the same time an Italian Scientist Marconi succeeded in sending and receiving electromagnetic waves over a distance of several miles.

61. Satish K. Gupta, op. cit. pp. 1059, 1060, 1062—

"Discharge Through Gases

"The phenomenon of discharge gases at low pressure is of great

importance, as it provides a great deal of information about the structure of atom.

At atmospheric pressure, dry and dust free air is found to be a bad conductor of electricity. It is because, under such condition, air does not have free positive and negative ions. The ionisation of air may be caused by heat radiation, ultraviolet light, X-rays, radio-active rays (alfa, beta, and gamma-rays), cosmic rays, etc. However if a potential difference of about 30 kV is applied across two electrodes held at a distance of 1 cm in dry air at S.T.P., then a spark is found to occur between the electrodes. The value of potential difference applied across the electrodes depends upon the shape and size of electrodes, distance between the electrodes, state of dryness and pressure of the air (or the gas enclosed).

Discharge tube. A discharge tube consists of a glass tube about 40 cm long and 3-4 cm in diameter. The tube is provided with two aluminium disc-electrodes. It contains the gas through which electric discharge is to be studied.

The pressure of the enclosed gas can be reduced with the help of a vacuum pump by connecting it to a side tube.

A high potential difference of the order of 10 to 15 kV is applied across the electrodes with the help of an induction coil. As the pressure is gradually decreased, the following phenomena are observed, as explained below :

1. **At a pressure above 10 mm of mercury.** When pressure of the gas is above 10 mm of mercury, no discharge passes through the gas. If a milliammeter is connected in the circuit, it will not record any current.
2. **At a pressure of 10 mm of mercury.** When pressure of the gas is reduced to 10 mm of mercury, the discharge passes through the gas between the electrodes with a cracking sound.
3. **At a pressure of 5 mm of mercury.** As the pressure is reduced to 5 mm of mercury, the discharge broadens out and becomes bright. It extends from cathode to anode.
4. **At a pressure of 2 mm of mercury.** On decreasing the pressure of the gas to 2 mm of mercury, long luminous column from the anode up to almost the cathode appears. It is called positive column. There appears a glow on the cathode, called negative glow. Between the positive column and the negative glow, the

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

gap appears comparatively dark.

5. **At a pressure of 1 mm of mercury.** As the pressure is further decreased to 1 mm of mercury, the negative glow leaves the cathode and another glow called cathode glow appears on the cathode. The space between the cathode glow and the negative glow appears dark.
6. **At a pressure of 0.01 mm of mercury.** As the pressure is reduced further dark space increases in length. At a pressure of 0.01 mm of mercury, the whole tube is then filled with dark space. At this stage, a stream of invisible particles is emitted from the cathode. Such rays are called cathode rays. The portion of the glass tube opposite to the cathode starts glowing as the rays fall on it. This glowing of the tube is due to fluorescence produced by the cathode rays.
7. **At a pressure of 10^{-4} mm of mercury.** As the pressure is reduced below 0.01 mm of mercury it becomes difficult to maintain the discharge and at a pressure 10^{-4} mm of mercury, discharge stops to pass through the gas.

   The discharge tube phenomenon has been utilised in making fluorescent tubes, neon signs, flood light mercury lamps, sodium lamps etc.

   Cathode Rays

   When a potential difference of 10 to 15 kV is applied across the two electrodes of a discharge tube and pressure is reduced to 0.01 mm of mercury, the rays known as cathode rays are emitted from the cathode. These rays are independent of the nature of the gas in the discharge tube and their direction of propagation is not affected by the position of the anode.

   Cathode rays ionise the gas through which they pass.

   Cathode rays can excite fluorescence.

   When they fall on certain substances, the substance start glowing. The colour of fluorescence depends upon the nature of the substance.

62. आचारांग सूत्र (आयारो), प्रथम अध्ययन।
63. दशवैकालिक सूत्र (दसवेआलियं), चतुर्थ अध्ययन।
64. प्रज्ञापना सूत्र (पण्णवणा), 1/24-26

65. आचारांग सूत्र, 1/66

    ''जे लोगं अब्भाइक्खइ, से अत्ताणं अब्भाइक्खइ।
    जे अत्ताणं अब्भाइक्खइ, से लोगं अब्भाइक्खइ ॥''

66. दशवैकालिक सूत्र (दसवेआलियं), 4/20

    ''से अगणिं वा इंगालं वा मुम्मुरं वा अच्चिं वा जालं वा अलायं वा सुद्धागणिं वा उककं वा...''

67. प्रज्ञापना सूत्र (पण्णवणा), 1/24-26

    ''से किं तं तेउक्काइया? तेउक्काइया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा सुहुमतेउक्काइया य बादरतेउक्काइया य ॥

    से किं तं सुहुमतेउक्काइया? सुहुमतेउक्काइया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य। से त्तं सुहुमतेउक्काइया ॥

    से किं तं बादरतेउक्काइया? बादरतेउक्काइया अणेगविहा पण्णत्ता, तं जहा इंगाले जाला मुम्मुरे अच्ची अलाए सुद्धागणी उक्का विज्जू असणी णिग्घाए संघरिससमुट्ठिए सूरकंतमणिणिस्सिए। जे यावण्णे तहप्पगारा ते समासतो दुविहा पण्णत्ता, तं जहा पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य। तत्थ णं जेते अपज्जत्तगा ते णं असंपत्ता। तत्थ णं जेते पज्जत्तगा एएसि णं वण्णादेसेणं गंधादेसेणं रसादेसेणं फासादेसेणं सहस्सग्गसो विहाणाइं, संखेज्जाइं जोणिप्पमुहसयसहस्साइं। पज्जत्तगणिस्साए अपज्जत्तगा वक्कमंति जत्थ एगो तत्थ णियमा असंखेज्जा। से त्तं बादरतेउक्काइया। से त्तं तेउक्काइया ॥''

68. दसवेआलियं, 4/20 का टिप्पण, पृष्ठ 152, 153
69. (a) जिनदास चूर्णि, पृ. 155-56 : अगणी नाम जो अयपिंडाणुगयो फरिसगेज्झो सो आयपिंडो भण्णइ।
    (b) हारिभद्रीय टीका, प. 154 : अयस्पिण्डानुगतोऽग्निः।
70. (a) अगस्त्य चूर्णि, पृ. 89 : इंगालं वा खदिरादीण णिद्दड्ढाण धूमविरहितो इंगालो।
    (b) जिनदास चूर्णि, पृ. 156 : इंगालो नाम जालारहिओ।
    (c) हारिभद्रीय टीका, प. 154 : ज्वालारहितोऽङ्गारः।
71. (a) अगस्त्य चूर्णि, पृ. 89 : करिसगादीण किंचि सिट्ठो अग्गी मुम्मुरो।
    (b) जिनदास चूर्णि, पृ. 156 : मुम्मुरो नाम जो छाराणुगओ अग्गी सो मुम्मुरो।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

(c) हारिभद्रीय टीका, पृ. 154 : विरलाग्निकणं भस्म मुर्मुरः।

72. (a) अगस्त्य चूर्णि, पृ. 89 : दीवसिहासिहरादि अच्ची।

(b) जिनदास चूर्णि, पृ. 156 : अच्ची नाम आगासाणुगआ परिच्छिण्णा अग्गिसिहा।

(c) हारिभद्रीय टीका, प. 154 : मूलाग्निविच्छन्ना जवाला अर्चिः।

73. (a) अगस्त्य चूर्णि, पृ. 89 : उद्दितोपरि अविच्छिण्णा जाला।

(b) जिनदास चूर्णि, पृ. 156 : ज्वाला पसिद्धा चेव।

(c) हारिभद्रीय टीका, प. 154 : प्रतिबद्धा ज्वाला।

74. (a) अगस्त्य चूर्णि, पृ. 89 : अलातं उमुतं।

(b) जिनदास चूर्णि, पृ. 156 : अलायं नाम उम्मुआहियं पंज (पज्ज) लियं।

(c) हारिभद्रीय टीका, प. 154 : अलातमुल्मुकम्।

75. (a) अगस्त्य चूर्णि, पृ. 89 : एते विंसेंसे मोत्तूण सुद्धागणि।

(b) जिनदास चूर्णि, पृ. 156 : इंधणरहिओ सुद्धागणी।

(c) हारिभद्रीय टीका, प. 154 : निरिन्धनः शुद्धोऽग्निः।

76. (a) अगस्त्य चूर्णि, पृ. 89 : उक्का विज्जुतादि।

(b) जिनदास चूर्णि, पृ. 156 : उक्काविज्जुगादि।

(c) हारिभद्रीय टीका, प. 154 : उल्का गगनाग्निः।

77. प्रज्ञापना वृत्ति, पत्र 29

(1) अंगारो विगतधूमः

(2) ज्वाला जाज्वल्यमानखादिरादिज्वाला अनलसम्बद्धा दीपशिखेत्यन्ये।

(3) मुर्मुरः फुम्फकादौ भस्ममिश्रतग्निकणरूपः।

(4) अर्चिः अनलाप्रतिबद्धा ज्वाला।

(5) अलातं उल्मुकं।

(6) शुद्धाग्नि अयःपिण्डारौ।

(7) उल्का चुडुल्ली।

(8) विद्युत् प्रतीता।

(9) अशनिः आकाशे पतन् असिमयः कणः।

(10) निर्घातो वैक्रियाशनिप्रपातः।

(11) संघर्षसमुत्थितः अरण्यादिकाष्ठनिर्म्मथनसमुद्भूतः।

(12) सूर्यकांतमणिनिसृतः सूर्यखरकिरणसम्पर्के सूर्यकांतमणेर्यः समुपजायते।

78. आचारांग निर्युक्ति, गाथा 117, 118

''दुविहा य तेउजीवा सुहुमा तह बायरा च लोगंमि।
सुहुमा य सव्वलोए पंचेव य बायरविहरणा ॥
इंगाल अगणि अच्ची जाला तह मुम्मुरे य बोद्धव्वे।
वायरतेउविहाणा पंचविहा वण्णिया एए ॥''

79. (a) मूलाचार, गाथा 221

''इंगाल-जाल-अच्ची मुम्मुर-सुद्धागणी य अगणी य।
ते जाण तेउजीवा, जाणित्ता परिहरेदव्वा ॥''

(b) जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, भाग 1, पृष्ठ 35, 'अग्नि' शब्द में उद्धृत

''धुआं रहित अंगार, ज्वाला, दीपक की लौ, कंडा की आग और वज्राग्नि, (आकाशीय) बिजली आदि से उत्पन्न शुद्ध अग्नि, सामान्य अग्नि ये तेजस्कायिक जीव हैं।...(आचारांग निर्युक्ति)

80. (a) दशवैकालिक सूत्र पर अगस्त्य सिंहकृत चूर्णि, पृष्ठ 88

''अंतरिक्खपाणितं सुद्धोदगं।''

(b) दशवैकालिक सूत्र पर जिनदास महत्तरकृत चूर्णि, पृष्ठ 155

''अंतलिक्खपाणियं सुद्धोदगं भण्णइ।''

(c) दशवैकालिक सूत्र पर हारिभद्रीय टीका, पत्र 153

''शुद्धोदकम् अन्तरिक्षोदकम्।''

''दसवेआलियं, आचार्य महाप्रज्ञ कृत टिप्पण, पृष्ठ 151 में उद्धृत)

81. प्रज्ञापना टीका, पत्र 30 (अ)

''शुद्धवातो मन्दस्तिमितो बस्तिदृत्यादिगत इत्यन्ये।''

82. भगवती सूत्र, शतक 16 उद्देशक 1, सूत्र 5

''इंगालकारियाए णं भंते! अगणिकाए केवतियं कालं संचिट्ठइ?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि राइंदियाइं। अण्णे वि तत्थ वाउयाए वक्कमंति, न विणा वाउयाएणं अगणिकाए उज्जलति!''

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

83. आचार्य महाप्रज्ञ, आचारांग-भाष्यम्, पृष्ठ 54

''वृत्तावति सचेतनोऽग्निर्यथा योग्याहारेण वृद्धिदर्शनात्, तदभावे च तदभावदर्शनात्।

आधुनिका अपि मन्यन्ते ''प्राणवायु मगृहीत्वा नाग्नेरूद्दीपनं जायते''।''

हिन्दी अनुवाद ''वृत्ति में भी कहा गया है कि अग्नि सचेतन है, क्योंकि उसमें उचित आहार इंधन से वृद्धि और इंधन के अभाव में हानि देखी जाती है। आधुनिक वैज्ञानिकों का भी यही मानना है कि 'प्राणवायु (ऑक्सीजन) के बिना अग्नि प्रज्वलित नहीं होती'।''

84. A.K. Shaha, Combustion Engineering and Fuel Technology, pp. 67, 68—

"Here it will not be out of place to glance at different successive beliefs and theories put forth to explain the wonderful phenomenon of 'fire'.

The existence of fire was known to people from the very primitive age. The ancient Greeks in their legends indicated that Prometheus, the mythological creator of human beings, brought fire to the people from heaven, stealing it from the altar of the Father—God Jupiter. From this myth, however, some hints led to a more authentic historical accounts, according to which the existence of fire came to the knowledge of the primitive man during thunderstorm. Fire descended from the black clouds, the primitive man saw a tree set ablaze by the lightning; with curiosity he ran to the tree, stretched his hand to the beautiful bright tongues of the flame, but in that moment felt an unbearable pain. The flying sparks burnt the front of the skin, wraped around his waist; with surprise of a beast man fell down to the feet of the burning tree, worshipping it as God. Then he brought the burning wood to his cottage, kept it with care as the gift of God and tried to get benefit out of it. Some time later primitive people learnt how to create fire themselves with the help of flints. Fire brought to the man the rudiments of culture. Fire heated the primitive dwelling during the cold season, lighted it in the dark evenings, whereas food taken from the fire was hot and tasteful to eat. For all this primitive man, naive and helpless in his ignorance, considered fire as God and offered sacrifices to it.

The cult of God of Fire passed through the entire ancient world of Heathendome; Egypt, India, Persia, Greece, Syria, Rome. It survived even when people rose to the higher level of cultural development.

In the old Russia, or as it was then called Skythia, there existed also the cult of Perun, the God of Fire and Thunder. Even to-day Fire-Worshippers are dwelling at some places of Afghanistan and India. Such were the great bounties that Fire brought to Humanity. And with the development of culture fire began to render more and more benefits to the Man.

In the Middle Age people have already abandoned the worship of Fire as divinity; the scientists began to study the phenomenon of fire and came to the conclusion that the **combustion of a substance is the escape from this substance of a subtle and imponderable element, which they termed as 'Phlogiston'.**

85. वही, p. 68—

"After about 300 years, with the development of expeirmental chemistry, the scientists, amongst them, the famous A.L. Lavoisier (1743-94), came to the conclusion that **combustion means combination of a substance with the oxygen, with resulting evolution of heat.** Finally, about 50 years ago, experiments showed that in the absolute absence of water-vapours, combustion of a substance does not occur or occurs with great difficulty. This means that combustion is fostered considerably by the presence of steam or moisture.

With further research on combustion still due, it may be said that in the process of flame-less combustion, or perfect combination of gas and oxygen on the incandescent refractory surface, the surface shows negative charge, which leaves room to believe that combustion or combination of a substance with the oxygen means ionisation of the reacting substances."

86. वही, Page 28—

"Fuel is a substance which, when burnt, *i.e.*, on coming in contact and reacting with oxygen or air, produces heat. Thus, the substances classified as fuel must necessarily contain one or several of the following combustible elements : carbon, hydrogen and hydro-carbons."

87. वही, page 28—

"Fuels may be classified in various ways, *i.e.*, (1) according to the physical state in which they exist in nature—solid, liquid and gas eous..."

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

88. वही, page 128—

"Chemical reactions among substances take place more quickly and intensively, the closer is the contact among the reacting substances and the larger the surface of contact. The duration of a chemical reaction depends upon thermal conditions, which might be created either before the beginning of reaction, or during the reaction. All chemical reactions, in the present case combustion, *i.e.*, combination of substances with oxygen, are based on the above mentioned principles. Combustion or combination of substances with either pure oxygen or oxygen contained in the air is realised in practice with the help of different contrivances, the so-called burners."

89. वही, page 129—

"In order to get a high temperature and a short flame, it is necessary to have, prior to commencement of combustion, a perfect mixture of fuels with oxygen. Thus whenever we are to burn either solid, liquid or gaseous fuels, we are to mix them with air in gaseous state."

90. Prof. Dr. A.K. Shaha, Combustion Engineering & Fuel Technology, pp. 121, 122—

"Tere is specific flash temperature, at which each kind of fuel ignites. In the table, the ignition of flash temperatures of various fuels are given :

TABLE

Ignition Temperatures (At Atmospheric Pressure) of Gases, Liquids and Solids

Substance	Ignition temperature in air	Ignition temperature in oxygen
	Degrees Centigrade	
Hydrogen (H_2)	580-590	580-590
Carbon monoxide (CO)	644-658	637-658
Methane (CH_4)	650-750	556-700
Ethane (C_2H_6)	520-630	520-630
Propane (C_3H_8)	—	490-570
Ethylene (C_2H_4)	542-547	500-519
Acetylene (C_2H_2)	406-440	416-440
Hexane ($_6H_{14}$)	487	268
Decane ($C_{10}H_{22}$)	463	202
Benzol (C_6H_6)	740	662
Toluol	810	552
Phenol	715	574
Aniline	770	530
Methyl alcohol	—	555
Ethyl alcohol	558	425
Propyl alcohol	505	445
Isopryl alcohol	590	512
n-Butyl alcohol	450	385
Amyl alcohol	409	390
Ethyl ether	343	178
Glycerine	500	414
Acetone	700	568
Sugar	385	378
Cylinder Oil	417	320
Pennsylvania crude	367	242
Gas oil	336	270
Kerosene	295	270
Acetaldehyde	185	140
Benzaldehyde	180	168
Lignite	225	—
Wool	295	—
Charcoal	350	—
Brown Coal	370-450	—
Coal	477	—
Coke and Anthracite	700	—

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

91. डा. जे. जैन, अप्रकाशित लेख पृष्ठ 4

92. वही, पृष्ठ 13

93. वही, पृष्ठ 4, 5

94. वही, पृष्ठ 5

95. वही, पृष्ठ 5

96. वही, पृष्ठ 14

97. वही, पृष्ठ 41, 42

98. वही, पृष्ठ 35, 36

99. Prof. G.R. Jain, op. cit., p. 125—

"The range of temperatures existing in Nature is again very wide, and what little has come under the measuring rod of a physicist has revealed very striking contrasts. The temperature of ice physicists call zero and the temperature of boiling-water 100 degrees (centigrade). The temperatures of bodies colder than ice are called minus temperatures and mathematical calculations show that the lowest possible temperature in Nature cannot be less than minus 273 degrees. Mercury hardens into a solid mass at minus 40 degrees. Just as the steam is converted into liquid water on cooling, so is air by artificial cooling converted into liquid air at minus 190 degrees. Helium gas in converted into liquid or solid helium at minus 269 degrees. Some other interesting temperatures are :

Gold melts at	1,062 Degrees
Platinum melts at	1,7770 "
Tungsten " "	3,400 "
Temperature of burning charcoals	1,300 "
Temperature of electric carbon arc	3,500 "
Surface temperature of the sun	5,500 "
Central temperature of the sun	two crores "

Highest temperature estimated in stars by Eddington is four crores of degrees. *(See The Internal Constitution of the Stars,* by Eddington.)

If we probe into our own atmosphere we find that the temperature gradually falls as one goes higher up until at about a height of 11

miles just over the equator temperature has a value minus 55 degree—a temperature well suited to petrify even mercury. Further on up to a height of 23 miles the temperature remains steady, beyond which it increases to that of spring season, *i.e.*, about 30°C. This is enough to show that temeprature of things is measureable from one point of view and the infinite shades of it, it is impossible to enumerate. The extremes of temperatures existing in the regions of the Hell are expressed in the following verse of Chaha Dhala:

गिरि सम लोह गलै जम जाय, ऐसी शीत उष्णता थााय।''

100. J.S. Zaveri and Muni Mahendra Kumar, Microcomology..., pp. 53, 54—

"We have already observed that matter and energy are two different manifestations of one and the same cosmic entity, instead of being two different entities. Matter instead of being immutable was energy in a frozen state, while, conversely energy was matter in a fluid state. The liberation of energy in any form—chemical, electrical or nuclear—involves the loss of an equivalent amount of mass.

Liberation of Energy

It is well known that most chemical reactions liberate energy, simplest instance being burning of coal. The chemical union, in this case, is that of carbon and oxygen in the form of molecular fusion. When 3000 tons of coal are burnt to ashes, the residual ashes and the gaseous products weight one gram less than 3000 tons, that is, one three-billionth part of the orginal mass will have been converted into energy.

Thus oxygen (O) + carbon (C) = carbon monoxide (CO) + energy.

This reaction would give 92 units of energy per gram of mixture. If instead of molecular fusion of these two atomic species, we have a nuclear fusion between their nuclei $6^{C^{12}} + 8^{O^{16}} = 14^{Si^{28}}$ + energy—the energy liberated per gram of mixture will be 14×10^9 Units, *i.e.* 15,00,000 times as great. In the liberation of chemical energy by the burning of coal, the energy comes from a very small mass *i.e.* loss of mass resulting from the rearrangment of the electrons on the surface of atoms. The nuclei of the carbon and oxygen atoms are not involved in any way, remaining exactly the same as before. The amount of mass lost by the surface electrons is one thirteenth of one millionth of one percent. On the hand, nuclear

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

energy involves vital changes in the atomic nucleus itself, with a consequent loss of as high as 1/10 to nearly 8/10 of 1% in the orginal mass of the nucleus. This means that from 1 to nearly 8 gms. per 1000 gms. are liberated in the form of energy, as compered with only 1 gm. in 3 billion gms. liberated in the burning of coal. In other words, the amount of nuclear energy, liberated in the transmutation of atomic nuclei is from 30,00,000 to 2,40,00,000 times as great as the chemical energy released by the burning of an equal amount of coal. Whereas most chemical reactions would take place easily at temperatures of a few hundred degrees, corresponding nuclear transformations would not even start before the temperature reached many million degrees."

101. Gomber and Gupta, op. cit., p. 8/1—

"Concept of Heat

We know that when a piece of red hot iron is dropped into a beaker containing water, the water becomes hot and the red hot iron piece cools down fill the temperatures of the two become equal. It appears that 'something' has flown from red hot iron piece to water. *This 'something' which flows from a body at higher temperature to another body at lower temperature, when the two are in contact, is called 'Heat'.*

However, caloric theory failed to explain the *production of heat on account of friction.* For example, when we rub our hands against each other, we feel warm. Similarly, when two pieces of metal are rubbed together, heat is produced. The famous *paddle wheel experiment* performed by Joule also led to the production of heat by friction between the rotating paddle and water.

These observations led to the **Dynamic theory of heat,** according to which *heat is a form of energy* called *thermal energy.*

Every body is made up of large number of tiny particles, called *molecules.* Depending on the nature of the substance (solid, liquid or gas) and temperature of the substance, the molecules may possess :

(i) **Translatory motion** *i.e.* motion along straight lines.

(ii) **Vibratory motion** *i.e.* to and for motion about the mean position of the molecules.

(iii) **Rotatory motion** *i.e.* rotation of the molecules about their axis."

102. Gomber and Gupta, op. cit., p. 8/101—

"Thermal Radiations

Thermal radiations are those, which produce in us the sensation of warmth.. They are emitted by a body on account of its temperature. It was established later that every body whose temperature is above 0K emits thermal radiations. The energy emitted depends on :

(i) the temperature of the body.

(ii) nature of radiating surface of the body.

The wavelength of thermal radiations ranges from 8×10^{-7} *m* to 4×10^{-4} *m.* They belong to *infra-red* region of the electromagnetic spectrum. That is why thermal radiations are also called *infra-red radiations.*

Some of the *basic characteristics* of thermal radiations are :

1. They travel along straight lines with the speed of light.
2. They require no medium for their propagation *i.e.* they can pass through vacuum too.
3. They do not heat the intervening medium through which they pass.
4. They obey inverse square law *i.e.* their intensity varies inversely as the square of the distance from the source.
5. They can be reflected and refracted according to the laws of reflection and refraction of light.
6. Thermal radiations also exhibit the phenomena of interference, diffraction and polarisation as do the light radiations.

The only major difference between the thermal radiations and light radiations is in their wavelength. Whereas the wavelength of thermal radiations lies in the range 8×10^{-7} metre to 4×10^{-4} metre, wavelength of visible light lies in the range 4×10^{-7} *m* to 8×10^{-7} *m.* Thus thermal radiations are of longer wavelength or smaller frequency and hence smaller energy as compared to the visibile light."

103. Text-book of Physics (XII Std.) (Part I), pp. 161, 162—

"(2) Convection of Heat : In fluids, the heat-transfer takes place mainly by the process of heat convection. When a fluid is

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

heated from below, it expands and hence its density decreases. So the hotter fluid comes above under the effect of buoyancy and the heavier, cooler fluid sinks under the force of gravity. This way, the entire mass of fluid gets heated. Hot and cold air currents in the atmosphere are due to non-uniform heating of the atmosphere and the associated effects of heat convection.

(3) Thermal Radiation : Any substance radiates electromagnetic radiations of differnet frequencies to an extent that depends on its temperature. This radiation is called the thermal radiation. Energy associated with the electromagnetic radiation of the thermal radiation is called the radiation energy.

In a given thermal radiation how the radiated energy is distributed at different frequencies depends upon the temperature and the nature of the radiating body. For example, piece of iron when heated, first appears dark reddish, then as it gets more hot it shines yellowish red, and at still higher temperature, whitish.

When we warm ourselves near a coal stove, we absorb energy contained in different frequencies of electro magnetic radiations, being emitted by hot charcoals.

Here the heat energy propagates through radiation.

Stephen-Boltzmann Law

In the year 1879, a scientist named Stephen experimentally showed that "the amount of energy radiated by a surface, in the form of thermal radiation, per unit area per second is proportional to the fourth power of its absolute temperature". The same fact was theoretically established by Boltzmann in the year 1884. The statement is known as Stephen-Boltzmann law.

The amount of energy radiated per second per unit area at a given temperature is called the total emissive power. The total radiated energy includes the entire amount integrated over all the frequencies of electromagnetic spectrum. So according to Stephen-Boltzmann law,

$W = e\ Q\ T^4$. (6.36)

Here, T is the absolute temperature, e is known as the emissivity of the radiating surface, Q is called the Stephen-Boltzmann constant. It is a universal constant and has value of $Q = 5.67 \times 10^{-8}$ Watt/ $met^2 K^4$)"

104. वही, pages 199, 200—

"In reality, the electric current in solids is due to motion of electrons, so one may say that a unit negative charge has an electrical energy of V Joule at the negative terminal.

We have also studied in the previous chapter that when the electrons acquire drift they experience collisions with the positive ions oscillating about their mean position; and the energy acquired by the electrons is partly handed over to the ions making their oscillations more energetic. This increase in the energy of oscillations of the ions is manifested as heat, causign an incerease in the temperature of the conductor.

The heat energy released in a conductor on passage of an electric current is called the 'Joule heat' and the effect is called the 'Joule effect".

If the potential difference applied across two ends of a conductor is V; it means that when a unit charge passes through the conductor, an amount of electrical energy equal to V Joule is utilized.

If Q coulomb of charge passes through the conductor in *t* seconds then the electrical energy utilized in *t* seconds = heat energy produced during this time.

"**Joule's Law :** "The heat produced per unit time, on passing an electric current through a conductor at a given temperature, is directly proportional to the squre of the current."

The law is named after the scientist Joule; who also gave the conversion from Joule to Calorie; which is the more usual unit for heat. According to that,

1 Caloric = 4.2 Joule. The number "4.2" is commonly denoted by a symbol J and is called the "mechanical equivalent of heat"."

105. अग्नि की क्रिया में वायु रूप इंधन की रासायनिक क्रिया को समझाने के लिए कुछ व्याख्याएं इस प्रकार प्रस्तुत हुई हैं, जिनसे अग्नि के रासायनिक रूप का कोरे भौतिक परिणमन से भिन्नत्व स्पष्ट होता है। देखें,

A.K. Shaha, Combustion Engineering and Fuel Technology, p. 74, 75—

"Theory and Mechanism of Combustion

The combustion of a gaseous substance is the combination of oxygen

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

with the combustible gas. The intermediate stages through which the gas passes from its initial condition to the final product of combustion are termed as mechanism of reaction.

Usually, a combustible gas consists of carbon monoxide, hydrogen and hydrocarbons. The mechanism of combustion reactions of these elements will be considered separately.

Carbon Monoxide

It is a well known fact that in presence of water vapours, carbon monoxide burns quickly and intensively. In absolute absence of water vapours the combustion of carbon monoxide almost ceases. This phenomenon can be explained as follows : at the first instance the water vapours are endowed with the high electrical conductivity which helps to increase the process of ionisation : secondly, steam molecules colliding with those of carbon dioxide (CO_2) obstruct radiation of heat by carbon dioxide molecules, which are formed during the combustion. In absolute absence of water vapours, there would be a considerable loss of heat due to radiation and thus the combustion would proceed slowly.

Hydrogen

It has been finally established that hydrogen burns first in preference to carbon. According to Dixon, a struggle arises between the carbon and hydrogen for combination with the oxygen.

Hydrocarbons

There are two hypotheses regarding the combustion of hydrocarbons: hydroxylation and peroxidation.

The essence of mechanism of hydroxylation, according to Bone, is that there is an initial association of oxygen with the hydrocarbon molecule, forming intermediate "Hydroxylated" compounds, which in turn burn or are broken down thermally.

The combustion of gaseous hydrocarbons takes place by an interaction of the hydrocarbon with oxygen, forming an intermediate unstable "hydrogenated" compound.

Two examples of hydroxylation of gaseous hydrocarbons are given below :

According to theory of peroxidation, worked out by Academician Bakh in Russia as early as 1897, the first product of combustion is

not the hydrate but the active unstable peroxide, which in course of further reactions acts as a catalyst and activates the molecules of combustible mixture."

106. (a) Satish K. Gupta, op. ct., p. 741—

"Earth's Atmosphere

The gaseous envelope surrounding the earth is called earth's atmosphere.

At sea level, by volume, dry air contains 78.08% nitrogen, 20.95% oxygen, 0.93% argon, 0.03% carbon dioxide, 0.0018% neon and traces of gases such as helium, kyrpton and xenon. In addition to the above, air contains water vapours, hydrocarbons, hydrogen peroxide, sulphur compounds and dust particles. The composition of earth's atmoshphere varies very slightly with altitude. It remains same up to a height of 100 km but its density goes on decreasing as we go up. The earth's atmosphere has no sharp boundary. It has been divided into a number of regions (or layers) as shown in Fig. They are as explained blow :

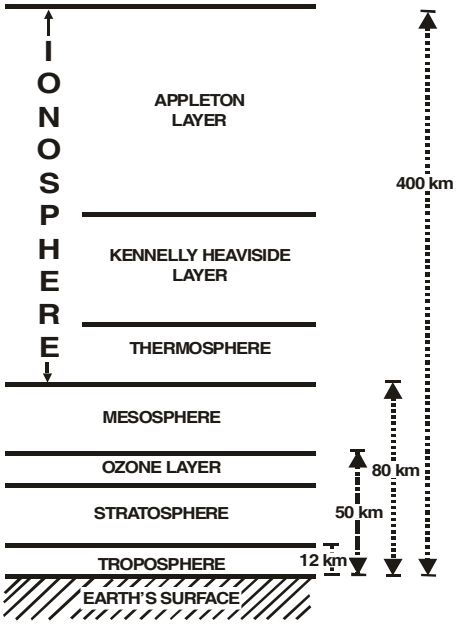

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

1. **Troposphere.** This region extends up to 12 km from the surface of the earth. Its density varies from 1 kg m^{-3} at the surface of earth to 0.1 kg m^{-3} at the top of this layer. All the water vapours of the atmosphere are contained in this layer. In this part of atmosphere, temperature decreases with height from 290 K to 220 K.
2. **Stratosphere.** This region of atmosphere extends from 12 km from the surface of earth upto 50 km and it forms practically clear sky. The density of atmosphere in this region varies from 0.1 kg m^{-3} to 10^{-3} kg m^{-3} and the temperature varies from 220 K to 280 K. At the upper extreme of this region, there is a layer of ozone between 30 to 50 km from the surface of earth, in which most of the atmospheric ozone is concentrated. It is responsible for absorbing a large proportion of ultra-violet radiation radiated by the sun and this layer protects the life on earth from its harmful effects. The ozone layer is also called *ozonosphere.*
3. **Mesosphere.** The resion of earth's atmosphere between 50 to 80 km from the surface fo earth is called mesosphere. The density of the atmosphere in this region varies from 10^{-3} kg m^{-3} to 10^{-5} kg m^{-3} and the temperature varies from 290 K to 180 K."

(b) Text-book of Physics, (Std XII), Part II, Pages 100, 101—

"Electromagnetic Radiations and Earth's Atmosphere

Electromagnetic radiations passing through different media suffer effects like scattering, refraction, reflection, polarization and absorption. The effects produced by the electromagnetic radiations of different wavelengths during their passage through the earth's atmosphere are of particular importance to us.

The following points are to be noted :

(1) As you go above earth's surface, density of the atmosphere goes on decreasing, but there is no sharp limit to the atmosphere above.

(2) Upper layers of the atmosphere are partially ionized; *.i.e.* they have atoms ionized to electrons and positive ions. This layer is called the ionosphere.

(3) Layers of the atmosphere below the ionosphere are mostly of neutral atoms and molecules.

(4) Molecules of water are mostly confined to the lowest layer called the troposphere.

(5) There is a significant amount of Ozone (O_3) gas in the height range 30 to 50 kilometers.

(c) Satish K. Gupta, op. ct., Pages 137, 138—

"The Atmosphere and its Electricty

The earth's atmosphere extends upto about 400 km above the surface of the earth. The electrical properties of the atmosphere goes on changing, as one goes up from the surface of earth. On the basis of these electric properties, the earth's atmosphere has been divided into following four layers :

1. Troposphere, 2. Stratosphere, 3. Mesophere, 4. Ionosphere

The electrical properties and the phenomena occurring in the atmosphere are mainly due to troposphere and stratosphere. The troposphere extends up to 12 km from the surface of earth, while the stratosphere extends from 12 km to about 50 km from the surface of the earth.

The earth is good conductor of electricity and at low altitude, atmosphere is poor conductor of electricity. The small conductivity of the atmosphere is due to the ionisation produced by the high energy particles of the cosmic rays, which are constantly hitting the earth from the outer space. The conductivity of space is greatly influenced by the presence of dust particles and by the humidity conditions. However as we to up, the conductivity of the atmosphere goes on increasing. At the top of stratosphere *i.e.* at a distance of 60 km from the surface of the earth, the atmosphere is quite a good conductor of electricity. The electrical phenomena in atmosphere take place between the surface of earth (acting as one conducting layer) and the top of the stratosphere (acting as the other conducting layer), which are separated by a thick atmosphere of varying conductivity. The two layers form a spherical capacitor of large capacitance.

Now, we state a few experimentally observed facts about electrical properties of atmosphere :

1. At ground level, there is a downward electric field of about 10^2 V m^{-1} all over the earth. This goes on decreasing with height.

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

At 10 km above the surface of earth, it becomes quite small, while at end, it is negligible.

2. There is potential difference of the order of 4×10^5 V between the surface of earth and that of the stratosphere. Most of the potential difference occurs at low altitudes.
3. Due to downward electric field at ground level, earth has a negative surface charge density over the surface of earth.

   The negative surface charge density of the earth is -10^{-9} C m^{-2}

   Total charge on the surface of the earth is -5×5 C
4. The top of the stratosphere has an equal positive charge *i.e.*

   $+5 \times 10^5$ C

   ....the potential difference between the earth's surface and that of the stratosphere should be

   5×10^6 V

   However, the observed value (4×10^5 V) is much lesser. The explanation for this difference is the fact that the intervening air becomes more and more conducting as we go up.
5. Due to the downward electric field, the positive ions continuously flow into earth and the negative ions ascend. The current flowing per unit area has been estimated to be about 3×10^{-12} Cs^{-1}. In other words, about + 1800 C of charge is being pumped into earth per second.

   As such, the negative charge ($= -5 \times 10^5$ C) on the earth would get neutralised in a few moments. However, it does not happen at all. It is because of thunderstorms and lightning flashes occuring world wide.

Steady condition of earth's atmosphere. It can be explained on the basis of the follwing experimental observations :

1. On the average, about $4 \times 10^4 = 40000$ thunderstorms occur per day world wide. In other words thunderstorm occurs every two seconds in the world some where. It lasts for about one hour.
2. During each thunderstorm, positive charges are carried upwards to a height of about 6 km above of the surface of earth, while the negative charges collect at about 2 – 3 km above the earth.

   Thus, the top of a cloud gets positively charged and its bottom negatively charged.
3. Due to separation of charges, a potential difference of the order 2×10^7 V to 10^8 V is created between the earth and bottom of the cloud. (The bottom of the cloud may carry a total negative charge between – 20 C to – 30 C). Such a big potential difference across the 3 km thickness of atmosphere creates an electric field, which is of the order of 10^4 V m^{-1} to 3×10^4 V m^{-1} in upward direction.
4. Due to this high electric field, air gets ionised and becomes conducting. Towards the end of thunder storm, it allows large amount of negative charges in bursts along narrow pathways from clouds to earth.
5. In the concluding stages of a storm, there are about 200 flashes or bolts in a storm, each for 2×10^{-3} s. Each bolt carries negative charge to the earth and about—20 C charge is deposited on the earth. There are about 100 bolts of lightning per second through out the world.
6. The peak current in each bolt of lightning is about—10^4 C s^{-1}. After each bolt, the thunder storm gets charged again and is ready for next bolt. Thus, thunderstorms make—1800 C of charge to flow from the earth every second, which just counter-balances the steady inflow of + 1800 C of charge to flow from the thunderstorm free regions of the earth.

107. एक गणित का उदाहरण इसे और स्पष्ट करता है, देखें Text-book of Physics (Std. XII), Part II, Page 172—

"Problem 1 : Average surface charge density of the earth's surface is 10^{-9} coulomb/meter^2. If there exists a potential difference of 400 volts between a certain layer of upper atmosphere above the earth's surface causing a current of 1800 amp (assumed constant) to flow from earth's surface to the atmosphere, how much time will it take earth's surface charge density to become zero?

(Radius of earth = 6400 km)

Surface charge density $\sigma = 10^{-9}$ coulomb/meter^2

Surface area of earth $4 \pi R^2$

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

$\therefore$ A = 51445.5×10^{10} meter^2

Total charge Q = $\sigma A = 10^{-9} \times 51445.5 \times 10^{10}$

$= 5.144 \times 10^5$ coulomb.

$$Q = I\,t \Rightarrow t = \frac{Q}{I}$$

$$= \frac{5.144 \times 10^5}{1800}$$

$$= 0.2857 \times 10^3$$

t = 285.7 second.

[**A note :** Thunderstorms continually going on at various places on the earth convey electrical charge to the surface of the earth maintaining on an average conditions described in this problem.]"

108. डॉ. जे. जैन, अप्रकाशित लेख, पृष्ठ 8-10

109. गुजरात समाचार (दैनिक), अहमदाबाद, अर्धसाप्ताहिक पूर्ति क्षतदल, में 4.9. 2002 को 'डिस्कवरी' कालम में प्रकाशित डॉ. बिहारी छाया का लेख ''आकाशनी बीजली पड़े त्यारे शरीर ने केवी हानि थाय'' से उद्धृत।

110. डॉ. जैन, पूर्व उद्धृत सन्दर्भ, पृष्ठ 26

111. वही, पृष्ठ 12

112. वही, पृष्ठ 37

113. वही, पृष्ठ 25

114. वही, पृष्ठ 31

115. WWW.Strattman.com/articles/luminous tubes. html.—"The Luminuous Tube" An illuminating description of how neon signs operate." By Wayne Strattman, Page 1

●●●

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

भाग-2

शंका-समाधान

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

शंका-समाधान

उपर्युक्त समग्र विवेचन से यह भलीभांति स्पष्ट हो जाता है कि इलेक्ट्रीसीटी या बिजली अपने आप में सचित्त तेउकाय नहीं है। अब इलेक्ट्रीसीटी के प्रयोग के कारण कहां तेउकाय की उत्पत्ति होती है और कहां नहीं होती, उस विषय में कुछ भ्रांतियां हैं। उनका निराकरण अपेक्षित है।

प्रश्न 1. ''स्वीच ऑन करने के बाद, बल्ब, प्रकाश को फैलाता हुआ दिखाई देता है। जिससे इलेक्ट्रीक बल्ब में बिजली (= Flow of Electrons) का प्रवेश और बल्ब के अन्दर से प्रकाश स्वरूप तेजाणु (Photon) का बहिर्गमन सिद्ध होता है तथा जिस मार्ग से पुद्गल स्वरूप बिजली अन्दर प्रवेश करती है उस मार्ग से तार से या अन्य कोई मार्ग से उसके लिए प्रायोग्य जरूरी वायु-द्रव्य भी अन्दर जा सकता है। कार्य हो वहां कारण को अवश्य मानना पड़ता है। कारण बिना कार्य की उत्पत्ति नहीं हो सकती। जैसे जहां धुआं होता है वहां आग का होना सिद्ध होता है। वैसे बल्ब में उष्ण प्रकाश की एवं अग्नि की हाजरी दिखाई देने से, **'भगवती सूत्र'** में बताए गए पूर्वोक्त (पृष्ठ-9) नियमानुसार, वहां वायु का होना भी सिद्ध होता है। क्योंकि बिना कारण के कार्य नहीं हो सकता। यह तर्कशास्त्र का मूलभूत सिद्धान्त है।''[1]

उत्तर तार द्वारा जो विद्युत्-प्रवाह बल्ब के अन्दर पहुंचता है, वह धातु के तार की अपनी संरचना के कारण सम्भव है। विद्युत् की सुचालकता इसके लिए जिम्मेदार है। विद्युत्-प्रवाह के रूप में चलने वाले पुद्गल और अग्नि को जलाने वाली ऑक्सीजन वायु के पुद्गल में अन्तर है। तार विद्युत् का वाहक है, ऑक्सीजन या अन्य वायु का नहीं। इसलिए ऐसा मानना कि किसी भी तरह ऑक्सीजन या वायु अन्दर चली जाती है, न तर्कसंगत है और न विज्ञानसंगत।

पहले तो विद्युत् को सचित्त तेउकाय या अग्नि के रूप में मान लेना और फिर उसको सिद्ध करने के लिए इस प्रकार का काल्पनिक आधार प्रस्तुत करना अपने आप में न्यायसंगत नहीं है। प्रत्युत आगमवचन द्वारा जब स्पष्ट रूप से वायु के बिना अग्नि के अस्तित्व को अस्वीकार किया गया है तथा यह वायु ऑक्सीजन (या प्राणवायु) ही है ऐसा प्रत्यक्ष अनुभव से प्रमाणित हो रहा है, तब उसके अभाव में तेउकाय के

अस्तित्व को किसी भी प्रकार सिद्ध नहीं किया जा सकता। बल्ब में ऑक्सीजन के सिवा अन्य वायु का अस्तित्व होने पर भी अग्नि नहीं हो सकती, क्योंकि वहां उपस्थित अन्य वायु निष्क्रिय है। यदि नाइट्रोजन, आर्गोन आदि निष्क्रिय वायु में दहन-क्रिया सम्भव होती तो ऐसे वायु के अन्दर फिर दीपक आदि क्यों बुझ जाते? यह तो बहुत ही सामान्य प्रयोग के आधार पर ज्ञात हो सकता है कि निष्क्रिय वायुओं में अग्नि बुझ जाती है। यहां यह तर्क देना कि क्लोरिन या फ्लोरिन में लोहा जलता है, भी संगत नहीं है। क्योंकि बल्ब में क्लोरिन, फ्लोरिन भी नहीं होते।

प्रश्न 2. ''यहां शायद किसी को शंका हो सकती है कि 'बल्ब के अन्दर वायु मौजूद हो और बिजली से वहां प्रकाश उत्पन्न होता है तो फिर बल्ब के टूट जाने के पश्चात् बिजली का प्रवाह विद्यमान होने पर भी बल्ब में प्रकाश क्यों नहीं होता?' परन्तु यह शंका उचित नहीं है। इसका कारण यह है कि बल्ब के अन्दर अग्नि प्रकट करने में जितने प्रमाण में वायु की आवश्यकता होती है उस प्रमाण से बहुत ज्यादा वायु अथवा बल्ब में प्रकाशमान टंगस्टन तार का विरोधी वायु, बल्ब के टूट जाने पर वहां एकत्रित होने से लाईट बंध हो जाती है। वायु जहां होता है, वहीं अग्नि प्रकट हो सकती है यह सिद्धान्त मान्य होते हुए भी जैसे चीमनीवाला जलता हुआ लालटेन, चीमनी टूट जाने पर बाहर से वेग से आते हुए ज्यादा वायु के कारण बुझ जाती है, इस प्रकार से हम उपर्युक्त बाबत समझ सकते हैं।

व्यक्ति भोजन-पानी के आधार पर जीवित रहता है। किन्तु ज्यादा प्रमाण में भोजन-पानी का उपयोग करने में आए तो वही भोजन उसकी मृत्यु का कारण भी बन सकता है। उसी प्रकार जहां वायु हो वहीं अग्निकाय उत्पन्न हो सकता है। यह बात सत्य है। किन्तु आवश्यकता से अधिक वायु का दबाव आने से अग्नि बुझ जाती है। फूंक मारने से दीया बुझ ही जाता है। तैल से जलते हुए दीये पर एक साथ ज्यादा तैल डालने पर वह बुझ ही जाता है। इसलिए कहा है 'अति सर्वत्र वर्जयेत्'। हालांकि यह बात जन-सामान्य समझ सके इस आशय से लौकिक दृष्टिकोण से बताई है। इस बाबत को वाचक वर्ग ध्यान में ले।

परन्तु इसी घटना को साइन्स की दृष्टि से परखना हो तो ऐसा कहा जा सकता है कि वायर में से इलेक्ट्रीसीटी प्रसार होते समय यदि बल्ब टूटा हुआ हो तो बाहर के प्रतिकूल वायु के सम्पर्क से बल्ब का फिलामेंट जल जाता है। इसीलिए टूटा हुआ बल्ब प्रकाश नहीं देता। बल्ब में टंगस्टन धातु से बना हुआ एक पतला वायर होता है। उसे अंग्रेजी में 'फिलामेंट' कहते हैं। स्वीच को 'ऑन' करते ही इलेक्ट्रीसीटी का फ्लो स्वीच से गुजरकर बल्ब में पहुंचता है। जब बल्ब में स्थित फिलामेंट में बिजली का प्रवाह पहुंचता है तब वह फिलामेंट गरम हो जाता है। यह गर्मी इतनी उग्र होती

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

है कि वहां प्रकाश उत्पन्न होता है। टंगस्टन नाम की धातु 3420 से. के तापमान पर पिघलती है तथा 5860 से. तापमान पर उबलती है (देखिए बंसीधर शुक्ल कृत-प्रसन्निका विक्रमकोश, पृष्ठ 57) प्रकाशमान बल्ब के फिलामेंट में 2760 से. तापमान होता है, जिसकी वजह से बल्ब में बिजली की गर्मी से यह वायर पिगलता नहीं है। किन्तु टूटे हुए बल्ब में बाहर के प्रतिकूल वायु का फिलामेंट के साथ संयोग और बिजली का वहां आगमन यह दोनों घटनाएं होने से फिलामेंट जल जाता है। इसीलिए टूटा हुआ बल्ब प्रकाशित नहीं होता।''[2]

उत्तर जैसे उपर्युक्त दलील में पहले सचित्त तेउकाय का अस्तित्व मान लिया और फिर उसे सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया, उसी प्रकार प्रस्तुत दलील में भी देखा जा सकता है।

कोई भी व्यक्ति इस प्रकार की दलील को कैसे स्वीकार कर सकता है? बल्ब का प्रकाशित होना पहले अग्नि है ही नहीं, तो फिर प्रमाण से बहुत ज्यादा वायु अथवा विरोधी वायु से उसका बुझ जाना कैसे संगत है? हम एक बार पुनः इलेक्ट्रीसीटी ऊर्जा के रूपान्तरण को समझें

1. बल्ब में टंगस्टन का पतला तार जलता नहीं है, इलेक्ट्रीक ऊर्जा प्रकाश एवं उष्मा में रूपान्तरित होती है। वहां कंबश्चन (दहन) है ही नहीं, क्योंकि वहां ऑक्सीजन नहीं है।
2. इलेक्ट्रीक हीटर जो खुले आकाश में भी चलता है, वहां तो ऑक्सीजन विद्यमान है। वहां बहुत वेग वाली वायु से हीटर क्यों नहीं बुझ जाता? वस्तुतः हीटर में तार का गर्म होना और उष्मा में बदलना इस क्रिया में ऑक्सीजन या वायु का कोई सम्बन्ध नहीं है।
3. बिजली-प्रवाह में जब प्रतिशोध (Resistance) होता है, तो पदार्थ में ताप उत्पन्न होता है यानी विद्युत्-ऊर्जा ताप-ऊर्जा में बदलने लगती है। बल्ब में अवरोध ज्यादा होता है। ताप की मात्रा अवरोध के समानुपाति है। छोटे तार की अपेक्षा लम्बा तार अधिक अवरोध पैदा करता है। बल्ब की अपेक्षा हीटर में तार लम्बा होता है, इसलिए हीटर में तापमान अधिक पैदा होता है। तांबे का तार बहुत कम अवरोध पैदा करता है, अतः वह बहुत कम गरम होता है जब बिजली का प्रवाह उससे गुजरता है। टंगस्टन की अवरोधकता तांबे की अपेक्षा अधिक है। उसके तार (Filament) में विद्युत् प्रवाह का परिवर्तन उष्मा-ऊर्जा और प्रकाश-ऊर्जा में आसानी से होता है। टंगस्टन का पिघलांक ऊंचा होने से वह सामान्यतः पिघलता नहीं है।[3]

4. जब किसी चालक (तार) का तापमान उसके ज्वलन-बिन्दु तक पहुंच जाए और उसे आसपास की हवा से रासायनिक क्रिया का अवसर मिल जाए तो वह जल सकता है। इस जलने की क्रिया में ताप व प्रकाश पैदा होता है। इस रासायनिक क्रिया से उस चालक पदार्थ का ऑक्साइड बनता है।
5. धातु में विद्युत्-धारा प्रवाहित होने से उस धातु में ताप की ऊर्जा पैदा होती है। यह ताप उसकी अवरोधक शक्ति पर निर्भर करता है। विद्युत्-प्रवाह से जो ताप पैदा होता है उससे हीटर में चालक (धातु) पदार्थ लाल गर्म हो सकता है या पिघलकर तरल रूप में बदल सकता है जैसा फ्यूज (Fuse) में होता है। बल्ब में फिलामेंट बिना पिघले गरम होने के बाद प्रकाश करता है।
6. इलेक्ट्रीक बल्ब* दो प्रकार के होते हैं
   (1) निर्वात (Vacuum)
   (2) निष्क्रिय गैस वाले

निर्वात में रखे हुए टंगस्टन फिलामेंट (तन्तु) में जब विद्युत्-प्रवाह बहता है, तब उसके अवरोध के कारण उसमें ताप और प्रकाश दोनों पैदा होते हैं। यह अग्नि की भांति जलने की क्रिया नहीं है। यहां ताप व प्रकाश के उद्गम का एक अन्य तीसरा कारण विद्युत्-प्रवाह है तथा उस सुचालक पदार्थ की अवरोधकता एवं उच्च तापक्रम (लगभग 300 डिग्री से.) पर भी बिना पिघले प्रकाश-किरणें पैदा करने की क्षमता है। जब पहला बल्ब थोमस आल्वा एडिसन ने बनाया था तो निर्वात (vacuum) में फिलामेंट रखा गया था। लेकिन टंगस्टन धीरे-धीरे वाष्पीकृत होकर दीवारों पर जमता गया और बल्ब भूरा होने लगा। इसको कम करने के लिए निष्क्रिय गैसों का प्रयोग किया गया। बाष्पीकरण से फिलामेंट पतला होकर खत्म हो जाता है।

चूंकि बल्ब में जलने की प्रक्रिया का ही अभाव है, बल्ब में वायु की आवश्यकता ही नहीं है। फिलामेंट जब किसी निमित्त से पिघल जाता है जिसे हम fuse होना कहते हैं, तब बल्ब स्वतः बुझ जाता है। फिलामेंट fuse होने के निमित्तों में वॉल्टेज बढ़ जाना भी एक निमित्त है। जैसे फूंक मारने पर मोमबत्ती बुझ जाती है, वैसे बल्ब तेज वायु से बुझ जाता है ऐसा निमित्त मानना युक्तिसंगत नहीं है।

प्रश्न 3. ''जब ट्यूबलाईट उड़ जाती है तब उसके अन्दर के भाग में साइड में कार्बन का जो कालापन सभी को दृष्टिगोचर होता है वह कहां से आया?

*इस संबंध में विस्तृत चर्चा पृष्ठ 51-57 पर की जा चुकी है।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

एब्सोल्युट वेक्युम हो तो ट्यूबलाईट में किसी भी प्रकार के वायु का प्रवेश हो ही नहीं सकता। विज्ञान के सिद्धान्त के अनुसार तो फोस्फरस का ऑक्सिडेशन होने से वहां उसका कार्बन में रूपान्तर हो जाता है। प्रस्तुत में ऑक्सिडेशन का मतलब है ऑक्सीजन के साथ संयुक्त होने से परमाणु में से अथवा परमाणु समूह में से इलेक्ट्रोन के निकल जाने से मूलभूत द्रव्य का नाश होने की प्रक्रिया। यदि ट्यूबलाईट में ऑक्सीजन इत्यादि वायु का सर्वथा अभाव हो तो ऑक्सिडेशन की प्रक्रिया शुरू ही नहीं हो सकती। तो फिर ट्यूबलाईट में फोस्फरस का कार्बन में रूपान्तर कैसे हो सकता है?

हां, दूसरी महत्त्व की बात यह है कि ट्यूब उड़ जाती है तभी ऑक्सीडेशन की प्रक्रिया का प्रारम्भ होता है, ऐसी बात नहीं है। परन्तु ट्यूब में जब-जब इलेक्ट्रीसीटी पसार होती है, ट्यूब चालू होती है तब-तब ऑक्सीडेशन की प्रक्रिया निरन्तर चालू ही रहती है। एक स्थिति ऐसी आ जाती है कि ट्यूबलाईट के ज्यादातर भाग का फोस्फरस ऑक्सिडेशन प्रोसेस से कार्बन के रूप में परिणत हो जाता है, तब ट्यूब बंध पड़ जाती है और उसके साइड में कार्बन के काले धब्बे दिखाई देने लगते हैं।''[4]

उत्तर हमने प्रथम भाग के प्रभाग 10* में ट्यूब-लाईट की प्रक्रिया की सम्पूर्ण व्याख्या प्रस्तुत की थी तथा उसमें स्पष्ट किया था कि मूलतः ट्यूब लाईट में कहीं पर भी जलने की क्रिया नहीं होती है। उसमें ट्यूब में भरी हुई कम दबाव पर मर्क्यूरी-वेपर (यानी वाष्प रूप में पारे) में डीस्चार्ज द्वारा आयनीकरण किया जाता है तथा उस समय अल्ट्रा-वायलेट विकिरण से स्फुरदीप्ति वाले पदार्थ प्रकाशित होने से ट्यूब का प्रकाश प्राप्त होता है। उसके साथ यह भी स्पष्ट किया था कि उसमें जो 'ब्लेकनींग' (काला धब्बा) होता है, वह कार्बन नहीं **अपितु इलेक्ट्रोड के धातु का 'स्पूटरिंग' यानी 'चिटकना' या क्षरण की प्रक्रिया का ही परिणाम है।** उसमें बाहर से वायु या ऑक्सीजन के प्रवेश का कहीं अवकाश ही नहीं है। इसे 'फोस्फरस का ऑक्सीडेशन बताना' नितान्त गलत है। न तो ऑक्सीडेशन होता है, न ही कार्बन की उत्पत्ति। इसलिए तेउकाय नहीं है। आकाशीय विद्युत् खुली हवा में तीव्र उष्णता, तीव्र प्रकाश, तीव्र वोल्टेज आदि के कारण अग्नि पैदा करती है, जबकि ट्यूब में ऑक्सीजन का अभाव है। इसलिए तेउकाय का अभाव है।

इलेक्ट्रोनिक्स संयंत्रों में अर्ध वाहक (Semi-conductors) का प्रयोग होता है।[5] डायोड आदि की सर्किट, बटन-सैल आदि में सिलीकोन आदि अधातु पदार्थ का उपयोग किया जाता है जिसमें बहुत कम वोल्टेज पर भी विद्युत्-प्रवाह सक्रिय बनता है। इसमें तापमान की वृद्धि भी नहीं जैसी होती है। प्रकाश का विकिरण भी बहुत

*पृष्ठ 58-61

साधारण होता है। ऑक्सीजन का अभाव होता है। इन सब आधारों पर इन प्रक्रियाओं में कहीं भी तेउकाय का प्रसंग नहीं बन सकता।

प्रश्न 4. क्या इलेक्ट्रीक स्पार्क सचित्त तेउकाय नहीं है? जब स्वीच ऑन या ऑफ की जाती है, तब छोटा-सा स्पार्क होता ही है।' इस चिनगारी में और अग्नि जलते समय (अंगारे आदि में से) निकलने वाली चिनगारी में क्या अन्तर है? यदि इलेक्ट्रीक स्पार्क सचित्त तेउकाय है, तो फिर साधु क्या स्वीच ऑन या ऑफ कर सकता है या करवा सकता है या करने का अनुमोदन कर सकता है?

उत्तर प्रथम भाग के पांचवें सेक्शन तथा छठे सेक्शन में हम विद्युत् चुम्बकीय तरंगों, गैसों में निरावेशीकरण आदि की चर्चा कर चुके हैं। उसके अन्तर्गत हर्ट्ज़ के प्रयोगों में इलेक्ट्रीक 'स्पार्क' को विद्युत् चुम्बकीय ऊर्जा के विकिरण के रूप में बताया गया है।[7] गैसों में विभिन्न प्रेसर की स्थिति में तथा उच्च वोल्टेज द्वारा होने वाले निरावेशीकरण के प्रभाव से उत्पन्न 'स्पार्क' या विद्युत्-चुम्बकीय ऊर्जा के विभिन्न परिणमनों की चर्चा भी हम कर चुके हैं।[8] इस चर्चा से यही निष्कर्ष निकलता है कि स्पार्क के रूप में उत्पन्न विद्युत्-धारा अपने आप में केवल विद्युत्-चुम्बकीय ऊर्जा है। इसकी उत्पत्ति में कहीं कंबश्चन की रासायनिक क्रिया नहीं है। अग्निकण के रूप में होने वाली चिनगारी जिसे मुर्मुर कहा गया है, जलते हुए यानी कंबश्चन की प्रक्रिया करते हुए ठोस कण हैं। इसी प्रकार ऊनी शाल, पोलीथीन (या प्लास्टिक की थैली) आदि में उत्पन्न चिनगारी भी स्टेटिक इलेक्ट्रीसीटी का स्पार्क के रूप में यानी विद्युत् चुम्बकीय ऊर्जा के रूप में विकिरण है, जो अग्निकण (मुर्मुर) से भिन्न है।

इलेक्ट्रीक स्पार्क स्वयं तो 'अग्नि' नहीं है, पर अनुकूल संयोग मिलने पर अग्नि पैदा कर सकता है। अनुकूल संयोग में तीनों अनिवार्य आवश्यकता की पूर्ति होना जरूरी है ज्वलनशील पदार्थ, ज्वलनबिन्दु तक का तापमान तथा ऑक्सीजन। तीनों में से किसी एक के अभाव में अग्नि या कंबश्चन की प्रक्रिया घटित नहीं हो सकती। इन तीन अनिवार्यता की पूर्ति कहां होती है, कहां नहीं इसे हम निम्नांकित उदाहरणों से स्पष्ट समझ सकते हैं

1. E.D.M. मशीन इलेक्ट्रीक डीस्चार्ज मशीन से धातु को इलेक्ट्रीक स्पार्क से कुतरकर आकार दिया जाता है जो 'dye' यानी सांचे के रूप में काम ली जाती है। इस मशीन में एक टंकी को केरोसीन से भरकर उसके नीचे के तल पर धातु रखी जाती है तथा इलेक्ट्रीक स्पार्किंग की क्रिया से धातु को यथेच्छ आकार दिया जाता है। इस सम्बन्ध में इंटरनेट से प्राप्त जानकारी इस प्रकार है[9]

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

EDM: Principles of Operation

ELECRICAL DISCHARGE MACHINING (EDM) is accomplished with a system comprising two major components: a machine tool and a power supply. The machine tool holds a shaped electrode which advances into the workpiece and produces a shaped cavity. The power supply produces a high frequency series of electrical spark discharges between the elecrtrode and the workpiece, which removes metal from the workpiece by thermal erosion or vaporization.

The basic components of an EDM system are illustrated to the right. The workpiece is mounted on the table of the machine tool and the electrode is attached to the ram of the machine. A DC servo unit or hydraulic cylinder moves the ram (and electrode) in a vertical motion and maintains proper position of the electrode in relation to the workpiece. The positioning is controlled automatically and with extreme accuracy by the servo system and power supply. During normal operation the electrode never touches the workpiece, but is separated by a small spark gap.

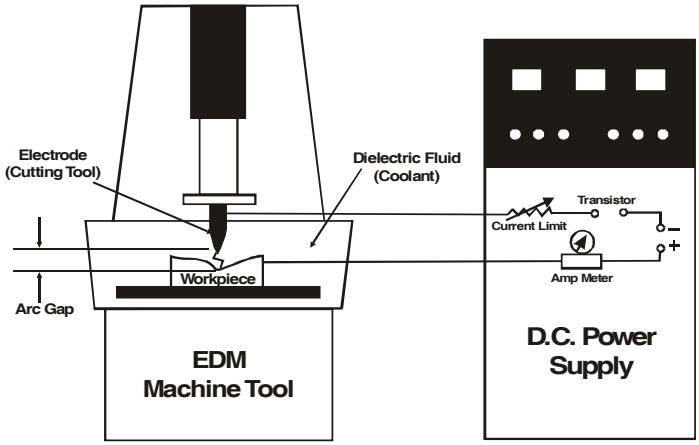

Basic EDM System

During operation, the ram moves the electrode toward the workpiece until the space between them is such that the voltage in the gap can ionize the dielectric fluid and allow an electrical discharge (spark) to pass from the electrode to the workpiece. These spark discharges are pulsed on and off at a high frequency cycle and can repeat 250,000 times

per second. The spark discharge (arc) always travels the shortest distance across the narrowest gap to the nearest or highest point on the workpiece. The amount of material removed from the workpiece with each pulse is directly proportional to the energy it contains.

Each discharge melts or vaporizes a small area of the workpiece surface. **This molten metal is then cooled in the dielectric fluid and solidifies into a small spherical particle (swarf) which is flushed away by pressure/motion of the dielectric.** The impact of each pulse is confined to a very localized area, the location of which is determined by the form and position of the electrode.

Both the workpiece and electrode are submerged in a dielectric fluid* which acts as an electrical insulator to help control the spark discharges. In EDM, the dielectric fluid also performs the function of a coolant medium and reduces the extremely high temperatures in the arc gap. More importantly, the dielectric fluid is pumped through the arc gap to flush away the eroded particles between the workpiece and the electrode. Proper flushing is critical to high metal removal rates and good machining conditions.

Because EDM erodes metal with electrical discharges instead of with chip machining cutting tools, the hardness of the workpiece does not determine whether or not a material can be machined by EDM. A relatively soft graphite or metallic electrode can easily machine hardened tool steels or tungsten carbide. This is one of the many attractive benefits of using the EDM process. Rather than machine a workpiece before heat treating, it can be EDMed afterward. This eliminates the risk of damage or distortion which could scrap an expensive workpiece during heat treating.

The basic principles of wire-cut EDM are essentially the same as diesinking EDM described above. The major difference is that instead of using an electrode with a complex shape, in wire EDM the electrode is a simple wire, typically .006" to .012' diameter, which follows a horizontal path through the workpiece. Instead of using dielectric oil as in die-sinking EDM, wire EDM uses deionized water.

DEVELOPMENT OF EDM IN THE MIST

This paper examines the machining properties of a new EDM process which takes place in a sprayed mixture of gas and liquid. It, namely EDM in the mist or mist EDM, does not require a tank for working

*Dielectric fliud is usually kerosene. (See next page).

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

fluid like in conventional EDM. The most distinctive feature of it is non-electrolytic machining even if electrically conductive water is used as a fluid. Therefore, water or water soluble cutting or grinding oil can be used for working fluid so it will become easier to combine EDM with traditional machine tools.

EDM BY POWDER SUSPENDED WORKING FLUID

This paper presents some effects for finishing electrical discharge machining which uses powder in working fluid. Appropriate powder use gives 0.8 μmRmax surface with the area of 25 cm2, and also shortens the finishing time extremely. It is verified in some experiments that powder suspension brings about stable EDM even under micro-electrical condition because of large gap distance and good dispersion of discharge current.

THE PROPER CHOICE OF HYDROCARBON DIELECTRIC FLUID FOR EDM APPLICATIONS, A COMPREHENSIVE COMPARISION

The commercially available large variety of dielectric fluids for EDM applications mades the choice rather difficult. Are there any advantages or disadvantages using one or another product? This paper describes a comparison test of 35 different hydrocarbon dielectric fluids in machining various metals using several different electrode materials.

***STUDY ON HIGH-QUALITY FINISHING BY EDM WITH NONFLAMMABLE DIELECTRIC FLUID**

The use of kerosene as dielectric fluid in EDM is very common. However, from the point of safety, kerosene has many problems since it can cause a fire. Some studies were reported on EDM with conflammable dielectic fluid. EDM with nonflammable dielectric fluid has an advantage over EDM with kerosene because it is free from fire and its rough-machining speed is faster. On the other hand, it has a drawback in that its finishing machining is unsatisfactory. In this report, the authors aim is to improve the efficiency of EDM with nonflammable dielectric fluid. The authors have found that the carbon which is made in the EDM process is responsible for the poor quality of the finished surface. Because it is electrified, the carbon adheres to the surface of the workpiece in the EDM process. The adhering carbon disturbs the machining stability, and degenerates the quality of the EDMed surface. In order to improve

the machining capacity, the authors developed a new machining circuit. With this machining circuit, the voltage between the electrode and the workpiece is kept about 0 V, and the electrified carbon does not adhere to the workpiece. The performance of finish-machining is greatly improved.

***INCREASING THE FUNCTIONALITY OF MACHINED SURFACES BY EDM WITH A SILICON POWDER ADDITIVE**

In EDM a very smooth finished surface can be obtained by adding a fine electrically conductive powder such as silicon to the machining fluid. Since this process produces an extermely corrosion resistant and microcrack free uniform surface, it is thought to be very effective in the finishing of dies for plastic molding. Increased effectiveness against corrosion is particularly needed for molds in which corrosive gases develop from plastic compounds.

In this paper, in order to investigate the effective application of EDMing using a powder additive in the plastic mold finishing process, surfaces by Powder Additive EDM were compared to those finished by conventional polishing.

***EQUIVALENT MODEL OF JUMP FLUSHING EDM (Ist Report) Proposal of a Model Represented by Electric Circuit**

In diesinking EDM, the jump flushing is generally known to be useful to clean up the working gap. However, it is very difficult to adjust the jump parameters efficiently such as an amplitude and an execution timing of the jump motion with progress of machining. Because, in this process, optimal values of such parameters change widely with progress of machining and to adjust them an extensive expert knowledge about the jump control is required. Therefore, if a numerical equivalent model of the jump flushing EDM can be framed, it will be very useful for adaptive adjustment of the jump parameters. This report describes a newly proposed equivalent model of the jump flushing EDM represented by an electrical way. Increasing process of the machining products in the working gap is converted to the charging process of a condenser in a DC electric circuit. Efficient jump timing is able to be computed from the rising time of the terminal voltage of the condenser to a threshold value which corresponds to critical density of the machining products for the safety sparking. Results of computer simulations based on the proposed model show that

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

the machining characteristics of the jump flushing EDM could be reproduced sufficiently except for the very early stage of machining. Besides, it was found that approximate optimal values of the jump parameters could be computed easily.

***EQUIVALENT MODEL OF JUMP-FLUSHING EDM (2nd Report) Influence of Duty Factor of Working Pulse**

This study aims to represent the characteristics of the jump-flushing EDM by a simple mathematical model in order to realize suitable selections of jump parameters through computer simulations. In the previous report, we proposed a basic model from a consideration of similarity between the increasing process of machining products in the working gap and the charging process of a capacitance in the DC electrical circuit. As a result, that model showed validities to represent a change in machining characteristics and jump parameters with progression of machining. In the present report, we propose an expanded model in which influences of duty factor of working pulses are taken into consideration. Computer simulations based on the new model showed that suitable jump parameters and rest time of working pulse are able to be estimated. Further expansion of the model will be possible by considering influences of peak current or pulse duration in the similar way of the duty factor.

***STUDY ON FLUSHING FOR EDM (1st Report), proposal of 2D Small Vibration Method and Scan-Flushing Method**

In EDM diesinking, an excess of debris is often produced during machining in the gap between the electrodes, reducing the removal rate and damaging the machined surface. In order to remove this debris, various methods such as fluid injection, jet flushing, jump motion, planetary motion and self-flushing have been used or proposed. With there methods, problems such as navel removal and idle time exist. In this article, 2D small vibration method and scan-flushing method are proposed as new flushing methods to solve these problems. By using these methods, better machining efficiency and better surface accuracy can be obtaind.

***STUDY ON FLUSHING FOR EDM (2nd Report), Analysis and Simulation of the Effect of Jet Flushing for EDM**

In the previous report, we developed a dynamic jet flushing method which is called "scan flushing". Experimental results clarified the

effectiveness of this method on the precision of machining over conventional jet flushing method. Although good resluts of the scan-flushing were obtained, several parameters may influence the process. To help to optimize these parameters, a computational method to simulate the process is proposed in this paper. It was confirmed that this simulation algorithm can represent the distribution phenomenon of debris with good correlation with the unevenness of the workpiece surface produced.

***SURFACE GENERATION MECHANISM IN ELECTRICAL DISCHARGE MACHINING WITH SILICONE POWDER MIXED FLUID**

The surface generated by electrical discharge machining (EDM) appears to be generally mat finish. **However, the machined surface in EDM with silicon powder mixed fluid becomes glossier and has a smaller surface roughness than that in conventional EDM with kerosene type fluid, which leads to the omission of hand finish lapping of metal molds.** The quality of machined surface significantly depends on the kind of workpiece material, but the surface generation mechanism has not yet been made sufficiently clear. In this study, the effect of silicon powder mixing on the surface generation mechanism is experimentally investigated, analyzing the shape of crater generated by a single pulse discharge, the surface roughness, the machined surface and so on. **The main coclusions obtained are as follows :**

1. **The gap distance in EDM with silicon powder mixed fluid is larger than that with kerosene type fluid, because of the lower resistivity of the former and the influence of silicon powder arrangement in the gap.**
2. **EDM with silicon powder mixed fluid leads to smaller undulation of a crater, because of the smaller impact force acting on the workpiece due to evaporation and expansion of machining fluid.**
3. **The more the precipitated carbides in the workpiece are, larger the surface roughness is, since the carbides come off because of crack propagation due to the frequent heat impact during EDM.**
4. **EDM with silicon powder mixed fluid results in the stable machining without short circuit between the electrode and the workpiece.**

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

उक्त जानकारी के आधार पर स्पष्ट होता है कि केरोसीन तेल में तीव्र इलेक्ट्रीक स्पार्क (discharge) पैदा होने पर भी आग नहीं लगती क्योंकि केरोसीन के भीतर ऑक्सीजन उपलब्ध नहीं होता। यही स्पार्क यदि केरोसीन की सतह पर होता तो भयंकर आग पैदा कर सकता था। **इससे यह सिद्ध होता है कि स्पार्क स्वयं अग्नि नहीं है।** जैसे ऊपर बताया गया है, EDM मशीन में केरोसीन के स्थान पर 'अज्वलनशील तरल पदार्थ' भी coolant के रूप में रखे जाते हैं जिससे खतरा पैदा न हो। यह सिद्ध करता है कि **अज्वलनशील** पदार्थ कितने ही उच्च वोल्टेज के बावजूद आग नहीं पकड़ते।

2. दूसरा उदाहरण है अत्यधिक उच्च वोल्टेज के विद्युत्-प्रवाह में 'आयल सर्किट ब्रेकर' का उपयोग। इस व्यवस्था द्वारा जब किसी फाल्ट के कारण वोल्टेज या करंट में अचानक वृद्धि होने पर सर्किट तोड़ दी जाती है। इस व्यवस्था में भी तेल के भीतर स्वीच रहने से ऑक्सीजन के अभाव में स्पार्क का डीस्चार्ज केवल 'फ्लेश' पैदा करेगा, पर अग्नि नहीं। 'आयल सर्किट ब्रेकर' की जानकारी टिप्पण में दी गई है।[10]

3. तीसरा उदाहरण है ऊनी शाल या प्लास्टिक से निकलने वाले इलेक्ट्रीक स्पार्क। यह स्पार्क यद्यपि खुली हवा में ऑक्सीजन के साथ सम्पर्क में होता है तथा ज्वलनशील पदार्थ ऊन, प्लास्टिक आदि भी विद्यमान हैं, पर पर्याप्त तापमान के अभाव के कारण 'आग' नहीं लगती, अन्यथा ऊनी शाल या कम्बल अथवा प्लास्टिक की थैली आदि जल जाते। 'थ्रेसोल्ड' तापमान के अभाव में यानी ज्वलन-बिन्दु से कम तापमान में जो विद्युत्-चुम्बकीय ऊर्जा या विकिरण होता है, वह 'कंबश्चन' की प्रक्रिया करने में सक्षम नहीं है। इसी आधार पर जैन साधु के लिए ऊनी शाल का प्रयोग हजारों वर्षों से मान्य है। **यदि इन चिनगारियों को भी 'मुर्मुर' की कोटि में रखी जाए, तो फिर ऊनी शाल का प्रयोग जैन साधु कैसे कर सकते हैं?**

अब हम मूल प्रश्न पर आते हैं

विद्युत्-पथ (Circuit) को बाधित करने के लिए स्वीच का प्रयोग किया जाता है। ज्यों ही स्वीच ऑन होता है, खाली स्थान में डीस्चार्ज गुजरता है, जो क्षणिक स्पार्क के रूप में ही होता है। यहां खाली स्थान में हवा (ऑक्सीजन) भी विद्यमान है। पर डीस्चार्ज की तीव्रता का आधार वोल्टेज पर है। अति तीव्र वोल्टेज हो तब तो स्पार्क का तापमान भी अत्यधिक हो सकता है जो थ्रेसोल्ड तापमान से अधिक होने से तेउकाय की उत्पत्ति का निमित्त बन सकता है। यदि तापमान 'Threshold' (न्यूनतम सीमा) से नीचे हो, तो स्पार्क हवा के सम्पर्क में भी अग्नि यानी कंबश्चन की क्रिया नहीं कर सकता है। इसीलिए जहां उच्च वोल्टेज का विद्युत्-प्रवाह होता है, वहां आग की सम्भावना बनी रहती है, जिसे टालने के लिए स्पार्क को किसी भी

coolant द्वारा मंदीकृत किया जाता है तथा ऑक्सीजन के सम्पर्क में न आए ऐसी सावधानी रखी जाती है। 'Fuse' की व्यवस्था भी इसीलिए की जाती है कि अधिक वोल्टेज होने पर fuse का तार पिगल जाता है और सर्किट टूट जाती है, जिससे आग नहीं लग सकती। सामान्य वोल्टेज पर स्वीच में होने वाले स्पार्क का हवा से सम्पर्क होने पर भी मंद ऊर्जा होने के कारण अग्नि की क्रिया नहीं होती। अकस्मात् किसी कारण से वोल्टेज में अत्यधिक वृद्धि हो जाए तथा अन्य सावधानी न हो, तो कभी-कभार स्वीच का स्पार्क भी खतरा बन जाता है। यह केवल आपवादिक है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि सामान्यतः स्वीच ऑन करने में होने वाले स्पार्क में अग्नि की उत्पत्ति नहीं है। यह वैसा ही है जैसा ऊनी कम्बल, पोलीथीन आदि के प्रयोग में स्पार्क होते हैं, पर आग नहीं लगती।

प्रश्न 5. क्या माइक-लाईट-फोन-फेक्स-टेलेक्स इत्यादि इलेक्ट्रीसीटी आधारित साधनों का उपयोग साधु कर सकते हैं?

उत्तर प्रथम तो यह समझना है कि इन सब साधनों का प्रयोग यदि गृहस्थ अपनी सुविधा के लिए करते हैं, तो उसमें साधु दोष के भागी कैसे बनेंगे?

दूसरी बात है इलेक्ट्रीसीटी के उपयोग वाले साधनों में क्या तेउकायिक जीव की विराधना होती है? जैसे पूर्व चर्चा से स्पष्ट हो चुका है कि इलेक्ट्रीसीटी स्वयं निर्जीव है। उस आधार पर इन साधनों के प्रयोग में तेउकायिक जीव की विराधना का प्रसंग कैसे आएगा? इस सम्बन्ध में भी पूर्व प्रश्नों में स्पष्टीकरण हो चुका है।

अब बात रहती है व्यवहार की। व्यवहार की दृष्टि से यही उचित है कि साधु न स्वयं इनका प्रयोग करें, न औरों से करवाएं, न अनुमोदन करें। लाईट आदि का गृहस्थों द्वारा अपने उपयोग के लिए जो प्रयोग होता है, तो उससे प्राप्त सहज प्रकाश आदि का उपयोग साधु द्वारा किए जाने पर कोई दोष नहीं लगता। (इसकी चर्चा हम कर चुके हैं।)

प्रश्न 6. ''बल्ब वगैरह में स्थूल रूप से ही वेक्युम किया जाता है। इसलिए तथाविध पतली हवा स्वरूप वायुकाय का वहां अस्तित्व मानने में कोई विरोध नहीं है।

''यदि बल्ब में 100 प्रतिशत शून्यावकाश करने में आए तो फिलामेण्ट में उत्पन्न होने वाला प्रकाश और उष्णता बल्ब की कांच की दीवाल तक पहुंच ही नहीं पाएंगे। क्योंकि फिलामेण्ट में से बल्ब की दीवाल तक पहुंचने के लिए कोई वाहक द्रव्य ही नहीं है। वाहक द्रव्य के बिना प्रकाश, उष्णता आदि आगे बढ़ ही नहीं सकते इस बात को तो विज्ञान भी मानता है। बल्ब में कुछ न कुछ अंश में वायु विद्यमान हो तभी वायु-द्रव्य वहां वाहक का काम करके फिलामेण्ट की उष्णता और

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

प्रकाश को बल्ब की कांच की दीवाल तक पहुंचाने में सहायता कर सकता है।

''वास्तव में जिनागम के सिद्धान्तों को साइन्स की दृष्टि से विचारना हो तो उसके पूर्व साइन्स का व्यवस्थित अध्ययन कर लेना चाहिए, जिससे जिनागम एवं साइन्स दोनों में से किसी को भी अन्याय न हो। ऐसा हो तभी कुछ अंश तक प्रामाणिकता रखी है ऐसा कहा जा सकता है।''[11]

इस प्रश्न का तात्पर्य है क्या प्रकाश या उष्मा को प्रसारित होने के लिए माध्यम की अपेक्षा है? बल्ब आदि में ऐसा माध्यम न हो तो, प्रकाश प्रसारित कैसे होगा?

उत्तर वैज्ञानिकों के अनुसार प्रकाश या उष्मा-तरंगों को प्रसारित होने के लिए किसी भौतिक माध्यम की अपेक्षा नहीं है। ये तरंगें इलेक्ट्रोमेगनेटीक हैं, जो बिना माध्यम प्रसारित हो सकती हैं। वैज्ञानिक अवधारणाओं का अपने आग्रह को सिद्ध करने के लिए तोड़-मरोड़कर प्रस्तुत करने से वैज्ञानिक दृष्टि वाले व्यक्ति पर तो उल्टा प्रभाव ही पड़ेगा। जब यह विज्ञान का सर्वमान्य तथ्य है कि प्रकाश-तरंग, उष्मा-तरंग आदि विद्युत्-चुम्बकीय तरंगें हैं जो शून्य में भी प्रसारित होती हैं। इसी आधार पर आईन्स्टीन ने ईथर नामक काल्पनिक माध्यम को अस्वीकार किया था। ध्वनि की तरंगें बिना माध्यम नहीं चलती, इसीलिए वैक्यूम में वह अवरुद्ध हो जाती हैं।

प्रश्न 7. ''जैनागम अनुसार भी प्रकाशमान बल्ब में पुद्गल-द्रव्य का अस्तित्व सिद्ध होता ही है। इसलिए जैनागम अनुसार भी बल्ब में एब्सोल्युट वेक्युम का स्वीकार नहीं किया जा सकता। स्वीच ऑन करने से पूर्व बल्ब में प्रकाश नहीं था। स्वीच ऑन करने के बाद बल्ब में प्रकाश उत्पन्न होता हुआ दिखाई देता है। इसलिए बल्ब में पीछे से इलेक्ट्रोन आदि पुद्गल-द्रव्य का प्रवेश तो सिद्ध होता ही है। इस प्रकार जिस वायर के माध्यम से बल्ब में इलेक्ट्रीसीटी प्रवेश कर सकती है, उसी मार्ग से अथवा अन्य मार्ग से वहां तथाविध वायु भी प्रविष्ट हो सकता है। इतना तो निश्चित ही है।''[12]

''इंटरनेट के माध्यम से निम्नलिखित जानकारी प्राप्त हुई है ''लाईट-बल्ब के अन्दर से **अधिकतर हवा** बाहर निकाल दी जाती है। यदि ऐसा नहीं किया जाए तो वह तार वास्तविक रूप से तुरन्त जल जाएगा। जब कोई बिजली का ग्लोब उड़ जाता है तब उसका कारण यह है कि टंगस्टन का तार धीरे-धीरे वाष्प में रूपान्तरित हो जाता है।''[13]

''यहां हम देख सकते हैं कि 'अधिकतर हवा' ऐसा उल्लेख करने में आया है। **इससे निष्कर्ष यह निकलता है कि बल्ब में कुछ अंश में हवा होती ही है।** ऑक्सीजन

आदि वायु भी वहां कुछ अंश में विद्यमान होता ही है। अन्यथा ऑक्सीडेशन की प्रक्रिया पर आधारित फिलामेंट का राख में रूपान्तर = कार्बन रूप में परिवर्तन बल्ब में सम्भव ही नहीं है। ऑक्सीजन के अभाव में ऑक्सीडेशन किस प्रकार से सम्भव हो सकता है? ऑक्सीजन के साथ संयोगीकरण होने से परमाणु में से अथवा परमाणु समूह में से इलेक्ट्रोन को दूर करने से मूलभूत वस्तु का नाश होने की प्रक्रिया को विज्ञान की परिभाषा के अनुसार इसे ऑक्सीडेशन कहते हैं।

''इसका दूसरा नाम 'डी-इलेक्ट्रोनेशन' है। यद्यपि **विज्ञानकोशरसायन विज्ञान** (भाग-5/पृष्ठ 227-230) में बताए अनुसार क्लोरिन, फ्लोरिन, ओज़ोन वायु की हाजरी में भी ऑक्सीडेशन हो सकता है। परन्तु बल्ब में तो क्लोरिन वगैरह वायु नहीं होते हैं। इसलिए वहां पर होने वाली ऑक्सीडेशन की प्रक्रिया ऑक्सीजन आधारित माननी पड़ती है। अथवा ऑक्सीडेशन के लिए आवश्यक किसी भी प्रकार के वायु का वहां पर अस्तित्व तो मानना ही पड़ेगा। तथाविध वायु की गैरहाज़री में तो ऑक्सीडेशन सम्भव ही नहीं है। इसलिए विज्ञान के सिद्धान्त के अनुसार भी बल्ब में वायु का अस्तित्व सिद्ध होता ही है।

''हालांकि वर्तमान समय में साइंटिस्ट नाइट्रोजन और आर्गन वायु को बल्ब में रखते ही हैं। इंटरनेट से यह जानकारी निम्न शब्दों में है

''टंगस्टन का तरल द्रव्य में रूपान्तर होकर गैस स्वरूप में वाष्पी भवन (evaporation) घटाने के लिए अथवा टंगस्टन का सीधा गैस स्वरूप में रूपान्तर (Sublimation) रोकने के लिए पिछले वर्षों में ग्लोब में निष्क्रिय वायु जैसे कि नाइट्रोजन और आर्गन मिलाने में आए।''[14]

''आवर्त कोष्टक* के शून्य समूह के हिलियम, नियोन, आर्गन, क्रिप्टोन, झेनोन, रेडोन, नाइट्रोजन वगैरह वायु को उमदा वायु (Inert gases) कहे जाते हैं। ये उमदा वायु इलेक्ट्रोन गुमाने का अथवा प्राप्त करने का अथवा इलेक्ट्रोन की भागीदारी करने की कोई भी वृत्ति नहीं रखते हैं। [इस प्रकार की वायु स्वयं के अलावा दूसरे किसी भी मूल तत्त्व के परमाणु के साथ रासायनिक क्रिया नहीं करती। क्योंकि उसकी सभी कक्षाएं और उपकक्षाएं इलेक्ट्रोन से भरी हुई होती हैं। इस प्रकार से वे सभी रासायनिक रूप से तटस्थ हैं। इस प्रकार से दूसरे किसी मूल तत्त्वों का संसर्ग नहीं करने से वे उत्कृष्ट (=noble) वायु कहे जाते हैं (विज्ञानकोश-भौतिक विज्ञान भाग 7, पृष्ठ 64, लेखक P.A.P. में से साभार उद्धृत)] इसलिए इन वायुओं को निष्क्रिय वायु के तौर पर भी पहचाने जाते हैं। (डॉ. सी. बी. शाह, **विज्ञानकोश**, भाग-5, पृष्ठ 147) इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए **विज्ञानकोश रसायणविज्ञान** पुस्तक में

*परिशिष्ट-2 में दिया गया है।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

डॉ. एम. एम. देसाइ ने बताया है कि 'निष्क्रिय वायु स्थाई होते हैं' (गुजरात युनिवर्सिटी, अहमदाबाद से प्रकाशित भाग 5 पृष्ठ 49)

''इसलिए लम्बे समय तक बल्ब को प्रकाशित करने में नाइट्रोजन इत्यादि वायु सहायक होते हैं। नियोन भी निष्क्रिय वायु होने से विद्युतदीया, नियोन ट्यूब, नीलदिप्त प्रकाशनलीओं की रचना, स्पार्क चेम्बर वगैरह में भरने के काम में आता है। (देखिए **विज्ञानकोश** भाग 5/पृष्ठ 413) हेलोजन लेम्प में हेलोजन वायु भरते हैं। नियोजन ट्यूब, सोडीयम वेपर लेम्प, मर्क्युरी लेम्प वगैरह में नियोन, सोडीयम वेपर, मर्क्युरी वेपर वगैरह वायु भरने में आते हैं। यह बात भी प्रसिद्ध है।

''**गुजरात समाचार** ता. 26.6.02 बुधवार की पूर्ति में 'इलेक्ट्रीक लाईट कैसे काम करती है?' इस हेडिंग वाले लेख में भी बताया गया है कि ''क्या आप जानते हो कि बल्ब में वायु भी होता है? हां, बल्ब में वायु भी होता है। जिसका नाम है आर्गन। (ई.स. 1920 तक आर्गन वायु का उपयोग **उद्दीप्त दीया** (incandescent lamp) भरने में होता था। आर्क वेल्डिंग में अनिच्छनीय ऑक्सीडेशन रोकने के लिए प्रतिदीप्त दीया (Flourescent Lamp), इलेक्ट्रोनिक नलियां वगैरह भरने के लिए उसका उपयोग होता है। (**विज्ञानकोश-रसायण विज्ञान** भाग-5/पृष्ठ 55 **कु.सी.वी. व्यास कृत** 'आर्गन' प्रकरण में से साभार उद्धृत)। यह वायु टंगस्टन के साथ जुड़ नहीं सकता। इसीलिए उसे बल्ब में भरा जाता है।''

''**लोकप्रकाश ग्रन्थ** के पांचवें सर्ग में पूज्य उपाध्याय **श्री विनयविजयजी महाराज** तथा **पंचसंग्रह की व्याख्या** में **श्रीमलयगिरिसूरिजी** ने तो स्पष्ट रूप से कहा है कि

''लोकस्य हि यत् किमपि सुषिरं तत्र
सर्वत्र अपि पर्याप्तबादरवायवः प्रसर्पन्ति।
यत् पुनः अतिनिबिडनिचिताऽवयवतया
सुषिरहीनं कनकगिरिमध्यादि तत्र न ॥'' (पंचसं. वृत्ति-द्वार-2, गाथा 25)

अर्थात् जहां पोलापन होता है वहां बादर पर्याप्त वायुकाय अवश्य होता है। मेरुपर्वत के पोलाण-शून्य और अत्यन्त निबिड ऐसे मध्य भाग में वायुकाय नहीं होता है। इसके अलावा समग्र विश्व में जहां जहां पोलापन है वहां अवश्य बादर पर्याप्त वायुकाय अथवा वायु द्रव्य का अस्तित्व शास्त्रसिद्ध है। **जीवनसमासव्याख्या** में **मलधारी श्री हेमचन्द्रसूरिजी** महाराज ने भी यही बात कही है। लोकस्य हि यावत् किमपि शुषिरं तावति सर्वस्मिन्नपि वायवः सञ्चरन्त्येव। यत्पुनः अशुषिरं घनं कनकगिरिशिलामध्यभागादिकं तत्रैव ते न प्रसर्पन्ति॥ (जीवसमास, गा. 180 वृत्ति)

पन्नवणासूत्र व्याख्या में भी आचार्यश्री मलयगिरिसूरिजी महाराजा ने स्पष्ट

बताया है कि 'यत्र सुषिरं तत्र वायुः' (पद-2, सूत्र 40/पृष्ठ 78) अर्थात् जहां पोलापन होता है वहां वायु होता है। बल्ब अन्दर से एकदम ठोस, धन नहीं होता। इसलिए बल्ब के अन्दर वायु का अस्तित्व सिद्ध होता है। इसलिए बादर वायु वाले अथवा निर्जीव वायु वाले बल्ब वगैरह में अग्निकाय को उत्पन्न होने में कोई भी दिक्कत बाधा आगम की दृष्टि से नहीं आती है।

इसी प्रकार बल्ब में सम्पूर्ण शून्यावकाश तो विज्ञान अथवा जैनागम दोनों से किसी एक को भी मान्य नहीं है। तब फिर 'बल्ब में शून्यावकाश होने से वायु नहीं है और वायु नहीं होने से अग्नि उत्पन्न नहीं हो सकती' ऐसा कैसे कहा जा सकता है? स्वीच ऑन करने के बाद बल्ब में इलेक्ट्रीसीटी का प्रवेश तथा प्रकाश की उत्पत्ति साइन्स को भी मान्य है और यह बात अनुभव सिद्ध भी है। तब फिर तुल्य युक्ति से बल्ब में आवश्यक वायु का प्रवेश मानने में क्या एतराज़ हो सकता है? तथा विद्युत् प्रकाश को सजीव मानने में आगम-विरोध भी किस प्रकार से आ सकता है? क्योंकि उसके लक्षण वहां देखने को मिलते ही हैं। अत्यन्त तपे हुए लोहे के गोले के मध्य भाग में वायु का अस्तित्व शास्त्रमान्य ही है।''[15]

ऊहा बल्ब के विषय में हमने विस्तार से पूर्व भाग के नवें प्रभाग में चर्चा की है। उसी सन्दर्भ में प्रस्तुत प्रश्न को समझना होगा

1. जैसे प्रश्न में ही स्पष्ट लिखा है ''यदि ऐसा नहीं किया जाए तो वह तार वास्तविक रूप से तुरन्त जल जाएगा।'' इससे स्पष्ट होता है कि ऑक्सीजन नामक वायु को बल्ब से हटाना जरूरी है। एब्सोल्युट वेक्यूम भले न हो, पर ऑक्सीजन को तो बल्ब में से हटाए बिना तार का कंबश्चन होने की संभावना रहती है जिसे 'ऑक्सीडेशन' कहा जाता है। (यहां ऑक्सीडेशन का यही अर्थ है, डी-इलेक्ट्रोशेन का तात्पर्य नहीं है।) इसलिए यह मानना है कि ''थोड़ा ऑक्सीजन अन्दर रह जाता है या प्रवेश कर लेता है'' बिलकुल गलत है। बल्ब बनाने वाली कम्पनी यह सुनिश्चित करके ही बल्ब का मेनूफेक्चर करती है कि उसमें ऑक्सीजन का अंश मात्र भी न रहे।

2. निष्क्रिय वायु भरे हुए बल्ब में शून्य (निर्वात) नहीं है, पर वायु की निष्क्रियता के कारण अग्नि पैदा हो नहीं सकती।

3. मूल प्रश्न यह नहीं है कि बल्ब में एब्सोल्युट वेक्यूम है या नहीं? मूल प्रश्न यही है कि जो फिलामेंट प्रकाश देता है, वह क्या अग्नि के रूप में प्रकाश देता है? क्या वहां ऑक्सीजन है?

उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट हो रहा है कि प्रश्नकर्ता ने स्वयं यह तो स्वीकार कर लिया है कि निष्क्रिय वायु में अग्नि की क्रिया नहीं हो सकती, फिर भी अपनी पूर्व

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

धारणा को ही मानते हुए किसी भी तरह उसमें 'ऑक्सीजन' का प्रवेश सिद्ध करना चाहते हैं, जो न वैज्ञानिक दृष्टि से सम्भव है, न ही जैन दृष्टि से। निष्कर्षतः कहा जा सकता है बल्ब में पूर्ण शून्यावकाश सम्भव नहीं है। इसलिए उसमें विद्यमान ऑक्सीजन ऑक्सीडेशन द्वारा अग्नि उत्पन्न कर सकता है यह कहना गलत है। वेक्यूम का अर्थ निर्वात है, पदार्थ-शून्यता नहीं। यद्यपि पूर्ण शून्यावकाश करना सम्भव नहीं है, फिर भी यह कहना कि उसमें अवशिष्ट रूप में विद्यमान ऑक्सीजन बल्ब के अन्दर जलाने की क्रिया के लिए उत्तरदायी है, गलत होगा। सबसे पहले तो यह स्वीकार करना होगा कि बल्ब हमेशा शून्यावकाश (निर्वात) हो ही, यह जरूरी नहीं। पहले भी बताया जा चुका है कि नाइट्रोजन, आर्गोन आदि निष्क्रिय वायु को बल्ब में इसलिए डाला जाता है कि ऑक्सीजन पूर्ण मात्रा में समाप्त हो जाए और ऑक्सीडेशन न हो। इस प्रकार यहां निर्वात करने की अपेक्षा ही नहीं है। निष्क्रिय वायु में बल्ब अच्छी तरह प्रकाशित होता है।

टंगस्टन का बाष्पीकरण उष्मा से पिघलने के कारण होता है, न कि उसके जलने के कारण।

जहां बल्ब में निर्वात (vaccum) नहीं किया जाता, वहां निष्क्रिय वायु भरी जाती है, जिससे जलने की क्रिया न हो। फिर भी यह मानना कि वहां जैसे-तैसे ऑक्सीजन घुस जाती है, किसी को कैसे मान्य होगा?

शास्त्रों में 'सुषिर' में वायु का प्रवेश लिखा है परन्तु जहां पहले से वायु हो वहां दूसरी वायु कैसे घुसेगी? जितने भी गैस-फील्ड बल्ब हैं, उसमें बाहर से ऑक्सीजन का प्रवेश होने का कोई अवकाश ही नहीं है। भीतर वाली गैसें निष्क्रिय हैं। इसीलिए फिलामेंट का बाष्पीकरण रुकता है तथा फिलामेंट यथावत् सुरक्षित रहता है।

शून्यावकाश की जैन अवधारणा विज्ञान की अवधारणा से भिन्न है। वस्तुतः समूचे लोक में जीव और पुद्गल ठूंस-ठूंसकर भरे हुए हैं। किन्तु ये सारे व्यवहार की प्रक्रियाओं को बाधित या प्रभावित नहीं करते। विज्ञान के अनुसार निर्वातीकरण होने से जो स्थान हवा-रहित हो जाता है, वह निर्वात कहलाता है। हवा (Air) में ऑक्सीजन की विद्यमानता स्वाभाविकतया होती है। इसलिए निर्वात स्थान में ऑक्सीजन भी नहीं रहता। यदि बहुत थोड़ी मात्रा में रह भी जाता है, उसे अन्य उपायों से निरस्त कर दिया जाता है।

प्रश्न 8. ''**जोसेफ प्रिस्टली** (Joseph Pristly) नाम के वैज्ञानिक ने 1774 में ऑक्सीजन की शोध की। श्वोसोच्छ्वास तथा दहन क्रिया के लिए ऑक्सीजन अनिवार्य है। ऐसी विज्ञान की पुरानी मान्यता को याद करके कितने ही विद्वान कहते हैं कि 'बल्ब में ऑक्सीजन नहीं होने से वह कैसे प्रकाशित हो सकता है? किन्तु यह

तर्क भी बराबर नहीं है। क्योंकि प्राचीन विज्ञान दहन-क्रिया में ऑक्सीजन को अनिवार्य मानता है, बल्ब में होने वाले प्रकाश-गरमी वर्गरह में नहीं।

हां, आधुनिक साइन्स के सिद्धान्त के अनुसार प्रस्तुत में एक बात याद रखने जैसी है कि 'ऑक्सीजन के बिना आग नहीं लग सकती, दहन क्रिया नहीं हो सकती' ऐसा कोई नियम नहीं है। ऑक्सीजन नहीं होने पर भी कलोरिन वायु में हाईड्रोजन जलता है।

'Info Please Encyclopedia' में बताया गया है कि "Combustion need not involve oxygen; e.g., hydrogen burns in chlorine to form hydrogen chloride with the liberation of heat and light...'

अर्थ 'जलने की क्रिया में ऑक्सीजन का होना आवश्यक नहीं है। उदाहरण के तौर पर हाइड्रोजन वायु क्लोरीन में जलता है। उससे हाइड्रोजन क्लोराइड HCI तैयार होता है। उस समय गरमी तथा प्रकाश उत्पन्न होते हैं'।

गुजरात युनिवर्सिटी अहमदाबाद से प्रकाशित **विज्ञानकोश रसायण विज्ञान,** भाग 5 में **डॉ. (श्रीमती) एस. एम. देसाई** (M.Sc., Ph.D.) बताते हैं कि

''ऑक्सीजन से भी क्लोरीन में कार्बन ज्यादा तेज जलता है।

$C + 2F_2 \rightarrow CF_4$

हाइड्रोजन फ्लोरिन और क्लोरिन में जलता है।

$H_2 + F_2 \rightarrow 2HF$

$H_2 + CI_2 \rightarrow 2HCl$

लोहा फ्लोरिन में जलता है और उसको गर्म करने से सरलता से क्लोरिन तथा सल्फर के साथ में मिलता है।

$2Fe + 3F_2 \rightarrow 2FeF_3$

$2Fe + 3Cl_2 \rightarrow 2FeCl_3$

$Fe + S \rightarrow FeS$" (भाग-5/पृष्ठ 227)

इस तरह ऑक्सीजन की अनुपस्थिति में सोडियम भी क्लोरिन वायु में जलकर सोडियम क्लोराइड बनाता है।

$2Na + Cl_2 \rightarrow 2Na+Cl–$

इस प्रकार से हम देख सकते हैं कि ऑक्सीजन की गैरहाजरी में भी जलने की, प्रकाशित होने की, आग लगने की, गरमी उत्पन्न होने की क्रिया हो सकती है।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

इसलिए बल्ब में ऑक्सीजन न होने पर भी आर्गन आदि वायु की सहाय से तेउकाय उत्पन्न होने में साइन्स की दृष्टि से भी कोई विरोध नहीं है।''[16]

उत्तर प्राचीन विज्ञान और अधुनिक विज्ञान में दहन-क्रिया के विषय में कोई अन्तर नहीं है। दोनों ने मूलतः कंबश्चन यानी दहन-क्रिया में 'ऑक्सीजन' की अनिवार्यता मानी है। क्लोरिन, फ्लोरिन के साथ हाइड्रोजन आदि के जलने की प्रक्रिया और उससे उत्पन्न प्रकाश व गरमी की प्रक्रिया एक विशिष्ट रासायनिक प्रक्रिया है, जो सामान्य 'अग्नि' की प्रक्रिया से भिन्न है। इसके आधार पर सामान्य अग्नि में ऑक्सीजन की अनिवार्यता को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। दूसरी बात है बल्ब में तार के प्रकाशन होने की। उसमें होने वाली प्रक्रिया 'अग्नि' की सामान्य क्रिया तो है ही नहीं, साथ ही जैसे प्रश्नकर्ता ने स्वयं स्वीकार किया है 'क्लोरिन-फ्लारिन' वाली विशिष्ट क्रिया भी वहां नहीं है।''[17] फिर यहां ''ऑक्सीजन के बिना भी आग लगती है'' का कथन कहां तक संगत होता है? अग्नि के जो भी रूप बताए गए हैं, वे सब बिना ऑक्सीजन के सम्भव ही नहीं हैं। बल्ब के सन्दर्भ में तो स्पष्ट है कि वहां क्लोरिन या फ्लोरिन से जलने वाली क्रिया होती ही नहीं है। वैसे तो शास्त्रोक्त नरक में अचित्त अग्नि में भी उष्मा, प्रकाश आदि है, पर ऑक्सीजन नहीं है। वर्तमान सन्दर्भ में मूल प्रश्न है क्या बल्ब में जहां उक्त पदार्थों की प्रक्रिया नहीं है, तथा ऑक्सीजन भी नहीं है, वहां आग जल सकती है? इसका स्पष्ट उत्तर है नहीं।

प्रश्न 9. ''दूसरी एक महत्त्व की बात यह है कि शून्यावकाश में भेजे जाने वाले सेटेलाइट के अन्दर मशीन के कुछ विभाग में Arking बार-बार होता ही है। छोटी-छोटी चिनगारियां वहां उत्पन्न होती रहती हैं। Arking का प्रमाण यदि बढ़ जाता है तो वायर जल जाता है। यह बात ISRO (Indian Space Research Organization) के P.C.E.D. विभाग में कार्यरत स्पेस-शटल के प्रोग्राम में होशियार वैज्ञानिक **श्री पंकजभाई शाह** और **श्री किशोरभाई दोमडीया** (साइंटिस्ट/इंजीनियर S.F.) द्वारा जानकारी प्राप्त हुई है, बहुत अच्छी बात है। ऑक्सीजन आदि से रहित शून्यावकाश में भी सेटेलाइट के अन्दर चिनगारी स्वरूप अग्निकाय जीव उत्पन्न हो जाते हैं। शून्यावकाश में भी सेटेलाइट में Arking कम करने के लिए वैज्ञानिकों को कठोर परिश्रम करना पड़ता है। वास्तव में उत्पन्न होता हुआ अग्निकाय स्वप्रायोग्य वायु किसी भी स्थान में, किसी भी प्रकार से प्राप्त कर ही लेता है।[18]

उत्तर यह बात तो इस बात को सिद्ध कर देती है कि Arking से उत्पन्न चिनगारियां (Spark) मूलतः अग्नि है ही नहीं। वहां विद्युत्-प्रवाह का डिस्चार्ज ही चिनगारी के रूप में विकिरित हो रहा है। शून्यावकाश में प्रकाश का विकिरण हो

सकता है, इसका यह प्रत्यक्ष प्रमाण है। वहां वायु का अभाव है, इसीलिए अग्निकाय जीव की उत्पत्ति सम्भव ही नहीं है। यहां पर भी पहले अग्नि को मानकर वहां वायु की उत्पत्ति को जबरदस्ती मनवाने की कोशिश की गई है। स्पार्क के रूप में होने वाली चिनगारियां EDM मशीन में केरोसीन में भी आग नहीं लगा सकती, क्योंकि वहां ऑक्सीजन का अभाव है। ISRO के वैज्ञानिकों का सन्दर्भ ''स्पार्क अग्नि नहीं है, किन्तु केवल भौतिक ऊर्जा का विकिरण मात्र है'' इस बात को ही पुष्ट करता है। इससे स्पेस में शून्यावकाश में 'ऑक्सीजन' का अस्तित्व सिद्ध करने का प्रयत्न किस वैज्ञानिकता का परिचायक है? अभयदेवसूरि के कथन को भी इसके साथ जोड़ना केवल अपने पूर्वाग्रह की पुष्टि करने का प्रयत्न है। इसलिए न जैन दर्शन के आधार पर और न ही विज्ञान के आधार पर यह सिद्ध होता है कि स्पेस में ऑक्सीजन है। हवा या ऑक्सीजन केवल 'वातावरण' जहां तक है, वहां तक विद्यमान है। वातावरण पृथ्वी की सतह से केवल 400 किलोमीटर तक ही है। (इन बातों की चर्चा की जा चुकी है।)[19]

प्रश्न 10. वैज्ञानिक दृष्टिकोण से विचार करें तो वर्षाऋतु में आकाश में उत्पन्न होने वाली बिजली और वायर में से प्रसारित होने वाली बिजली के स्वरूप में कोई अन्तर नहीं है। दोनों विद्युत् का आन्तरिक स्वरूप एक जैसा है। वर्षाऋतु में बादलों के घर्षण से उत्पन्न होने वाली बिजली तो आगमानुसार सचित्त ही है, सजीव ही है। यह तो निर्विवाद सत्य है। तथा कृत्रिम प्रयत्न के द्वारा टरबाइन आदि के माध्यम से उत्पन्न की जाने वाली बिजली का स्वरूप कुदरती बिजली जैसा ही है। आकाशीय बिजली और इलेक्ट्रीसीटी इन दोनों का निर्माण, दोनों के कार्य, दोनों का स्वरूप समान ही है। साइन्स की दृष्टि से आकाश में होने वाली बिजली, टरबाइन के माध्यम से उत्पन्न होने वाली बिजली, बेटरी-सेल से उत्पन्न होने वाली बिजली अथवा अन्य किसी भी प्रक्रिया द्वारा उत्पन्न होने वाली बिजली, सभी का स्वरूप एक जैसा ही है।

Kite & Key experiment करने वाले **बेन्जामीन फ्रेंकलीन** नाम के वैज्ञानिक ने 1752 के वर्ष में शोध करके ज़ाहिर किया है कि आकाश में उत्पन्न होने वाली बिजली और वायर में से पसार होने वाली इलेक्ट्रीसीटी ये दोनों एक ही हैं। यह जानकारी इंटरनेट द्वारा प्राप्त की जा सकती है।

Franklin Institute, Philadephia U.S.A. "He did make the important discovery that **lightning and electricity are the same."**—[http:/sln.fi.edu./tfi/exhibitr/Franklin.html']

फ्रेंकलीन के मतानुसार आकाश में होने वाली बिजली इलेक्ट्रीसीटी का ही एक प्रकार का उत्सर्जन है। यह रही इंटरनेट द्वारा मिलती जानकारी।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

Info Please Encyclopedia—

'...Which proved that lightning is an electrical discharge,'—(http:/ www.info.please.com/c16/people/A0858229.html) **Science Encyclopedia** पुस्तक में Electricity Chapter (पृष्ठ 228) में बताया है कि 'Lightning is a form of Electricity' अर्थात् **आकाशीय बिजली यह इलेक्ट्रीसीटी का ही एक प्रकार है।**

इस प्रकार विज्ञान की दृष्टि से तो आकाश में उत्पन्न होने वाली बिजली और वायर में से पसार होने वाली इलेक्ट्रीसीटी एक ही है। इतना निश्चित होता है। स्व. डॉ. दौलतसिंहजी कोठारी ने भी स्पष्ट शब्दों में बताया है कि 'विज्ञान सचित्त-अचित्त की परिभाषा पर विचार नहीं करता। इसलिए वैज्ञानिक दृष्टिकोण से विद्युत् को अचित्त कहने का कोई अधिकार नहीं है। हां, इतना अवश्य कहा जा सकता है कि आकाशीय विद्युत् और प्रयोगशाला की विद्युत् ये दोनों एक हैं। यदि शास्त्रीय दृष्टि से आकाश की बिजली सजीव है तो प्रयोगशाला इत्यादि की बिजली भी सजीव है। (सम्यग्दर्शन मासिक, ता. 5.7.2002 में से साभार उद्धृत)।''[20]

उत्तर मूलतः बिजली या इलेक्ट्रीसीटी अपने आपमें क्या है इसका पूरा विवेचन हम कर चुके हैं तथा यह भी देख चुके हैं कि आकाशीय बिजली (lightning) की प्रक्रिया में किस प्रकार इलेक्ट्रीसीटी का 'discharge' कार्य करता है। और हमारे शरीर में भी बिजली (इलेक्ट्रीसीटी) किस प्रकार कार्य करती है। हमें इलेक्ट्रीसीटी, lightning, शरीर में काम करने वाली बिजली और स्थित-विद्युत् (static electricity) आदि सभी प्रकार की बिजली की प्रक्रियाओं में रहे अन्तर को समझना होगा। हमें फ्रैंकलीन, डॉ. डी. एस. कोठारी, एन्सायक्लोपीडिया आदि द्वारा किए गए कथन की अपेक्षा को समझना होगा कि वे किस दृश्टि से दोनों को एक मानते हैं।

हमारे विवेचन में हम बता चुके हैं कि कोई भी पदार्थ चाहे सजीव हो या निर्जीव, एकेन्द्रिय जीव का शरीर हो या पंचेन्द्रिय जीव का शरीर सब कुछ विद्युन्मय है इलेक्ट्रोन, प्रोटोन आदि जो स्वयं विद्युत् के रूप हैं, सभी पदार्थों के मूल घटक हैं। तार में प्रवाहित विद्युत्-धारा उन्हीं इलेक्ट्रोनों का ही धातु (जो सुचालक है) के माध्यम से स्थानान्तरण है। स्थित विद्युत् के रूप में भी यही विद्युत् अचल अवस्था में रहती है। हमारी प्रत्येक क्रिया भी विद्युत् के परिणमन के द्वारा ही चल रही है। ऐसी स्थिति में आकाशीय बिजली Lightning जो सचित्त तेउकाय है, की तुलना केवल तार वाली विद्युत् से करना कहां तक संगत होगा? फिर तो सभी पदार्थों को सचित्त तेउकाय मानना होगा। पर सब कुछ तेउकाय नहीं है, क्योंकि आकाशीय विद्युत की प्रक्रिया में जलने की प्रक्रिया स्पष्ट है, पर अन्यत्र सर्वत्र वह नहीं है। फिर तार वाली

इलेक्ट्रीसीटी भी जब तक तार में है, तब तक जलने की क्रिया से मुक्त है, इसलिए सचित्त तेउकाय नहीं मानी जा सकती। आकाशीय बिजली और अन्य बिजली में समानता भी है, भिन्नता भी। डॉ. दौलतसिंह कोठारी के उद्धरण से केवल यही फलित होता है कि विद्युत् का अपने आप में स्वरूप एक है, पर उसके विभिन्न रूपों को डॉ. कोठारी कैसे नकारेंगे? यदि सारी विद्युत् एक ही है, सचित्त तेउकाय ही है, तो फिर हमारी सभी क्रियाओं में उसका प्रयोग होने से सारा वर्ज्य हो जाएगा। एक और अनेक की अपेक्षाओं को न समझना जैन दर्शन को कैसे मंजूर हो सकता है? सिद्ध आत्मा और निगोद की आत्मा आत्म-स्वरूप की अपेक्षा से एक है। स्त्री और पुरुष जीवत्व की अपेक्षा से एक है। जीव के शरीर रूप पुद्गल और अचित्त पुद्गल पुद्गलत्व की अपेक्षा से एक है। ऐसे एक मान लेने से उनकी एकान्त एकता मान लेना स्पष्टतः असंगत है। हमें सोचना होगा कि एक होते हुए भी विद्युत् के विभिन्न परिणमनों में कहां सचित्त तेउकाय यानी जलने की क्रिया होती है और कहां नहीं होती?

प्रश्न 11. ''श्वेताम्बर, दिगम्बर, स्थानकवासी, तेरापंथी चारों पंथ के तमाम जैन लोग आकाशीय बिजली को निर्विवाद रूप से तेउकाय जीव स्वरूप ही मानते हैं। महाशक्तिशाली आकाशीय बिजली जब नीचे गिरती है तब उनसे होने वाले संभावित नुकसान को रोकने के लिए बड़ी-बड़ी फैक्टरियां, ऊंची इमारतें, महाकाय मन्दिरों, विराट होस्पीटल वगैरह के ऊपर के छत के भाग में अर्थिंग करने के लिए त्रिशूल आदि आकार में तांबे के वायर वगैरह की विशिष्ट रचना की जाती है। और उस वायर को जमीन में बहुत नीचे तक पहुंचाया जाता है। नीचे गिरती बिजली को अपनी ओर खींचकर यह वाहक तार उसको जमीन में नीचे पहुंचाता है। उससे फैक्टरी वगैरह सम्भावित नुकसान से बच जाते हैं। इस बाबत में तो सभी धर्मात्मा-महात्मा और वैज्ञानिक सम्मत हैं। तार में प्रवेश करके जमीन में जा रही आकाशीय बिजली को उस अवस्था में क्या निर्जीव मानेंगे? यह बात शक्य ही नहीं। क्योंकि जैसे आकाशीय बिजली अपने ऊपर गिरने से आदमी जल जाता है, कभी-कभी मर भी जाता है वैसे ही जब आकाशीय बिजली तांबे के तार में से पसार हो रही हो तब उस तार को पकड़ने वाला आदमी भी जल जाता है। कभी-कभी मर भी जाता है। इसलिए मानना ही पड़ेगा कि जैसे आकाश में उत्पन्न होने वाली बिजली सजीव है उसी तरह तार में से पसार हो रही बिजली भी उस अवस्था में सजीव ही है।

यह प्रक्रिया बिलकुल इलेक्ट्रीसीटी जैसी ही है। तफावत सिर्फ उतना ही है कि आकाशीय बिजली पहले प्रकाशरूप होती है, पश्चात् तार में प्रवेश कर वह अदृश्य इलेक्ट्रीसीटी का स्वरूप धारण करती है। जबकि टरबाइन वगैरह के माध्यम से उत्पन्न होने वाली बिजली पहले अदृश्य इलेक्ट्रीसीटी के स्वरूप में उत्पन्न होकर बाद में बल्ब के फिलामेंट में प्रकाश स्वरूप में दिखाई देती है। इस तरह टरबाइन वगैरह

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

के माध्यम से उत्पन्न होने वाली कृत्रिम बिजली इलेक्ट्रीसीटी और आकाशीय बिजली दोनों का स्वरूप एक ही है ऐसा सिद्ध होता है। आकाशीय बिजली तो सजीव है ही। इसलिए उसके समान कृत्रिम बिजली इलेक्ट्रीसीटी भी तेउकाय जीव स्वरूप ही है यह सिद्ध होता है।

आकाशीय बिजली के नुकसान से बचने के लिए जैसे Earthing किया जाता है उसी प्रकार का Earthing गगनचुंबी इमारत-फैक्टरी वगैरह में कृत्रिम बिजली के नुकसान से बचने के लिए किया जाता है। आकाशीय बिजली जब अर्थिंग तार में से पसार हो रही हो तब यदि उस तार के साथ बल्ब को योग्य स्वरूप से जोड़ा जाए तो वह बल्ब भी प्रकाशित होता ही है। यह बाबत विज्ञान ने प्रयोग द्वारा सिद्ध की है। इस तरह आकाशीय बिजली और कृत्रिम बिजली (electricity) के बीच अनेक प्रकारों से समानता ही दिखाई देती है। इसलिए आकाशीय बिजली की भांति वायर में से पसार होती बिजली इलेक्ट्रीसीटी भी सजीव ही है।''[21]

उत्तर आकाशीय बिजली यानी आकाश में चमकने वाली विद्युत् यानी 'विज्जू', कड़ककर गिरने वाली विद्युत् यानी अशनि या वज्रपात तथा उल्कापात (जो घर्षण से चमकते हुए पिण्ड पृथ्वी पर गिरते दिखाई देते हैं, जिन्हें Meteor कहा जाता है) ये सभी केवल जलने की स्थिति में सचित्त तेउकाय हैं। न इससे पूर्व, न पश्चात्। बिजली का पृथ्वी में समा जाना यानी विद्युत्-आवेश का मुक्त रूप जो ऑक्सीजन की सहायता से जलने की क्रिया करता था समाप्त होकर पुनः विद्युत्-ऊर्जा के रूप में आ जाता है। 'जलने' की क्रिया न करते समय विद्युत्-ऊर्जा को तेउकाय नहीं माना जा सकता। यदि उसे तेउकाय मान लेंगे, तो फिर सभी इलेक्ट्रीक चार्ज को तेउकाय मानना पड़ेगा। किन्तु ऐसा नहीं है। इलेक्ट्रीसिटी अपने आप में केवल पौद्गलिक ऊर्जा है। जब वह तार में से गुजरती है, तब भी वह केवल पौद्गलिक ऊर्जा है, भले वह पावर-हाऊस से उत्पन्न हो या आकाशीय विद्युत् से 'डीस्चार्ज' से उत्पन्न इलेक्ट्रीक चार्ज हो। आकाशीय बिजली (विज्जू) को सचित्त तेउकाय केवल आकाश में विद्यमान ऑक्सीजन के सहयोग से ज्वलनशील पदार्थों को जलाते समय ही मानना होगा। जब वही चार्ज गगनचुंबी इमारत के ऊपर लगे हुए तार से earthing हो जाता है, तब उसे सचित्त तेउकाय नहीं माना जा सकता, क्योंकि तार के भीतर गुजरते समय उसका तेउकायिक परिणमन नहीं होता। न वहां जलन या दहन क्रिया हो रही है और न ही वहां प्रकाश या चमक होती है। यदि वह तेउकाय होती, तो फिर स्वयं तार भी जल जाता। इतना भारी voltage होने पर भी तार इसीलिए नहीं जलता कि वहां दहन-क्रिया का अभाव है।

पावर हाऊस से उत्पन्न बिजली तब तक तार में है, वह भी पौद्गलिक

(निर्जीव) है। तार से बाहर जब खुली हवा में वह ज्वलनशील पदार्थों के संयोग में उचित तापमान पर आती है, तभी वह अग्नि पैदा कर सकती है। इस प्रकार, तार में प्रवाहित बिजली और खुले आकाश में चमकने वाली बिजली का भेदाभेद बहुत स्पष्ट हो जाता है।

जिस तार से बिजली गुजर रही है, उस तार को पकड़ने वाला व्यक्ति किस अवस्था में है, इस पर वह जलेगा या नहीं इसका आधार है। यदि व्यक्ति insulator पर खड़ा है, तो तार वाली बिजली का करंट उसमें प्रवेश नहीं करेगा। यदि वह earthing कर रहा है तो तुरंत करंट उसमें आ जाएगा।

जैन दर्शन के अनेकांत को समझने वाले पर्याय-भेद और परिणमन-भेद को नहीं समझते तथा केवल द्रव्य-अभेद के आधार पर सार्वत्रिक और समग्र अभेद मान ले, तो यह कहां तक संगत है?

प्रश्न 12. महानदी पर डेम बांधकर टरबाइन की सहायता से जो इलेक्ट्रीसीटी उत्पन्न की जाती है वहां प्रक्रिया ऐसी होती है कि वेग से पानी के प्रवाह को टरबाइन के ऊपर डाला जाता है जिससे टरबाइन पूरे वेग से घूमता है। उस समय टरबाइन से जुड़े हुए डायनेमो (Dyanamo) में रखे हुए मेग्नेट वाले चन्द्रकों के बीच Coil भी वेग से गोलगोल फिरती है। इस प्रकार कन्डक्टींग रॉड (Coil) और मेग्नेटीक लाइन्स के बीच एक प्रकार का प्रबल घर्षण उत्पन्न होने से वहां इलेक्ट्रीसीटी पैदा होती है। पानी का वेग बढ़ने से टरबाइन ज्यादा तेजी से घूमता है। जैसे-जैसे टरबाइन ज्यादा वेग से घूमता है वैसे-वैसे मेग्नेटीक फिल्ड में रखी हुई कन्डक्टींग रॉड ज्यादा तेजी से फिरती है। जैसे-जैसे कन्डटींग रॉड ज्यादा वेग से घूमती है वैसे-वैसे मेग्नेटींग लाइन्स ऑफ फोर्स में प्रबल घर्षण होने के द्वारा चुंबकीय प्रेरण रेखाएं (मेग्नेटीक लाइन्स) वेग से कटती हैं। जैसे-जैसे मेग्नेटीक फिल्ड में व्यवस्थित मेग्नेटीक लाइन्स ऑफ फोर्स में वेग से प्रबल घर्षण पैदा होने से चुंबकीय रेखाएं तेजी से कटती हैं वैसे-वैसे ज्यादा प्रमाण में इलेक्ट्रीसीटी उत्पन्न होती है।

यहां एक और बात ध्यान में रखनी है कि चुंबकीय रेखाएं (Magnetic lines) भी प्रभा, छाया, आतप, उद्योत, प्रकाश, तरंग, शब्द इत्यादि की तरह, जैनमतानुसार द्रव्यस्वरूप ही हैं। चुंबकीय रेखाएं भावस्वरूप-पर्यायस्वरूप नहीं है। क्योंकि भाव किसी द्रव्य में से अलग होकर बाहर नहीं निकल सकता। कपड़े का सफेद वर्ण (= पर्याय) कभी कपड़े (द्रव्य) को छोड़कर बाहर नहीं निकलता, जबकि चुंबकीय रेखाएं तो मेग्नेट के बाहर निकलती हैं। इसलिए वह पर्याय (भाव) स्वरूप नहीं होकर द्रव्यात्मक ही है। जैनागमानुसार जैसे अपने शरीर के भीतर से द्रव्यात्मक छाया-परमाणु निकलते हैं, जिनकी वजह से प्रतिबिंब-फोटो इत्यादि लिए जा सकते हैं, उसी प्रकार

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

लोहचुंबक में से द्रव्यात्मक चुंबकीय रेखाएं निकलती हैं कि जिनकी वजह से लोहचुंबक लोहे को अपनी ओर खींच सकता है।

यहां और एक बात ध्यान में रहे कि गति और घर्षण दोनों अलग चीज हैं। परन्तु जब कोई भी मूर्त्त (रूपवाला) पदार्थ गति करता है तो वह अपने प्रतिघाती पदार्थों के साथ अवश्य घर्षण उत्पन्न करता ही है। पुद्गल की गति धीमी हो तो घर्षण कम होता है और गति तेज हो तो घर्षण ज्यादा होता है। उसी तरह किसी भी पदार्थ को काटने के लिए किसी भी प्रकार की गति काम में नहीं आती, लेकिन निश्चित प्रकार की गति द्वारा उत्पन्न होने वाला विशिष्ट घर्षण ही उपयोगी बनता है। कन्डक्टींग रॉड जितनी ज्यादा तेजी से गति करता है उतना ज्यादा घर्षण उत्पन्न होता है और मेग्नेटिक लाइन्स ज्यादा तेजी से कटती है और इलेक्ट्रीसीटी ज्यादा उत्पन्न होती है। कन्डक्टींग रॉड की गति, चुंबकीय रेखाओं की कटने की स्पीड और मेग्नेटिक पावर इन तीनों के गुणांक के अनुसार इलेक्ट्रीसीटी उत्पन्न होती है।

मेग्नेट जितना ज्यादा पावरफुल होगा उतनी चुंबकीय रेखाएं ज्यादा होती हैं। यदि वह चुंबकीय बलरेखाएं कटती नहीं तो इलेक्ट्रीसीटी उत्पन्न नहीं होती। चुंबकीय रेखाएं और कन्डक्टींग रॉड के बीच यदि घर्षण नहीं होता तो चुंबकीय रेखाएं कटती नहीं। जैसे करवत और लकड़ी के बीच सही तरीके से घर्षण हो तभी लकड़ी कटती है। उसी प्रकार कंडक्टींग रॉड और चुंबकीय रेखाओं के बीच योग्य घर्षण हो तभी चुंबकीय रेखाएं कटती हैं। उन दोनों के बीच घर्षण अत्यन्त तेजी से होता है तो मेग्नेटीक लाइन्स तेजी से कटने के कारण इलेक्ट्रीसीटी ज्यादा उत्पन्न होती है। यदि वहां घर्षण मंद होता है तो मेग्नेटीक लाइन्स धीरे-धीरे कटने से इलेक्ट्रीसीटी कम उत्पन्न होती है।

इलेक्ट्रीक जनरेटर में भी इसी प्रकार की प्रक्रिया से इलेक्ट्रीसीटी उत्पन्न होती है। **'The World Book, Encylopedia'** में निम्न जानकारी देखने से यह बात ज्यादा स्पष्ट होगी।

"The stonger the magnet, the greater the number of lines of force. **If you rotate the loop of wire between the poles of the magnet, the two sides of the loop "cut" the lines of force. This induces (generates)** electricity in the loop.

In the first half of the turn, one side of the loop of wire cuts up through the lines of force. The other side cuts down. This makes the electrictiy flow in one direction through the loop. Half way through the turn, the loop moves parallel to the lines of force. **No lines of force are cut and no electricity is generated."**

(Para-6, Electric-generator, Page 146, London)

साइकिल के पहिये में लगे हुए डायनेमो (Dyanamo) में भी इसी तरह कन्डक्टींग रॉड (Coil) द्वारा प्रबल घर्षण उत्पन्न होने से चुंबकीय रेखाएं कटती हैं और इलेक्ट्रीसीटी उत्पन्न होती है। इस तरह एक प्रकार के घर्षण से उत्पन्न होने के कारण भी इलेक्ट्रीसीटी सजीव तेउकाय स्वरूप सिद्ध होती है। क्योंकि **पन्नवणा सूत्र** के प्रथम पद में बादर तेउकाय जीव के जो प्रकार बताए गए हैं, उनमें तथा **जीवाभिगमसूत्र** (प्रथम प्रतिपत्ति, सूत्र-25) में भी 'संघरिससमुट्ठिए' ऐसा निर्देश मिलता है।

मतलब अग्नि के जीव के कुछ ऐसे भी प्रकार होते हैं जो संघर्ष से घर्षण से उत्पन्न होते हैं। नियत प्रकार के कुछ घर्षण से अग्निकाय जीवों के योग्य योनि (=उत्पत्तिस्थान) पेदा होती है, और अग्निकाय के जीव वहां उत्पन्न होते हैं। इसलिए जिस प्रकार माचिस बॉक्स की दोनों साइड में एंटीमनी सल्फाइड, फोस्फरस सल्फाइड, रेती और गौंद के मिश्रण की लेप वाली कागज की पट्टी के ऊपर (सोडियम नाइट्रेट अथवा अॅमोनियम फोस्फेट के द्रावण में डालकर सुखाई हुई तथा सिंदूर, पोटेशियम, क्लोरेट, एंटीमनी सल्फाइड और गौंद का मिश्रण जिसके सिरे पर लगा हुआ होता है वैसी, 1852 में स्विडन के लुंडस्ट्रोमने खोजी) दियासलाई के वेगपूर्ण घर्षण से उत्पन्न होने वाली अग्नि सजीव है उसी प्रकार टरबाइन के अन्दर व्यवस्थित मेग्नेट और कोइल की विशिष्ट व्यवस्था के कारण मेग्नेटीक फिल्ड में घूमते हुए कन्डक्टींग रॉड के द्वारा चुंबकीय रेखाओं (Magnetic Lines) को काटने के लिए उत्पन्न होते हुए प्रबल घर्षण द्वारा उत्पन्न होती हुई दाहक इलेक्ट्रीसीटी भी बादर तेउकाय जीव स्वरूप है ऐसा फलित होता है।

यदि घर्षण के बिना वहां इलेक्ट्रीसीटी उत्पन्न होती हो तो टरबाइन बंध हो तब भी वहां बिजली उत्पन्न होनी चाहिए। परन्तु ऐसा नहीं होता। इसलिए 'संघरिससमुट्ठिए' पद द्वारा **पन्नवणा** और **जीवाभिगमसूत्र** में जो बादर सजीव तेउकाय का एक प्रकार बताया गया है उसी में प्रस्तुत इलेक्ट्रीसीटी का समावेश करना जरूरी है।

यहां एक बात विशेष ध्यान देने योग्य है कि 'मिट्टी से घड़ा उत्पन्न होता है' ऐसा कोई कहे उसका अर्थ यह नहीं है कि मिट्टी से उत्पन्न होने वाली प्रत्येक वस्तु घट ही है। क्योंकि मिट्टी से खिलौना, चूल्हा, तवा इत्यादि भी बनते हैं। तथा 'मिट्टी से ही घड़ा उत्पन्न होता है' ऐसा भी उपर्युक्त वाक्य का अर्थ नहीं कर सकते हैं। क्योंकि मिट्टी की तरह सोना, चांदी, तांबा इत्यादि में से भी घड़ा उत्पन्न हो सकता है। परन्तु उपर्युक्त वाक्य का अर्थ इतना ही हो सकता है कि 'कुछ विशिष्ट प्रकार का घड़ा मिट्टी से उत्पन्न होता है।' मिट्टी से उत्पन्न होने वाली विशिष्ट आकार वाली वस्तु 'मिट्टी का घड़ा' कहलाती है ऐसा ही अर्थघटन सर्वमान्य है। उसी प्रकार से 'घर्षण द्वारा अग्नि उत्पन्न होती है' ऐसा बताने वाले 'संघरिससमुट्ठिए' ऐसा **पन्नवणासूत्र**

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

का अर्थ ऐसा नहीं समझना कि 'घर्षण से उत्पन्न होने वाली सभी चीज सजीव अग्निकाय ही है।' क्योंकि हथेली को घिसने से जो गरमी पैदा होती है, वह कोई अग्निकाय जीव नहीं है। तथा 'सभी प्रकार के अग्निकाय जीव घर्षण से ही उत्पन्न होते हैं' ऐसा अर्थ भी उपर्युक्त शास्त्रवचन का नहीं किया जा सकता। क्योंकि घर्षण के बिना भी सूर्य प्रकाश और मेग्नीफाइंग ग्लास के माध्यम से तथाविध तेउकाय योनि बनने से तेउकाय जीव वहां उत्पन्न होते ही हैं। परन्तु उपर्युक्त आगमवचन का अर्थ इतना ही करना अभिप्रेत है कि 'कुछ प्रकार के अग्निकाय के जीव घर्षण से उत्पन्न होते हैं। जिन पदार्थों में घर्षण से उत्पन्न होने वाले गरमी, दाहकता इत्यादि गुणधर्म देखने को मिलते हैं उनको घर्षणजन्य अग्निकाय स्वरूप मानना ऐसा ही अर्थघटन **'पन्नवणासूत्र'** के 'संघरिससमुट्ठिए' वचन द्वारा शास्त्रकारों को मान्य है ऐसा निश्चित होता है।

यद्यपि टरबाइन के माध्यम से एक विशिष्ट प्रकार के घर्षण से उत्पन्न हुई बिजली की तेउकाय की **पन्नवणासूत्र** में अथवा **जीवाभिगमसूत्र** में नाम लेकर बात नहीं की है। फिर भी **पन्नवणासूत्र** में **पूर्वधर श्यामाचार्यजी** ने बादर तेउकाय के अनेक प्रकार विस्तार से बताने के बाद अन्त में अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में बताया है कि **'जे यावण्णे तहप्पगारा...'** अर्थात् (यहां इतना ध्यान रखना है कि सूर्यप्रकाश, चन्द्रप्रकाश, जुगनू का प्रकाश, जठराग्नि, बुखार की गरमी इत्यादि तेउकाय जीव स्वरूप नहीं हैं। ऐसा उल्लेख अन्य शास्त्रों में प्राप्त होता है। इसलिए उनका यहां व्यावर्तन करना चाहिए। उनका समावेश यहां इष्ट नहीं है।) ''जो दूसरे भी पदार्थ उपर्युक्त प्रकार से उष्णता, दाहकता इत्यादि लक्षण वाले हों तो उन्हें बादर तेउकाय रूप समझना।'' कितनी दीर्घ दृष्टि से स्पष्ट शब्दों में अग्निकाय जीव की पहचान **पन्नवणासूत्र** में प्राप्त होती है। **जीवाभिगमसूत्र** की प्रथम प्रतिपत्ति के 25वें सूत्र में भी इसी प्रकार के शब्द देखने को मिलते हैं।''[22]

उत्तर पहले हम घर्षण या संघर्ष को समझें।

घर्षण या संघर्ष-समुत्थित का सामान्य अर्थ है दो ठोस पदार्थों के बीच रगड़। प्रश्न में घर्षण का जो अर्थ करने का प्रयत्न किया गया है, वह प्रस्तुत प्रसंग में संगत नहीं है। यद्यपि पदार्थ यानी ठोस, तरल या बाष्प रूप पुद्गल जिन्हें सामान्यतः मेटर (matter) कहा जाता है और प्रकाश, ध्वनि आदि ऊर्जा रूप पुद्गल जिन्हें ऊर्जा (energy) कहा जाता है दोनों एक ही पुद्गलास्तिकाय नामक द्रव्य के ही दो रूप हैं, फिर भी इनके गुणधर्मों की भिन्नता के आधार पर मेटर और एनर्जी को दो अलग-अलग अस्तित्व के रूप में देखा जाता है। चुंबकीय क्षेत्र (magnetic field) की रेखाएं मेटर के रूप में न होकर ऊर्जा के रूप में होती हैं, इसलिए इनके साथ होने

वाले 'इण्टरेक्शन' भौतिक अर्थ में संघर्ष या घर्षण की कोटि में नहीं आते।[23]

जैन आगमों में वर्णित संघर्ष-समुत्थित अग्नि स्पष्टतः चकमक पत्थर या अरणी की लकड़ी आदि के रगड़ से उद्भूत आग के रूप में बनाई गई है।

प्रस्तुत प्रश्न को हम इस प्रकार रख सकते हैं क्या बिजली की उत्पत्ति केवल घर्षण से ही होती है? घर्षण से उत्पन्न होने के कारण ऐसी विद्युत् को संघर्ष-समुत्थित' अग्नि ही क्यों न माना जाए? बिजली उत्पन्न करने के अनेक तरीके हैं। इस पर दो दृष्टियों से विचार करना होगा

(क) बिजली उत्पन्न करने का तरीका स्वयं हिंसा पर आधारित ही है या नहीं?

(ख) बिजली उत्पन्न होने के पश्चात् वह सचित्त तेउकाय है या नहीं?

हाइड्रोलिक पावर-हाउस में बिजली टरबाइन द्वारा उत्पन्न की जाती है, उसमें मेगनेट (चुम्बक) को तेजी से घुमाने के लिए पानी को ऊंचाई से नीचे गिराया जाता है। चुंबक पर आविष्ट तार में विद्युत् उत्पन्न हो जाती है। इस सारी प्रक्रिया में संघर्ष या घर्षण यानी friction कहीं पर नहीं होता। विद्युत्-प्रेरण की प्रक्रिया में दूर से ही विद्युत्-चुम्बकीय क्षेत्र उत्पन्न होता है। चुम्बकीय रेखाएं चुंबक के आसपास के आकाश (Space) में उत्पन्न प्रभाव मात्र है, कोई वस्तु या पदार्थ नहीं। उन्हें काटने का अर्थ भौतिक अर्थ में नहीं है। तीव्र गतिशील पदार्थ की गति के साथ घर्षण तब होता है जब दूसरा पदार्थ ठोस, तरल या बाष्प रूप में हो और उससे टकराए। चुंबकीय रेखाएं ऐसा पदार्थ है ही नहीं, इसलिए उन्हें पदार्थ मानकर संघर्ष या घर्षण को बताना संगत नहीं है। ठोस, तरल या बाष्प रूप पुद्गल यानी 'मेटर' और ऊर्जा रूप पुद्गल यानी 'एनर्जी' दोनों के अन्तर को समझना होगा। दोनों को एक रूप में मानकर उनके बीच घर्षण मानने का अर्थ है सर्वत्र ही सब पदार्थों में घर्षण होता ही रहता है।[24] जिस रूप से संघर्ष या घर्षण का अभिप्राय संघर्ष-समुत्थित अग्नि की उत्पत्ति में आवश्यक माना गया है, वह तो स्पष्टतः दो ठोस पदार्थों के बीच होने वाले घर्षण से ही है। जैसे चकमक पत्थरों को परस्पर रगड़ना। अरणी की लकड़ी की रगड़ से उत्पन्न होने वाली अग्नि भी संघर्ष-समुत्थित है।

चुम्बक को गतिशील बनाने के लिए किसी भी तरीके को अपनाया जा सकता है। जनरेटर सेट में रोटर को घुमाने का कार्य अन्य तरीके से (डीजल आदि जलाकर) किया जाता है। पर घर्षण से विद्युत् की उत्पत्ति नहीं की जाती।

जहां तक पानी की हिंसा, तेल को जलाने की हिंसा आदि का सम्बन्ध है, यह स्पष्टतः हिंसा ही है। किन्तु हिंसा से निष्पन्न होने के पश्चात् उत्पन्न विद्युत् स्वयं जीव कहां से हो जाएगी? रसोई बनाते समय विभिन्न जीवों की हिंसा की जाती है। परन्तु

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

उससे निष्पन्न भोजन स्वयं जीव नहीं होता। उसी प्रकार हिंसाजन्य होते हुए भी विद्युत् स्वयं सचित्त तेउकाय नहीं है।

विद्युत पैदा करने के अन्य तरीके हैं, जिनमें संघर्ष या घर्षण का प्रसंग ही नहीं आता, जैसे

1. एसिड-युक्त बेटरी में केवल जस्ते और एसिड की रासायनिक क्रिया विद्युत् उत्पन्न करती है।[25]
2. फोटो इलेक्ट्रीक सेल में केवल प्रकाश के द्वारा विद्युत् प्रवाह को निष्पादित किया जाता है।[26]
3. सौर सेल में सौर ऊर्जा को कांच में से गुजारकर बिना घर्षण विद्युत् ऊर्जा पेदा की जाती है।[27]
4. ड्राई-सेल (जो घड़ी आदि में लगते हैं) में भी रासायनिक प्रक्रिया द्वारा विद्युत् पैदा होती है, संघर्ष से नहीं।[28]

इन सब सेलों में प्रत्यक्षतः कोई हिंसा दिखाई नहीं देती। इस प्रकार विद्युत् उत्पन्न करने के साधन हिंसाजन्य भी है, हिंसा-मुक्त भी है। साधन हिंसाजन्य हो या न हो, पर निष्पन्न विद्युत् स्वयं अचित्त है, ऐसा मानने में कोई आपत्ति नहीं है।

प्रश्न 13. ''राख से ढके हुए सुलगते अंगारों में प्रकाश, गरमी इत्यादि तेउकाय के लक्षण स्पष्ट रूप से नहीं दिखाई देने पर भी वह सजीव बादर अग्निकाय स्वरूप है, यह बात निर्विवाद स्वरूप में सभी जैनों को मान्य है। इस अग्नि को विध्यातअग्नि (-सुषुप्त अग्निकाय जीव) के रूप में **पिंडनिर्युक्ति** (गाथा-561) ग्रन्थ में **श्री भद्रबाहुस्वामीजी** ने बताया है। वहां सजीव बादर अग्निकाय विद्यमान होने से यही राख से ढके हुए सुलगते अंगारों पर यदि घासलेट या पेट्रोल डाला जाए तो तुरन्त ही वहां विस्फोट-प्रकाश-गरमी उत्पन्न होते हैं।

उसी प्रकार तीव्रतम D.C. (Direct Current) या A.C (Alternating Current) इलेक्ट्रीसीटी जिसमें से प्रसारित होती है उस खुले वायर को ज्यादा प्रमाण में ओजोन वायु का सम्पर्क हो तो उस खुले वायर में से भूरे (Blue) रंग का प्रकाश कोरोना इफेक्ट से अपने आप प्रकट होता हुआ दिखाई देता ही है। जंगल के आसपास के वातावरण में कुदरती प्रक्रिया से उत्पन्न हो रहे प्रचुर ओजोन के कारण, विशेष तौर पर सर्दी की रात में, तीव्रतम A.C./D.C. पावर वाले खुले वायर में से, बहुत जल्दी सवेरे के समय, भूरे रंग का प्रकाश निकलता हुआ दिखाई देता है। खुले ट्वीस्टेड वायर में से अत्यन्त तेजी से प्रवहमान घर्षणयुक्त इलेक्ट्रीसीटी पूर्वोक्त विध्यात अग्निकाय जीव ही है। इसीलिए ओजोन स्वरूप इंधन के संपर्क में आने के साथ ही

वह भूरे प्रकाश के स्वरूप में दिखाई देती है।

तथा तीव्र वेग से घर्षणपूर्वक A.C. पावर जिसमें से प्रसारित होता है उस वायर के माध्यम से बल्ब में रहे हुए फिलामेंट में बिजली आते ही वहां तुरन्त उष्णता-प्रकाश इत्यादि प्रकट होते हैं। शोर्ट सरकीट से आग लगने के कई किस्से बनते ही हैं। लीकेज हुए या टूटे हुए दो वायर यदि एक साथ मिल जाएं और उसमें से इलेक्ट्रीसीटी पसार होती हो तो उसमें से प्रकाश के रूप में चिनगारियां निकलती हुई दिखाई देती हैं। इस प्रकार इलेक्ट्रीसीटी तेउकाय जीवस्वरूप ही सिद्ध होती है। वास्तव में इन सभी बाबतों द्वारा तेउकाय जीव को समझने के लिए सूक्ष्म बुद्धि की आवश्यकता है।

श्री अभयदेवसूरिजी महाराज ने **भगवतीसूत्रव्याख्या** में तथा **ज्ञाताधर्मकथावृत्ति** में **'भस्मच्छन्नोऽग्निः बहिर्वृत्त्या तेजोरहितोऽन्तर्वृत्त्या तु ज्वलति'** (भाग-2/1/114, ज्ञा. 1/1/40 मेघकुमार) ऐसा कहने के द्वारा तथा **प्रश्नव्याकरणसूत्रव्याख्या** में **'भस्मच्छन्नो वह्निः अन्तः ज्वलति, बहिःम्लानो भवति'** (2/5/45) अर्थात् 'राख से ढकी हुई आग बाहर से निस्तेज दिखाई देती है। फिर भी अन्दर से तो सुलगती ही है' ऐसा कहकर बताया है कि राख से ढकी हुई अग्नि में बाहर से वैसी उग्रता-प्रकाश-दाह-गरमी इत्यादि लक्षण नहीं दिखाई देते हैं फिर भी अन्दर से सुलगने के कारण वह तेउकाय स्वरूप ही है ऐसा सूचित किया है। उसी प्रकार प्रस्तुत में कह सकते हैं कि वायर में से प्रवाहित होती इलेक्ट्रीसीटी में प्रकाश वगैरह लक्षण बाहर से नहीं दिखने पर भी अन्दर से तो वह विलक्षण प्रकार से सुलगती ही है। इसीलिए उसको हाथ लगाते ही भयंकर जलन होती है। इसीलिए वह सजीव अग्नि ही है।

बड़े-बड़े थम्भों पर लगे हुए हाईटेन्शन वायर में से A.C. या D.C. पावर पसार होता है तब उसके नीचे से पसार होने के समय उस ट्वीस्टेड वायर में ज्यादा प्रमाण में लगातार होते हुए स्पार्कस की आवाज हमें सुनाई देती ही है। वर्षा हो रही हो उस समय तो A.C. या D.C. पावर वाले खुले वायर में होते हुए स्पार्क अत्यन्त बड़ी आवाज में सुनाई देते हैं। यह स्पार्क अग्निकाय नहीं तो क्या है?

हाईटेन्शन वाले दो खुले वायर नजदीक में आए तभी भी उनमें से प्रकाश-चिनगारियां उत्पन्न होती ही हैं। उस अवस्था में जिस वायर में वोल्टेज (विद्युत् दबाव) ज्यादा हो उसमें से कम वोल्टेज वाले वायर में प्रकाश के स्वरूप में इलेक्ट्रीसीटी पसार होती हुई दिखाई देती ही है।

हाई इलेक्ट्रीसीटी के बड़े गुंबज में भी वायु के संसर्ग से महाकाय चिनगारियां उत्पन्न होती हैं। इंटरनेट द्वारा मिलती जानकारी से यह बात अत्यन्त स्पष्ट हो जाती है।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

...show our Van de Graff producing sparks. The Sparks are going from the big domes to one of two small spheres that are on telescoping grounded poles.

The sparks are produced when the voltage on the domes gets large enough that it ionizes the air, turning it from an insulator into a conductor. This does not all happen at once, but it does happen ver quickly—a typical spark (or lightning flash) lasts less than 1/1000 of a second!

'वान-डे-ग्राफ' चिनगारी किस तरह से उत्पन्न करता है? चिनगारी बड़े गुंबज पर से छोटे गोले की तरफ जाती है। जब गुंबज पर का वोल्टेज (=विद्युत दबाव) बहुत बढ़ जाता है तब वह आसपास की हवा को आयनीकृत (आयोनाइज्ड) कर देता है। (परमाणु अथवा मूलकण, एक अथवा ज्यादा इलेक्ट्रोन को प्राप्त करके अथवा गुमा कर विद्युतभार प्राप्त करता है उस समय उत्पन्न होने वाली रचना को आयन कहते हैं। (**विज्ञानकोश-रसायण विज्ञान,** भाग 5, ले. श्रीमती एल. एस. देसाई, पृष्ठ 42) जिससे हवा अवरोधक में से वाहक बन जाती है। यह प्रक्रिया बहुत तेजी से होती है। एक सेकंड के हजारवें भाग में वह चिनगारियाँ उत्पन्न होती है।

Only one spark can be produced at a time. Although sparks can come very quickly. Each spark drains the electricity off the domes and the machine must then recharge itself. In this our machine differs somewhat from a lightning storm where the cloud has such a massive charge that most lightning strikes are actually two to ten or more strokes using the same channel. [http://www.mus.org/slm/toe/ssparks.html]

एक समय एक ही चिनगारी होती है। लेकिन प्रक्रिया बहुत तेज होती है। चिनगारी से गुंबज की विद्युत् शक्ति डीस्चार्ज हो जाती है। जिससे उस यन्त्र को फिर से चार्ज करना पड़ता है। तूफानी वातावरण में आकाश में उत्पन्न होती बिजली से इस यन्त्र में तफावत मात्र इतना है कि बिजली होने के समय बादल में इतना ज्यादा चार्ज होता है कि प्रायः प्रत्येक बिजली के कड़ाके में 2 से 10 बार चमकारे उत्पन्न होते हैं, जो एक ही प्रवाह में बहते हैं।

शान्त चित्त से इस बात पर गहन विचार किया जाए तो ionised हवा के सम्पर्क से विद्युत्प्रवाह घर्षणजन्य ऐसे ये महाकाय स्पार्क्स, इलेक्ट्रीसीटी को तेउकाय जीव रूप में स्वीकार करने के लिए निःसंदिग्ध बड़ा सबूत है। गुंबज में रही हुई इलेक्ट्रीसीटी अन्दर में तो तेजी से जलती ही है। इसीलिए वोल्टेज बढ़ जाने से योग्य संयोगों में अपने आप चिनगारी के स्वरूप में बाहर निकल जाती है। इसीलिए वह तेउकाय जीवस्वरूप ही है।''[29]

उत्तर विध्यात अग्नि राख से ढके हुए अंगारों के भीतर की अग्नि में अग्नि की क्रिया चालू रहती है। वहां निरन्तर 'कंबश्चन' चालू है। इसलिए वह वास्तव में मंद अग्नि है। उस प्रक्रिया में अग्नि की क्रिया बंद नहीं होती।

दियासलाई (मेच स्टीक) और मेच बॉक्स में अग्नि पैदा करने की क्षमता मौजूद है, पर जब तक दोनों में रगड़ नहीं होती, तब तक अग्नि पैदा नहीं होती। क्या मेच बॉक्स में रखी हुई मेच स्टीक में भी 'विध्यात अग्नि' का अस्तित्व माना जा सकता है? नहीं। ठीक उसी प्रकार तार में गुजरते विद्युत्-प्रवाह में भी 'अग्नि' का अस्तित्व नहीं है। 'इन्सुलेटेड' तार को ऑक्सीजन (या ओजोन) से सीधा सम्पर्क का अवसर नहीं मिल सकता। जबकि खुले ट्वीस्टेड वायर में सीधा हवा के साथ सम्पर्क का मौका मिल जाता है और उसके साथ ही यदि ज्वलनशील पदार्थ का संयोग भी मिल जाए तो अग्नि पैदा हो जाएगी। 'आयनीकरण' होकर हवा में जो ऊर्जा का विकिरण होता है, वह 'स्पार्क' का ही रूप है, जिसके विषय में हम पहले चर्चा कर चुके हैं। स्मरण रहे गुंबज से होने वाले स्पार्क हो अथवा शोर्ट सर्किट से उत्पन्न स्पार्क हो अथवा हाई वोल्टेज वाले खुले तार के द्वारा आसपास की हवा (ओजोन आदि से युक्त) के आयनीकरण से उत्पन्न स्पार्क हो, ये स्पार्क स्वयं तो निर्जीव विद्युत्-चुम्बकीय तरंगों के रूप में ऊर्जा का विकिरण मात्र है, जब इनके सम्पर्क में ज्वलनशील पदार्थ आता है और चूंकि वहां ऑक्सीजन (या ओजोन) मौजूद है तब अग्नि पैदा हो जाती है या आग लग जाती है। उस समय ही वहां तेउकायिक जीव की उत्पत्ति होती है, अन्यथा नहीं।

तात्पर्य यह हुआ कि खुले वायर में चलने वाली विद्युत्-धारा जब ओजोन के संपर्क में आती है तब यदि कंबश्चन की क्रिया घटित होने के लिए आवश्यक सभी बातों का संयोग मिले, तो अग्नि पैदा हो सकती है

1. ज्वलनशील पदार्थ
2. ओजोन (ऑक्सीजन का ही पुष्ट रूप)
3. उच्च तापमान (ज्वलनांक)
4. प्रकाश

यह तो इस बात को सिद्ध करता है कि विद्युत् स्वयं न अग्नि है, न विध्यात अग्नि है। पर अनुकूल संयोगों में अग्नि पैदा कर सकती है। इसका यह अर्थ निकालना कि विद्युत् के भीतर विध्यात अग्नि के रूप में छिपी अग्नि रहती है और राख से ढके हुए सुलगते अंगारों में रही अग्नि की तरह ही वह है, ठीक नहीं है। तब तो फिर ऐसा कह सकते हैं कि दियासलाई में विध्यात अग्नि छुपी है और मेच बॉक्स से रगड़ लगाने पर प्रकट हो जाती है। वस्तुतः विद्युत् का परिणमन अनुकूल संयोग

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

मिलने पर अग्नि या अन्य ऊर्जा के रूप में होना सहज सम्भव है। विद्युत्-प्रवाह अपने आपमें पौद्गलिक ऊर्जा है, यह ऊर्जा अनुकूल संयोग पाकर अग्नि रूप में बदल सकती है।

प्रश्न 14. ''**शंका** अगर वायर में से पसार होती हुई इलेक्ट्रीसीटी वास्तव में अग्निकाय जीव हो तो जैसे दाहकता नामक गुणधर्म उसमें होता है वैसे उसमें उष्णता भी देखने को मिलनी चाहिए। क्योंकि दाहकता की भांति उष्णता/गरमी भी तेउकाय जीव का लक्षण है।'' (इस शंका का समाधान वे स्वयं इस प्रकार करते हैं)

''**समाधान** वायर में से गुजरती इलेक्ट्रीसीटी में उष्णता/गरमी भी होती ही है। इसीलिए तो ए.सी., कम्प्यूटर, टी.वी. चेनल, इस्त्री, लाईट वगैरह बहुत घण्टे तक लगातार चालू रखने में आए तो दुकान, घर वगैरह में फिटिंग किया हुआ आवृत्त वायर भी बाहर से गरम लगता ही है। वायर के अन्दर तीव्र गति से बहती इलेक्ट्रीसीटी की यह उष्णता भी घर्षणजन्य है। इसलिए यह घर्षणजन्य तेउकाय जीव का ही एक प्रकार है। यद्यपि पावरहाउस वाले दुकान-घर इत्यादि में सिर्फ पांच एम्पीयर (एम्पीयर = करंट का एकम युनिट) वाली (दो पीन वाले प्लग के लिए) या पन्द्रह एम्पीयर वाली (तीन पीन वाले प्लग के लिए) इलेक्ट्रीसीटी सप्लाई करते हैं। जिससे गरम होने पर भी वह वायर पिघलता नहीं है। परन्तु पचास एम्पीयर वाली इलेक्ट्रीसीटी दुकान, घर इत्यादि में फिटींग किए हुए वायर में से यदि पसार करने में आए तो अवश्य उस वायर का इनस्युलेशन तुरन्त ही पिघल जाएगा। तथा स्पार्क होकर इन्स्युलेशन जल भी जाता है। तथा हाईटेन्शन वाले खुले ट्वीस्टेड वायर में से 500 से 800 एम्पीयर वाली तीव्रतम पावर की इलेक्ट्रीसीटी पसार करने में आती है। अगर उसे दुकान या घर में फिटींग किए वायर में से पसार करने में आए तो वह तांबे का तार और उसके ऊपर का इन्स्युलेटेड कवर तात्कालिक ही जल जाएगा, विस्फोट हो जाएगा। अरे! आठ सौ एम्पीयर वाली पावरफुल इलेक्ट्रीसीटी तो शहर में रॉड पर के थंभे के बड़े वायर को भी जला देगी/पिघला देगी। ऐसी भयंकर उष्णता उसमें होती ही है।

इसीलिए इलेक्ट्रीसीटी अग्निकाय जीव स्वरूप ही है। 300 से 800 एम्पीयर वाली इलेक्ट्रीसीटी जिसमें से पसार हो रही हो ऐसे खुले ट्वीस्टेड वायर को यदि पेड़ का स्पर्श हो जाए तो तुरन्त ही वह पेड़ जलने लगता है, कोयला बन जाता है। यदि उस हाईटेन्शन वायर लाइन्स की नजदीक में कोई बड़ा पेड़ हो तो उस पेड़ को खुले वायर में से पसार होती हुई इलेक्ट्रीसीटी अपने पास खींच लेती है और पेड़ को जला देती है। ऐसी बात G.E.B. साबरमती-अहमदाबाद के डेप्युटी एन्जीनीयर **मुकेशभाई संघवी** बताते हैं। इससे इलेक्ट्रीसीटी तेउकाय जीवस्वरूप ही सिद्ध होती है।

उसी तरह से यदि खुले हाईटेन्शन वायर के नीचे यदि रुई का खुला ढेर वायर

से 5/6 फीट दूर रखने में आए तो वह तुरन्त जलने लगता है। इसीलिए तो रुई-जीन की मीलों में हाईटेन्शन वायर के आसपास रुई का ढेर रखने की मनाई होती है। ऐसी गफलत से आग लगने की अनेक घटनाएं दाहोद वगैरह की जीनींग मीलों में बन चुकी हैं। यह हकीकत भी इलेक्ट्रीसीटी को तेउकाय जीव स्वरूप में सिद्ध करती हैं। घर वगैरह में उपयोग में आने वाली सिर्फ पांच या पन्द्रह एम्पीयर वाली इलेक्ट्रीसीटी की गरमी अर्थात् उष्णता अल्प मात्रा में होने से उसे निर्जीव नहीं कही जा सकती। अन्यथा तो दावानल या टाटा स्टील की भट्ठी की अपेक्षा अत्यन्त कम उष्णता वाली मोमबत्ती-अगरबत्ती इत्यादि की आग को भी निर्जीव माननी पड़ेगी।

ठाणांगसूत्र में **'अंतो अंतो झियायंति'** (8/702) इन शब्दों द्वारा तथा **जीवाभिगमसूत्र** में **'अंतो अंतो हुहुयमाणाइ'** (3/2/105) ऐसे शब्दों द्वारा अन्दर ही अन्दर तेजी से जलती हुई और इंधन मिले तो बाहर भी प्रकाश-ज्वाला-चिनगारी इत्यादि को उत्पन्न करती हुई अग्नि की बात आती है। **श्री भद्रबाहुस्वामीजी** ने **पिंडनिर्युक्ति** (गा. 592) ग्रन्थ में अग्निकाय जीव के सात प्रकार बताए हैं। उनमें 'विध्यात' (=सुषुप्त) 'अग्नि' के नाम से जो सबसे प्रथम प्रकार बताया है उसकी पहचान भी ऊपर बताई गई अग्नि के समान ही है। अन्दर से सुलगती होने पर भी बाहर से उसके लक्षण प्रकट रूप से नहीं दिखने से ऐसा लगता है जैसे आग बुझ गई हो। इसलिए उसे विध्यात (=सुषुप्त) अग्निकाय जीव कहते हैं। किन्तु आवश्यक इंधन, वातावरण आदि सामग्री मिलने पर तुरन्त उसमें से अग्नि उत्पन्न हो जाती है। यही लक्षण वायर में से पसार होती हुई इलेक्ट्रीसीटी में भी देखने को मिलता ही है। इसलिए **पिंडनिर्युक्ति** अनुसार वायर में पसार होती हुई बिजली का पूर्वोक्त (पृष्ठ 5, 43) विध्यात नाम के अग्निकाय जीव स्वरूप में भी स्वीकार किया जा सकता है। वह अन्दर में बुझी नहीं होती। किन्तु अन्दर-ही-अन्दर धक-धक जलती ही है। इसलिए तो उसको छूने पर ही भयंकर जलन होती है। शोर्ट सर्किट होने पर आग की चिनगारियां निकलती ही हैं। बल्ब के अन्दर फिलामेण्ट में वह प्रकाश को भी उत्पन्न करती है।

स्कूटर आदि के स्पार्क प्लग में इलेक्ट्रीसीटी चिनगारियां को भी पैदा करती ही है। स्पार्कप्लग में एक वायर के सिरे से छलांग मारकर इलेक्ट्रीसीटी चिनगारी के स्वरूप में दूसरे सिरे तक जाती हुई साफ-साफ दिखाई देती ही है। यह बात निश्चित रूप से सिद्ध करती है कि इलेक्ट्रीसीटी अग्निकाय जीवस्वरूप ही है।

High D.C./A.C. पावर जिसमें से प्रसारित होता है उस खुले वायर के साथ यदि जमीन पर खड़े हुए व्यक्ति का सीधा सम्पर्क हो जाए तो वह तुरन्त ही निर्जीव होकर काला पड़ जाता है। यदि इलेक्ट्रीसीटी तेउकाय जीव न हो तो उससे आदमी काला कैसे हो जाता है? इलेक्ट्रीसीटी को तेजोलेश्या तो मान ही नहीं सकते। क्योंकि

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

इलेक्ट्रीसीटी में आतप नाम कर्म का उदय नहीं है। इसलिए उष्णस्पर्श नाम कर्म के उदय वाले तेउकाय जीव के स्वरूप में ही उसका स्वीकार करना मुनासिब लगता है।

इस प्रकार आदमी को कोयले जैसे श्याम करती इलेक्ट्रीसीटी अपने कार्य द्वारा तेउकाय का ही एक विलक्षण प्रकार है यह बात सिद्ध होती है कि जो सामान्य संयोग में दिखाई नहीं देती। किन्तु ओजोन के सम्पर्क में आते ही गतिशील इलेक्ट्रीसीटी को वहन करते हुए खुले वायर में से भूरे (=Blue) रंग का प्रकाश दिखाई देता है कि जो घर्षणजन्य अग्निकाय जीव ही है। यह बात हम अभी देख गए।

इसी प्रकार High A.C. इलेक्ट्रीसीटी जिसमें से प्रसार होती है उस खुले ट्वीस्टेड दो बड़े वायर को एकदम समीप रखने में आए तो एक वायर में से वह इलेक्ट्रीसीटी वीजीबल रेंज में आकर प्रकाश स्वरूप को धारण करती हुई दूसरे वायर में तेजी से जाती हुई दिखाई देती है। मतलब कि इनवीजीबल रेंज में रही हुई प्रवहमान इलेक्ट्रीसीटी वीजीबल रेंज में आने पर स्पार्क, ज्वाला इत्यादि स्वरूप में दिखाई देती है।

जिस प्रकार अत्यन्त क्रोधी मनुष्य छोटी-छोटी बातों में क्रोधित हो जाता है उसी प्रकार अत्यन्त तीव्रतम गतिशील इलेक्ट्रीसीटी स्वरूप जलता तेउकाय अत्यन्त संवेदनशील (Sensitive) होने के कारण थोड़ा-सा भी निमित्त मिलने पर तुरन्त ही विस्फोट-आग-प्रकाश-उष्णता-दाह इत्यादि प्रकट करके अपना तेउकायपना बता ही देता है। एक प्रकार के अग्निकाय द्वारा दूसरे प्रकार का अग्निकाय कुछ ही देर में ही प्रकट हो सकता है यह बात जगत् प्रसिद्ध ही है। योग्य वातावरण/संयोग/साधन सामग्री मिलते ही अत्यन्त तेजी से इलेक्ट्रीसीटी में से चिनगारियां और विस्फोट होने का अनुभव कितने ही व्यक्तियों को होता ही है। शोट सर्किट से मंडप इत्यादि में आग लगने की घटनाएं भी सुप्रसिद्ध ही हैं।''[30]

उत्तर तार में जो विद्युत्-प्रवाह बहता है, उसका परिवर्तन उष्मा के रूप में हो सकता है या किया जा सकता है। उष्णता के साथ जब तक अन्य सभी तेउकाय के लक्षण प्रगट न हो तब तक तेउकाय की उत्पत्ति नहीं मानी जा सकती। तार जब उष्मा को सहन नहीं कर सकता, तो गरम होकर पिघल जाता है। इसकी चर्चा हम कर चुके हैं। खुले तार में हाई पावर वाला करंट चलने पर ज्वलनशील पदार्थ मिल जाए तो अग्नि की उत्पत्ति हो सकती है, किन्तु इसका अर्थ यह कर लेना कि तार में प्रवहमान करंट स्वयं तेउकाय है, ठीक नहीं है। बाहर अग्नि पैदा करने के लिए चारों अनिवार्य घटक आवश्यक होंगे। विध्यात अग्नि की चर्चा हम कर चुके हैं। बुझी हुई या विध्यात अग्नि पहले प्रकट अग्नि रूप में होती है और बाद में ऊपर से बुझी हुई

लगती है, भीतर जलती रहती है (अंतो अंतो झियायंति स्था. 8/702 का यही तात्पर्य है।) बिजली के तार के भीतर यह लागू नहीं होता है।

स्पार्क के विषय में भी हम चर्चा कर चुके हैं। क्रोधी मनुष्य की उपमा अतिज्वलनशील पदार्थ पर भी लागू होती है, पर पेट्रोल आदि को अग्नि के रूप में नहीं माना जाता। शॉट सर्किट में आग लगने में भी तेउकाय की उत्पत्ति के चारों घटक विद्यमान होते हैं। उसके बिना न शॉट सर्किट होता है, न आग लगती है।

मूल में एक ही बात को बहुत स्पष्ट समझना होगा कि अग्नि के रूप में विद्युत् के परिवर्तन की प्रक्रिया पूर्ण हुए बिना अग्नि पैदा नहीं होती, भले चाहे वह विद्युत् हाई वोल्टेज वाली हो, हाई एम्पीयर वाला करंट हो, स्पार्क हो या विजिबल रोशनी के रूप में हो। जितने भी उदाहरण प्रश्न में दिए गए हैं, उन सबमें ज्वलनशील पदार्थ (रुई, पेड़, आदमी आदि) और खुली हवा (ऑक्सीजन या ओजोन) दोनों का सम्पर्क उच्च तापमान वाली विद्युत् के साथ होता है। जहां ऐसा नहीं होता, वहां अग्निकाय नहीं हो सकती।

उष्णता जैसे अग्नि का गुण है, वैसे बिना अग्नि (या तेउकाय) में भी उष्णता विद्यमान होती है, क्योंकि उष्णता अपने आपमें पौद्गलिक है, निर्जीव है। विद्युत् का उष्णता में परिवर्तन मात्र 'अग्निकाय' पैदा नहीं कर देता, जब तक कि साथ में ज्वलनशील पदार्थ और ऑक्सीजन दोनों का संयोग न हो।

भगवती में अचित्त तेजोलेश्या के पुद्गल की उष्णता का इतना स्पष्ट उदाहरण है जो सोलह जनपद को जलाने की क्षमता रखते हैं।[31]

प्रश्न 15. बल्ब में बिजली के माध्यम से उत्पन्न हुआ प्रकाश भी इलेक्ट्रीसीटी की भांति तेउकाय जीवस्वरूप ही है। इसका कारण यह है कि वैज्ञानिक दृष्टिकोण से करोड़ों इलेक्ट्रोन का समूह अत्यन्त वेग से स्थूल वायर में से पसार होकर एकदम पतले टंगस्टन धातु के फिलामेन्ट में से पसार होता है तब जगह बहुत कम होने से तथा इलेक्ट्रोन का समूह अधिक मात्रा में होने से तथा उसका वेग बहुत तेज होने से बल्ब में रखे हुए फिलामेण्ट में अत्यन्त घर्षण होता है। उसके परिणामस्वरूप वहां प्रकाश और गरमी की उत्पत्ति होती है। ऐसा वैज्ञानिक कहते हैं। तथा हमने **पन्नवणासूत्र** और **जीवाभिगमसूत्र** के 'संघरिससमुट्ठिए' पाठ दिया है। उसके अनुसार बल्ब में पैदा होता हुआ उष्ण प्रकाश वास्तव में घर्षण से उत्पन्न हुए बादर अग्निकाय स्वरूप ही है, सजीव ही है ऐसा निश्चित होता है। दूसरी ओर अग्निकाय के गुणधर्म विद्युत्-प्रकाश में देखने को मिलते हैं। प्रकाश, गरमी, दाहकता इत्यादि अग्निकाय के लक्षण उसमें देखने को मिलते ही हैं। वीडीयो शुटींग के समय जो लाईट चालू करने में आती है उसके पास में खड़े रहने वाले को सख्त गर्मी का अनुभव होता ही है।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

लम्बे समय तक यदि बल्ब को चालू रखा जाए तो बल्ब, मर्क्युरी लेम्प इत्यादि गरम हो जाते हैं। प्रकाशमान लेम्प के ऊपर यदि लम्बे समय तक कपड़ा रखा जाए तो बिल्लौर कांच वगैरह की सहायता के बिना भी वह जल जाता है। ये सब लक्षण बिजली के प्रकाश को तेउकाय स्वरूप में सिद्ध करते हैं।''[32]

उत्तर प्रस्तुत प्रश्न में उठाई गई शंकाओं को हम क्रमशः देखें

1. फिलामेंट में विद्युत्-प्रवाह के प्रवेश को वैज्ञानिक किस प्रकार समझाते हैं, उसकी विस्तृत चर्चा हम कर चुके हैं। (देखें, प्रथम भाग, नवां प्रभाग) वहां यह स्पष्ट हो चुका है कि टंगस्टन में धातु के परमाणुओं को विद्युत्-प्रवाह के विद्युत्-आवेश द्वारा अपनी ऊर्जा हस्तान्तरित की जाती है, जिससे टंगस्टन का तापमान बढ़ता है। वैसे तो प्रत्येक पदार्थ सामान्य तापमान पर भी उष्मा-विकिरण फेंकते रहते हैं, पर जब 2500 डिग्री से. तक तापमान बढ़ जाता है, तो कुछ प्रतिशत उष्मा-ऊर्जा दृश्य रोशनी के रूप ऊर्जा में विकिरित होती है, जिसे हम बल्ब के प्रकाश के रूप में देखते हैं। इस प्रकार बल्ब के प्रकाश को संघर्ष-समुत्थित अग्नि कहना ठीक नहीं है। जैसे पहले बताया जा चुका है ऑक्सीजन के अभाव में यह संभव भी नहीं है। प्रकाश, गरमी आदि गुणों के आधार पर भी विद्युत्-प्रकाश को अग्नि नहीं माना जा सकता क्योंकि ये गुण सूर्य के आतप में भी है, पर सूर्य का आतप तेउकायिक नहीं है। सूर्य के आतप में भी लेंस के नीचे रखा कपड़ा जल जाता है। इससे क्या सूर्य का आतप स्वयं तेउकाय बन जाएगा? बल्ब पर रखा कपड़ा यदि बल्ब की उष्मा से तथा हवा के ऑक्सीजन से जलता है, तो इससे बल्ब का प्रकाश कहां से तेउकायिक हो गया?

अतः स्पष्ट है कि विद्युत्-ऊर्जा का प्रकाश-ऊर्जा में परिवर्तन केवल पौद्गलिक परिवर्तन है, (यदि ऑक्सीजन आदि प्राप्त न हो)। उसे सूर्य, चन्द्र या अन्य किसी भी पदार्थ के प्रकाश की तरह पौद्गलिक ही मानना होगा। तार में इलेक्ट्रोन के घर्षण की बात भी विज्ञान द्वारा सम्मत नहीं है। वस्तुतः धातु सुचालक होने से इलेक्ट्रोन का प्रवाह तार में चलता है। इसमें कहीं घर्षण की क्रिया नहीं है। धातु की अवरोधकता की चर्चा भी हम कर चुके हैं।

अग्नि और प्रकाश में प्रकाश का गुण समान है, पर शेष सारी प्रक्रिया भिन्न है, इसलिए प्रकाश और अग्नि एक नहीं हैं। प्रकाश को जैन दर्शन ने केवल पुद्गल की पर्याय माना है। प्रकाश को विज्ञान ने 'विद्युत्-चुम्बकीय तरंग' माना है। विज्ञान और आगम दोनों आधारों पर प्रकाश पौद्गलिक ही है। प्रकाश में दाहकता का गुण होता तो हम सब प्रकाश मात्र से जल जाते। ऐसा मानना अपने आप में ही सही नहीं है।

कपड़ा ज्वलनशील है। यदि पर्याप्त रूप में गरम हो जाए और ऑक्सीजन का

सहयोग मिल जाए तो जल सकता है, अन्यथा केवल गरम होता है, जलता नहीं।

प्रश्न 16. ''बल्ब में स्थापित फिलामेण्ट में तेउकाय के जीवों की उत्पत्ति मानने में कोई शास्त्रीय रुकावट भी नहीं आती है। क्योंकि त्रस अथवा किसी भी प्रकार के जीवों के सजीव अथवा निर्जीव शरीरों में तथाविध कर्मवश तेउकाय के जीव उत्पन्न हो सकते हैं। ऐसा **सूयगडांग सूत्र** में बताया है। यह रहा उस शास्त्र का पाठ **'इहगतिया सत्ता नानाविहजोणिया जाव कम्मनियाणेणं तत्थ वुक्कमा नानाविहाणं तसथावराणं पाणाणं सरीरेसु सचित्तेसु वा अचित्तेसु वा अगणिकायत्ताए विउट्टंति'** (सूय. श्रुतस्कंध 2/अध्ययन 3/सूत्र 17) मतलब कि पृथ्वी, जल इत्यादि के जीव निश्चित प्रकार के पुद्गल को ही शरीर के रूप में स्वीकारते हैं। परन्तु ऐसा नियम अग्निकाय के लिए आगममान्य नहीं है। गैस, लकड़ी, रुई, कागज, प्लास्टिक, पेट्रोल, ओइल, घी, तैल, मिट्टी, पत्थर, इंट, केरोसीन, कपड़ा, रबर, कोयला, घास, रसायन, मुर्दा, लोहा, प्रकाशरूप (= उजही रूप) फोटोन आदि को अपने शरीर के रूप में परिवर्तित करते हैं। उसमें तेउकाय जीव उत्पन्न होते हुए दिखाई देते ही हैं। अग्निकाय के जीव गैस, लकड़ी आदि विविध पदार्थों को अपनी योनि स्वरूप बनाकर उनमें उत्पन्न होते हैं। इसलिए फिलामेण्ट इत्यादि में तेउकाय जीवों की उत्पत्ति मान सकते हैं। वास्तव में, **सूयगडांगसूत्र** की उपर्युक्त बात को श्री महावीरस्वामी भगवान की सर्वज्ञता सिद्ध करने के लिए एक महत्त्व का 'अंग' गिन सकते हैं।''[34]

उत्तर सूत्रकृतांग के उद्धरण से तेउकायिक जीव की उत्पत्ति के विषय में केवल इतना ही फलितार्थ निकलता है कि ''ये जीव त्रस, स्थावर, जीवों के शरीरों में, सचित्त में अथवा अचित्त में अग्निकायिक जीव के रूप में उत्पन्न हो सकते हैं।'' इससे यह तात्पर्य कभी नहीं निकलता कि ये जीव फिलामेण्ट में भी उत्पन्न हो सकते हैं, भले ही ऑक्सीजन न मिले। मूल बात तो यह है कि अग्निकायिक जीवों की योनि के लिए जो सामग्री अपेक्षित है, उनकी पूर्ति पहले होनी चाहिए। उस सामग्री के बिना गैस, लकड़ी आदि ज्वलनशील पदार्थों में भी अग्निकायिक जीव की न योनि बन सकती है, न अग्निकायिक जीव की उत्पत्ति हो सकती है।

तात्पर्य यह हुआ कि गैस, लकड़ी, रुई आदि को तेउकाय के जीव अपने शरीर के रूप में तभी परिवर्तित कर सकते हैं, जबकि तेउकाय की उत्पत्ति के लिए आवश्यक सारी शर्तें पूरी हों। जब तक यह शर्तें पूरी नहीं होती, हम गैस, लकड़ी, रुई आदि को तेउकाय नहीं मान सकते। यानी ज्वलनशील पदार्थ में जलने की क्षमता है, पर जब तक कंबश्चन (दहन) क्रिया पूर्ण नहीं होती तब तक वे निर्जीव पदार्थ हैं, किन्तु यह बात ज्वलनशील पदार्थ पर ही लागू होती है, अज्वलनशील पदार्थ पर नहीं, क्योंकि अज्वलनशील पदार्थ कंबश्चन के लिए अयोग्य हैं। जो ज्वलनशील पदार्थ हैं, वे भी

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

जब तक ignition point' प्राप्त नहीं होता, दहन-क्रिया नहीं कर सकते।[35] हवा (ऑक्सीजन) की आपूर्ति भी आवश्यक सीमा में होने पर ही वे ज्वलनशील होते हैं, सीमा के बाहर वे अज्वलनशील बन जाते हैं।[36]

प्रश्न 17. ''तत्त्वार्थ सूत्र की व्याख्या में श्री सिद्धसेनगणीवरश्री तो स्पष्ट रूप से कहते हैं कि **'तेजः-प्रकाशयोरेकत्वाभ्युपगमात्।'** (5/24) अर्थात् तेउकाय (= दीये की ज्योत आदि) और उसका प्रकाश (= रोशनी (उजाला) = कृत्रिम प्रकाश) दोनों एक ही वस्तु हैं यह शास्त्रमान्य है। इसलिए 'बल्ब में तो मात्र प्रकाश पुंज ही है। बल्ब के बाहर भी मात्र अजीव प्रकाशपुंज ही फैलता है' ऐसा नहीं माना जा सकता। इस तरह शास्त्रानुसार, तर्कानुसार, अनुभवानुसार तथा विज्ञान के अनुसार विचार करके परस्पर समन्वय किया जाए तो बल्ब का विद्युत्-प्रकाश बिजली की तरह सजीव अग्निकाय स्वरूप ही सिद्ध होता है।[37]

उत्तर तत्त्वार्थ की व्याख्या में **'प्रकाशयोरेकत्वाभ्युपगमात्'** का अर्थ तेउकाय और उसके प्रकाश की एकान्तिक एकता अभिप्रेत नहीं है। यह एकता सापेक्ष है। तेजोवर्गणा के पुद्गल और प्रकाश के पुद्गल दोनों ही पुद्गलद्रव्य की पर्याय हैं इस अपेक्षा से एक हैं, ऐसा माना है, न कि अग्नि और प्रकाश एक हैं। तत्त्वार्थ सूत्र मूल में ही प्रकाश को पुद्गल की पर्याय बताया है।[38] इस विषय की विस्तृत चर्चा आगे प्रश्न 28 के उत्तर में की जाएगी।

प्रश्न 18. आचारांग-निर्युक्ति में **श्री भद्रबाहुस्वामीजी** ने कहा है

'दहणे पयावण-पगासणे सेए य भत्तकरणे य।
बायर तेउकाए उपभोगगुण मणुस्साणं ॥' (गा. 121)

इस प्रकार से बादर तेउकाय के उपयोग को बताया है। जलाना, तपाना, प्रकाशित करना, पसीना होना, पकाना इत्यादि स्वरूप में मनुष्य के उपयोग में जिस प्रकार प्रसिद्ध अग्नि उपयोगी बनती है, उसी प्रकार बिजली-इलेक्ट्रीसीटी भी उन कार्यों में ज्यादा उपायेगी सिद्ध होती है। इस प्रकार तेउकाय और कृत्रिम बिजली के गुणधर्म, स्वरूप, स्वभाव, कार्य, लक्षण इत्यादि परस्पर महद् अंश में समान होने से कृत्रिम बिजली-इलेक्ट्रीसीटी सजीव तेउकाय स्वरूप ही सिद्ध होती है। तथा विद्युत्-प्रकाश तो (पृष्ठ 51) में बताए अनुसार अपने लक्षण द्वारा तेउकाय स्वरूप सिद्ध हो ही चुका है। तेउकाय का कारण वायु है। इसलिए उपर्युक्त कार्यकारणभाव ही बल्ब में तथाविध वायु का अस्तित्व सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है।

सामान्यतया एक नियम है कि जिस वस्तु का लक्षण जहां दिखाई देता है उस पदार्थ को उसी वस्तु के स्वरूप में मान्य करना चाहिए। जीव का लक्षण जहां दिखाई देता है उसका जीव के रूप में स्वीकार करना चाहिए। जड़ के लक्षण जहां दिखाई देते

हैं उन चीजों का जड़ रूप से स्वीकार करना चाहिए। **बृहत्कल्पभाष्यपीठिका** में **'को सुत्ति अग्नि उत्ते, किंलक्खणो? दहण पयणाई'** (बृ.क.भा.पीठिका, गा. 304) इस प्रकार दहन-पचन-प्रकाशन इत्यादि को तेउकाय जीव के लक्षण रूप में बताया गया है। (अनेक व्याख्या ग्रन्थों में इसी बात का प्रतिपादन है।) प्रस्तुत में विद्युत्-प्रकाश में तेउकाय के उपर्युक्त लक्षणों में से प्रकाशत्व, आतापना, दाहकत्व तो स्पष्ट रूप में देखने को मिलते ही हैं। इसलिए उसे तेउकाय जीव के रूप में ही स्वीकारना पड़ेगा। अन्यथा जड़-चेतन की व्यवस्था ही समाप्त हो जाएगी।

प्रथम कर्मग्रन्थ-व्याख्या में **श्री देवेन्द्रसूरिजी** महाराज ने भी कहा है कि अग्निकाय का शरीर ही उष्ण स्पर्श के उदय से गरम होता है। ये रहे उनके शब्द **'तेजस्कायशरीराणि एव उष्णस्पर्शोदयेन उष्णानि'** (गा. 44 वृत्ति)। मनुष्य क्षेत्र = अढी द्वीप की अपेक्षा से यह बात सुनिश्चित है। इसलिए शास्त्रानुसार गरमी, प्रकाश वगैरह अग्निकाय जीव के एक/दो लक्षण जहां दिखाई देते हैं फिर भी जिसका (उदाहरण के तौर पर शरीर की गरमी, जुगनू का प्रकाश, जठराग्नि, बुखार की गरमी, सूर्यप्रकाश, नरक की अग्नि, चन्द्रप्रकाश, मणि प्रकाश वगैरह) नाम लेकर शास्त्र निर्जीव के स्वरूप में सूचित करता हो, वह पदार्थ सजीव तेउकाय स्वरूप नहीं है यह बात बराबर है। किन्तु इसके अलावा जिन पदार्थों में गरमी, प्रकाश आदि तेउकाय जीव के लक्षण देखने को मिलते हैं उन्हें तो सजीव मानने में ही समझदारी है। अन्यथा लक्षण के आधार पर लक्ष्यभूत पदार्थ का प्रामाणिक निश्चित करने की शास्त्रोक्त व्यवस्था ही टूट जाएगी।

इसलिए केवल विज्ञान के ही आधार पर इलेक्ट्रीसीटी इत्यादि को निर्जीव रूप में बताने का दुःसाहस छद्मस्थ ऐसे हमें नहीं करना चाहिए। क्योंकि विज्ञान तो जगत् के सभी पदार्थों को इलेक्ट्रोन-प्रोटोन-न्यूट्रोन स्वरूप में ही देखता है। तब फिर हम जैन क्या पृथ्वी और जल को सजीव नहीं मानेंगे? साइन्स का प्रत्येक विद्यार्थी जानता है कि H_2O = Water। विज्ञान के सिद्धान्त के अनुसार बीज में से अंकुर का फूटना, वनस्पति पैदा होना इत्यादि एक प्रकार की रासायनिक प्रक्रिया ही है। अरे! **पन्नवणा** वगैरह आगमों में तेउकाय जीव के स्वरूप में प्रदर्शित की गई आकाशीय बिजली भी आधुनिक साइन्स के सिद्धान्त के अनुसार एक तरह से ऊर्जा का स्पन्दन ही है। इस तरह से यदि सर्वत्र विचार किया जाए तो जीव का अस्तित्व हम कहां मानेंगे। विज्ञान के पदार्थ से अथवा साइन्स के वर्तमान सिद्धान्त के आधार पर तो जल, अग्नि इत्यादि में तो जीवत्व की सिद्धि कदापि शक्य नहीं है।''[39]

उत्तर जैन दर्शन ने पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय और वनस्पतिकाय के जीवत्व को स्वीकार किया है, किन्तु ये ही जीव शस्त्र-परिणत होने पर निर्जीव हो जाते हैं। H_2O (पानी) शस्त्रपरिणत न हो तब तक सजीव है, शस्त्रपरिणत होने पर

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

वही निर्जीव है। पानी के H_2O रूप में सजीव या निर्जीव अवस्था में अन्तर नहीं आता। इसलिए जीवत्व के लक्षणों के आधार पर वही पदार्थ सजीव या निर्जीव हो जाता है। 'चेतना' लक्षण से सजीव और चेतनाशून्य वही पदार्थ निर्जीव बन जाएगा। प्रकाश, उष्मा, दाहकता आदि सजीव या निर्जीव के लक्षण नहीं बन सकते। ये केवल पौद्गलिक गुण हैं। इसीलिए प्रकाश, उष्मा, दाहकता होते हुए भी नरक की अग्नि अचित्त है। प्रश्नकर्ता ने भी स्वीकार किया है कि सूर्यप्रकाश, नरक की अग्नि आदि उपर्युक्त सारे लक्षणों के बावजूद भी अचित्त हैं। 'लक्षण' वही होता है, जो निश्चित रूप से वस्तु की पहिचान बने। यदि वही लक्षण विरोधी पदार्थ में भी है, तो उसे लक्षण नहीं कह सकते। न्यायशास्त्र में इसे अतिव्याप्त लक्षणाभास कहा जाता है।[40] यदि नरक की अग्नि[41], सूर्य का प्रकाश, तेजोलेश्या के अचित्त पुद्गल आदि अग्नि के सभी लक्षणों के बावजूद अचित्त या निर्जीव हैं, तो फिर किस आधार पर इलेक्ट्रीसीटी के इन्हीं लक्षणों वाले परिणमन को सचित्त मान लिया जाय? आकाशीय विद्युत् (विज्जू) की सचित्तता उसकी किस पर्याय में है, उसकी चर्चा हम कर चुके हैं। उससे पूर्व और पश्चात् वह सचित्त नहीं है। इस प्रकार आगमवचन की सापेक्षता को समझकर तथा 'लक्षण' शब्द की सीमा को समझकर ही प्रकाश, उष्मा, दाहकता की व्याप्ति अग्नि के साथ समझी जानी चाहिए, अन्यथा आगमवचन को भी सम्यग् रूप से समझ नहीं पाएंगे।

इलेक्ट्रीसीटी और अग्नि के लक्षणों की समानता और असमानता दोनों का विश्लेषण जरूरी है। छद्मस्थ व्यवहार के आधार पर ही यह निर्णय कर सकता है कि अमुक पदार्थ सचित्त है या नहीं। इसमें न तो दुःसाहस की बात होनी चाहिए और न रूढ़िवादिता की। 2500 वर्ष पूर्व जो स्थितियां थीं, उनके आधार पर व्यवहार के धरातल पर आगम का मार्गदर्शन हमें मिल सकता है। शेष तो हमें नई स्थितियों के परिप्रेक्ष्य में समीक्षा करनी होगी।[42] उस युग में यदि प्लास्टिक था ही नहीं, तो हम कैसे यह अपेक्षा करें कि प्लास्टिक के विषय में विधि-निषेध का प्रतिपादन आगम करे। उसी प्रकार इलेक्ट्रीसीटी के विषय में भी समझना होगा। विज्ञान की सापेक्षता को समझकर उसको काम में लेना होगा जिससे निर्णय तक पहुंचने में हमें उसका सहयोग मिले।

अब हम अग्नि ओर इलेक्ट्रीसीटी की तुलना करें जलाना, तपाना आदि गुण इलेक्ट्रीसीटी में नहीं हैं, जैसे अग्नि में हैं। तार में प्रवहमान विद्युत्-धारा किसी को जला नहीं सकती है, जब तक उसे जलाने की प्रक्रिया प्रारम्भ करने के लिए उपयुक्त सारी सामग्री नहीं मिलती। तार की इलेक्ट्रीसीटी को उपयुक्त संयोग मिलने पर ठण्डा करने के लिए भी काम में लिया जा सकता है। अपने आप में वह न जलाती है, न

ठण्डा करती है। इलेक्ट्रीसीटी के हजारों उपयोग होते हैं, जो अग्नि द्वारा नहीं किए जाते।

लक्षण के आधार पर भी इलेक्ट्रीसीटी को अग्नि सिद्ध नहीं किया जा सकता। यदि दहन, पचन, प्रकाशन आदि इलेक्ट्रीसीटी के लक्षण मान लिया जाए तो सदैव उनकी प्राप्ति उसमें होनी चाहिए, पर ऐसा नहीं है। केवल अमुक-अमुक परिस्थिति में ही इन कार्यों में उसका उपयोग किया जा सकता है। शेष कार्यों में उसका उपयोग करते समय इलेक्ट्रीसीटी न जलाती है, न पकाती है, न प्रकाश करती है। प्रत्युत, A.C., फ्रिज आदि में वह ठंड पैदा करती है। विद्युत्-ऊर्जा का गति-ऊर्जा, ध्वनि-ऊर्जा आदि में परिवर्तन स्पष्ट है। अग्नि की व्याख्या में जो बताया गया है, वह इलेक्ट्रीसीटी पर तभी लागू होता है जब इलेक्ट्रीसीटी को अग्नि के रूप में रूपान्तरित किया जाए (जैसे विद्युत् के चूल्हे के रूप में), अन्यथा नहीं।

प्रश्न 19. ''यहां एक दूसरी बात ध्यान में रखने योग्य है कि कोई भी वस्तु पुद्गल से बनी है इसलिए निर्जीव है यह सिद्ध नहीं हो सकता। हमारा शरीर भी औदारिक वर्गणा के पुद्गलों से बना है। तो क्या वह सर्वथा निर्जीव है? या फिर वह पुद्गलों का एक जीवयुक्त समूह है, इसलिए वर्ण इत्यादि पुद्गल के लक्षणों से युक्त होने के कारण विद्युत्-प्रकाश पौद्गलिक है ऐसा स्वीकार किया जाए तब भी उसकी निर्जीवता सिद्ध नहीं होती। इसके विपरीत 'उन पुद्गलों को बल्ब में किसने इकट्ठा किया?' यह प्रश्न खड़ा होता है। उसका कर्ता जीव ही हो सकता है। इसलिए वहां जीव की हाजरी अवश्य है ही।

इसी प्रकार जुगनू का प्रकाश चाहे निर्जीव हो, किन्तु जुगनू स्वयं तो जीव ही है। वरना मृत जुगनू क्यों सजीव जुगनू की भांति नहीं चमकता? तथा चन्द्रप्रकाश (अर्थात् चन्द्रमा का प्रकाश) निर्जीव होते हुए भी चन्द्रबिम्बगत पृथ्वीकाय के जीवों के अधीन है। ठण्डी चांदनी चन्द्रबिम्बगत पृथ्वीकाय जीवों के उद्द्योतनामकर्म को आभारी है। **पन्नवणासूत्र व्याख्या** में **श्रीमलयगिरिसूरिजी** ने बताया है कि **'यदुदयात् जन्तुशरीराणि अनुष्णप्रकाशरूपं उद्योतं कुर्वन्ति, यथा यति-देवोत्तरवैक्रिय-चन्द्र-नक्षत्र-तारक-विमान-रत्नौषधयः तद् उद्द्योतनाम'** (पद-23/उद्देश-2/सूत्र-540)

इससे निश्चित होता है कि चन्द्र, नक्षत्र, तारा, रत्न, औषधि इत्यादि का प्रकाश भी जीवसापेक्ष है, उद्योत-नामकर्म सापेक्ष है। इसलिए स्वयं प्रकाशित मणि इत्यादि का भी प्रकाश पृथ्वीकाय के जीव के आधार पर है ऐसा सिद्ध होता है। **पन्नवणासूत्र** के प्रथम पद में **'मरगय मसारगल्ले भुयमोयग इंदनीले य'** (1/15) ऐसा कहकर इन्द्रनील इत्यादि मणि बादर पृथ्वीकाय जीव के भेद रूप में बताए गए हैं। इसलिए उद्द्योत नामकर्म के उदय से रत्न इत्यादि में प्रकाश प्रकट होता है ऐसा निश्चित होता है।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

इस प्रकार साक्षात् या परम्परा से जीव के सहकार का स्वीकार किए बिना तो कहीं भी प्रकाश नहीं आ सकता। प्रकाश इत्यादि शक्ति आत्मा के विशेष प्रकार के प्रयत्न से प्रकट होती है ऐसा **आचारांगसूत्रवृत्ति** में **श्रीशीलांकाचार्यजी** ने सुनिश्चित अनुमान प्रमाण द्वारा बताया है। ये रहे उनके शब्द **'प्रकाशादिशक्तिरनुमीयते जीवप्रयोगविशेषाऽऽविर्भाविता'** (आ. निर्युक्ति. गा. 118 वृत्ति)।

सूर्यप्रकाश 100 प्रतिशत निर्जीव है, किन्तु वह जहां से निकलता है वह तो सूर्यमंडलगत सजीव पृथ्वीकाय ही है ऐसा **प्रथम कर्मग्रन्थ** की (गा. 44) टीका में **श्री देवेन्द्रसूरिजी** महाराज ने स्पष्ट रूप से बताया है। सूर्य के अन्दर से निकलता हुआ उष्ण प्रकाश तो सूर्यमंडलगत पृथ्वीकाय के जीवों के आतपनामकर्म के विपाकोदय को आभारी है। आतपनामकर्म का उदय सूर्यमंडलगत पृथ्वीकाय के जीवों में ही होता है। यह **पन्नवणासूत्र व्याख्या** में **श्री मलयगिरिसूरिजी** ने स्पष्ट रूप से बताया है। ये रहे वे शब्द **'तिद्वपाकश्च भानुमण्डलगतेषु पृथिवीकायिकेष्वेव** (23/2/540 वृत्ति)

जठराग्नि चाहे निर्जीव क्यों न हो? किन्तु व्यक्ति तो जिन्दा है न! मृत व्यक्ति को तो जठराग्नि नहीं होती। जब तक शरीर में जीव है तब तक वह खुराक को हजम कर सकता है। शरीर में जठराग्नि की उष्मा हो अथवा बुखार की गरमी हो, ये दोनों जीवित शरीर में ही होती है, मृत शरीर में नहीं। इसलिए वे जीव के ही आभारी हैं। यह बात **आचारांगसूत्र** की व्याख्या में **श्री शीलांकाचार्यजी** ने नीचे अनुसार बताई है **'ज्वरोष्मा जीवप्रयोगं नातिवर्तते, जीवाधिष्ठितशरीरकानुपात्येव भवति'** (अध्ययन-1, निर्युक्ति गा. 118 वृत्ति) अर्थात् बुखार की गरमी जीव के प्रयत्न के बिना नहीं होती है। जीव के प्रयत्न की वह अपेक्षा रखती ही है। क्योंकि वह जीवयुक्त शरीर में ही देखने को मिलती है।

यदि केवल पुद्गल के आधार पर ही जठराग्नि इत्यादि हो तो मुर्दे में भी जठराग्नि, बुखार इत्यादि दिखाई देने चाहिए। **आचारांगटीका** में **श्रीशीलांकाचार्यजी** ने तो स्पष्ट रूप से बताया है कि **'सर्वेषामात्मप्रयोगपूर्वकं यत उष्णपरिणामभाक्त्वं तस्मान्नानेकान्तः'** (प्रथम अध्ययन-निर्युक्ति गा. 118 वृत्ति) अर्थात् सभी उष्णपरिणाम जीव के प्रयत्न के ही आभारी है। ये प्रयत्न साक्षात् हो अथवा परंपरा से हो यह बात अलग है।

'नरक में अग्निकाय नहीं है' ऐसी उनकी बात सत्य है। किन्तु **द्रव्य लोकप्रकाश** के पांचवें सर्ग में **उपाध्यायश्री विनियविजयजी** महाराज ने स्पष्ट रूप से बताया है कि **'पृथ्व्यादिपुद्गलानां परिणामः स तादृशः'** (लोकप्रकाश, सर्ग-5/गा.182) अर्थात् नरक में अनुभव होने वाली उष्णता पृथ्वीकाय इत्यादि जीवों का परिणाम है।

भगवतीसूत्र की व्याख्या में **श्री अभयदेवसूरिजी** महाराज ने भी कहा है कि **'इह**

तेजस्कायिकस्येव परमाधार्मिकनिर्मितज्वलनसदृशवस्तूनां स्पर्शः तेजस्कायिकस्पर्शः अथवा भवान्तरानुभूततेजस्कायिकपर्यायपृथिवीकायिकादिस्पर्शापेक्षया व्याख्येयम्' (भ.श. 13/उद्देशो-4 वृत्ति पृष्ठ 607)।

मतलब कि 'परामधामी द्वारा विकुर्वित अग्नितुल्य वस्तु का स्पर्श हो तब अग्निकाय का ही स्पर्श किया ऐसा नारकी को लगता है। अथवा किसी पूर्वभव में अनुभव किए हुए अग्निकाय के पर्याय वाले पृथ्वीकाय इत्यादि जीवों का उष्ण स्पर्श नरक में होता है' **भगवतीसूत्र** की **व्याख्या** में **श्री अभयदेवसूरिजी** महाराज के उपर्युक्त शब्द द्वारा फलित होता है कि नरक में नारकी जीवों को जो गरमी का अनुभव होता है उसमें परमाधामी देवों का प्रयत्न काम करता है अथवा पृथ्वीकाय जीव का ही वह उष्ण स्पर्श है।

यहां नोंधपात्र बाबत यह है कि **भगवतीसूत्र** की **व्याख्या** में 'पृथिवीपुद्गलादिस्पर्शापेक्षया...' ऐसा कहने के बदले 'पृथिवीकायिकादिस्पर्शापेक्षया...' ऐसा कहा गया है। इसका अर्थ यह हुआ कि निर्जीव पृथ्वी के पुद्गलों का उष्ण स्पर्श नहीं बल्कि सजीव पृथ्वीकाय इत्यादि जीवों का उष्ण स्पर्श नरक में होता है। इस प्रकार 'नरक में अनुभव में आने वाले उष्ण स्पर्श का आश्रय जीव ही है और जीव के प्रयोग से ही यह उष्ण स्पर्श उत्पन्न होता है' ऐसा सिद्ध होता है। इस उष्ण स्पर्श का आश्रय जीव हो तभी तो 'भवान्तरानुभूततेजस्कायिकपर्याय' ऐसा विशेषण पृथ्वीकाय को लगाया जा सकता है।

नरक की गरमी का वर्णन करने के प्रसंग में वादीवेताल **शांतिसूरिजी महाराज** ने **उत्तराध्ययन बृहद् वृत्ति** में **'अग्नौ देवमायाकृते'** (15/48) ऐसा कहकर 'नरक में जो उष्ण स्पर्श अनुभव में आता है वह देवमायाकृत होता है' यह बताकर 'वहां कृत्रिम उष्ण स्पर्श परमाधामी देव के प्रयत्न को आभारी है' ऐसा सूचित किया है। तथा वही आगे **'तत्रोष्णः पृथिव्यनुभाव'** (19/50) यह कहकर नरक में जो स्वाभाविक गरमी होती है वह पृथ्वीकाय जीवों का उष्ण स्पर्श है ऐसा बताया है।

पन्नवणासूत्र की व्याख्या में **श्रीमलयगिरिसूरिजी** महाराज भी **'नरकावासेषु उष्णस्पर्शपरिणामानि उपपातक्षेत्राणि'** (पद-9, सू. 150, पृष्ठ 225) यह कहकर 'नरक की गरमी वहां के क्षेत्र का परिणाम है' ऐसा सूचित किया है। इससे सिद्ध होता है कि नरक की स्वाभाविक उष्णता पृथ्वीकाय जीवों का गुणधर्म है।

भगवती सूत्र के 10वें शतक के दूसरे उद्देशक की टीका में **श्रीअभयदेवसूरिजी महाराज** ने भी कहा है कि **'नारकाणां यदुपपातक्षेत्रं तदुष्णस्पर्शपरिणतम्'** (पृ. 496) अर्थात् नरक में उपपात क्षेत्र की उष्णता होती है। इस प्रकार पृथ्वीकाय जीव का ही वह उष्ण परिणाम साबित होता है। किन्तु जीव के सहयोग बिना तो वहां उष्ण

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

स्पर्श-दाह इत्यादि नहीं हो सकता। यह बात बिलकुल निश्चित ही है।

यहां एक और बात करनी आवश्यक है कि **भगवतीसूत्र** में **'कयरे णं भंते! अचित्ता वि पोग्गला ओभासंति उज्जोवेंति तवेंति पभासेंति? कालोदाई! कुद्धस्स अनगारस्स तेयलेस्सा निसट्ठा समाणी दूरं गंता दूरं निपतइ, देसं गंता देसं निपतइ, जहिं जहिं च णं सा निपतइ तहिं तहिं च णं ते अचित्तादि पोग्गला ओभासंति जाव पभासंति'** (भगवती 1/10/380) ऐसा कहने से जो स्वयं प्रकाश देता हो, दूसरों को प्रकाशित करता हो, दूसरों को तपाता हो तथा अपने उत्पत्तिस्थान से दूर जाकर गिरे और दूसरों को जलाए फिर भी स्वयं निर्जीव हो ऐसे पदार्थ के रूप में तेजोलेश्या का उल्लेख किया गया है किन्तु बिजली इत्यादि किसी दूसरे पदार्थ का उल्लेख नहीं किया गया। यदि बिजली इत्यादि पदार्थ कभी निर्जीव होने की सम्भावना होती तो **भगवतीसूत्र** में सर्वज्ञ भगवंत ने उसका निर्देश अवश्य किया होता। परन्तु बिजली इत्यादि का वैसे निर्जीव पुद्गल रूप में उल्लेख नहीं किया। यह बात उल्लेखनीय है।

और एक बात, तेजोलेश्या निर्जीव होते हुए भी तेजोलेश्या के पुद्गलों को एकत्रित करके छोड़ने वाला तो जीव ही है। परन्तु बल्ब में न तो तेजोलेश्या होती है और न ही तेजोलेश्या को छोड़ने वाला जीव, कि जिनके प्रभाव से वहां निर्जीव प्रकाश-गरमी इत्यादि उत्पन्न हो सके। प्रस्तुत में जीव के सहकार के बिना तो बल्ब में प्रकाश अथवा गरमी इत्यादि कैसे पैदा हो सकते हैं? क्योंकि 'सभी उष्ण परिणाम जीव के प्रयत्न से ही उत्पन्न होते हैं' ऐसा अभी हमने (पृष्ठ-59) **आचारांग व्याख्या** के अनुसार देखा है। बल्ब में तो जुगनू इत्यादि की भांति अथवा नरक में पृथ्वीकाय वगैरह की भांति किसी जीव से सहयोग प्राप्त होने की कोई सम्भावना तो है ही नहीं। सूर्य के विमान में रहते हुए पृथ्वीकाय जीव की तरह आतप-नामकर्म का उदय, अथवा रत्न, मणि, चन्द्र के विमान या जुगनू इत्यादि की तरह उद्योत-नामकर्म का उदय किसी बल्ब में नहीं होता। इसलिए सूर्यप्रकाश, चन्द्रप्रकाश, जुगनू का प्रकाश इत्यादि की तरह बल्ब के प्रकाश को निर्जीव नहीं माना जा सकता।

आतपनामकर्म, उद्योतनामकर्म, तेजोलेश्या अथवा उष्णस्पर्शनामकर्म के उदय के बिना अन्य किसी प्रकार से तो गरमी-प्रकाश इत्यादि की उत्पत्ति सम्भव नहीं है। बल्ब में सिर्फ विस्रसापरिणामजन्य गरमी, प्रकाश इत्यादि को मान नहीं सकते। (प्रस्तुत में आगमविद् प्राज्ञ पुरुषों को एक बात जरूर नोट करने योग्य है कि आकाशीय बिजली भी मात्र विस्रसापरिणामजन्य नहीं है। क्योंकि वह पन्नवणा, भगवतीसूत्र इत्यादि मूल आगम के अनुसार तेउकाय जीवस्वरूप होने से बिजली की उत्पत्ति में जीव का प्रयत्न भी सम्मिलित ही है। **भगवती सूत्र** आठवें शतक के प्रथम उद्देश में मिश्रपरिणाम युक्त (वैस्रसिक + प्रायोगिक) जो द्रव्य बताए गए हैं उनमें ही

आकाशीय बिजली इत्यादि को सम्मिलित करना उचित है।) अन्यथा तो वह मनुष्य के प्रयत्न के बिना परमाणु गति की तरह कभी भी अथवा बादल की तरह निश्चित समय पर बल्ब में अपने आप उत्पन्न हो जाएंगे और चले जाएंगे ऐसा स्वीकार करना पड़ेगा। किन्तु वास्तविकता यह नहीं है। इसलिए पारिशेषन्याय से उष्णस्पर्श नामकर्म के उदय वाले बादर अग्निकाय जीवों का ही वहां स्वीकार करना रहा। क्योंकि **'उष्ण-स्पर्शादिनामकर्मोदयाद् दीप्यते'** इस प्रकार **बृहत्कल्पभाष्यवृत्ति** (भाग-3/गा. 2146 वृत्ति) के वचन अनुसार उष्णस्पर्शादि नामकर्म के उदय से अग्नि प्रकाशित होती है यह बात शास्त्र-सिद्ध है।"[43]

उत्तर हम इस लेख के प्रथम भाग के दूसरे प्रभाग में 'जीव और पुद्गल का सम्बन्ध' के अन्तर्गत इस विषय की विस्तृत चर्चा कर चुके हैं। वहां यह स्पष्ट हो गया था कि बादल, बिजली आदि सभी सादि वैस्रसिक बंध-परिणाम हैं।[44] उसी सन्दर्भ में इस प्रकार उत्तर समझना होगा।

सर्वप्रथम तो यह समझना है कि सारी सृष्टि ही मूलतः तो जीव और पुद्गल के विविध संयोगों से ही चलती है। जैन दर्शन के अनुसार "जीव और पुद्गलों के विविध संयोगों से यह लोक विविध प्रकार का है। लोक की इस विविधरूपता को ही सृष्टि कहा जाता है। जीव और पुद्गल का संयोग अपश्चानुपूर्विक (पौर्वापर्यशून्य) है। संयोग तीन प्रकार का है 1. कर्म, 2. शरीर, 3. उपग्रह। उपग्रह आहार, वाणी, मन, उच्छ्वासनिःश्वास आदि उपकारक शक्तियां।[45] परम्पर या अनन्तर रूप में सृष्टि की सभी क्रियाओं में जीव और पुद्गल का संयोग निमित्तभूत बनता है। इस माने में तो कोई भी पदार्थ निर्जीव नहीं माना जा सकता। मनुष्य द्वारा निःसृत तेजोलेश्या के पुद्गल के उष्मा एवं प्रकाश के लिए मनुष्य का आतपनामकर्म या उष्णनामकर्म कहां तक जिम्मेदार हो सकता है? जीव के जो नामकर्म उदय में आता है, वह उसके शरीर के साथ जुड़ता है। तेजोलेश्या के पुद्गल के प्रकाश और उष्णता छोड़ने वाले मनुष्य के नामकर्म से कैसे जुड़ेगा? यदि जुड़ता ही है तो फिर इलेक्ट्रीसीटी की प्रक्रिया में प्रयुक्त पुद्गल भी परम्पर रूप में सुचालक पदार्थ (धातु) यानी पृथ्वीकायिक जीव के द्वारा मुक्त पुद्गल माने जा सकते हैं। विद्युत् का उत्पादन मनुष्य द्वारा निर्मित यन्त्रों से है, इसलिए क्या मनुष्य का नामकर्म उसके लिए जिम्मेदार माना जाएगा? यदि नहीं, तो फिर तेजोलेश्या में मनुष्य के नामकर्म को कैसे जिम्मेदार माना जाएगा? जब जैन दर्शन विस्रसा परिणमन द्वारा अचित्त (निर्जीव) पुद्गलों के परिणमन को स्वीकृति दे रहा है, तो फिर उसके लिए केवल जीव को ही सर्वत्र जिम्मेदार मानना कहां तक संगत होगा?

जहां-जहां जीव का शरीर स्वयं आतप, उद्योत आदि के रूप में है, वहां-वहां वह

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

नामकर्म का उदय है, ऐसा अभिप्राय विभिन्न उद्धृत वचनों का समझना चाहिए। किन्तु जहां-जहां पुद्गल ऐसे रूप में हैं, वहां उन्हें पौद्गलिक परिणमन ही स्वीकार करना चाहिए।

जैन दर्शन के अनुसार बतलाए गए तीन प्रकार के परिणमनों में प्रायोगिक और मिश्र परिणमनों में अनन्तर रूप में जीव का कर्तृत्व होता है, किन्तु वैस्रसिक परिणमन में अनन्तर रूप में केवल पौद्गलिक परिणमन ही कारणभूत होता है। ऊपर उद्धृत टिप्पण संख्या 41 में सूत्रकृतांग चूर्णि (पृष्ठ 128, 129) के जो पाठ दिए गए हैं, उनमें नारक की अग्नि को स्वभाव से उष्ण एवं अचेतन बतलाया गया है। इन्हें अनन्तर रूप में जीव कृत नहीं माना जा सकता। प्रश्न में परम्पर और अनन्तर के भेद को समझने की कोशिश नहीं की गई, इसीलिए सर्वत्र जीव के साथ सीधे ही पौद्गलिक परिणमनों को जोड़ा है। फिर तो बादल, जो अप्कायिक जीव का परिणमन है और जो आकाशीय बिजली के उत्पादक है, को भी मिश्र परिणमन मानना चाहिए। पर बादल को तो वैस्रसिक परिणमन में माना है। तब फिर अन्य पौद्गलिक परिणमनों को वैस्रसिक मानने में कहां आपत्ति है? षट्खंडागम में सादि वैस्रसिक बंध की चर्चा में इन्हें वैस्रसिक ही माना गया है, जिसकी चर्चा हम कर चुके हैं। (देखें प्रथम भाग, प्रथम प्रभाग)

इसलिए यह नियम बतलाना उचित नहीं है कि जीव के द्वारा परिणत होने पर ही पुद्गल प्रकाश आदि करते हैं।

प्रश्न में उद्धृत भगवती 1/10/380 के पाठ से स्पष्ट है कि अजीव पुद्गलों में स्वयं यह शक्ति है। ''तैजस वर्गणा को तैजस शरीर तक सीमित करना संगत नहीं है। जीव तैजस वर्गणा के समस्त पुद्गलों का जीव के द्वारा सदा-सर्वदा ग्रहण और परिणमन आवश्यक नहीं है।''[46]

यहां ऐसा कहना कि ''बिजली इत्यादि किसी दूसरे पदार्थ का निर्जीव के रूप में उल्लेख नहीं है'' तर्क-संगत नहीं है।

आचार्य श्री महाप्रज्ञजी ने लिखा है ''तर्क की अपनी मर्यादा होती है। इस विषय में हरिभद्र सूरि के षड्दर्शन की वृत्ति में उद्धृत श्लोक बहुत महत्त्वपूर्ण है

आग्रही बत निनीषति युक्तिः, तत्र यत्र मतिरस्य निविष्टा।
पक्षपातरहितस्य तु युक्तिः, यत्र तत्र मतिरेति निवेषम् ॥

अचित्त पुद्गल प्रकाश करते हैं। इसमें विद्युत् का उल्लेख नहीं है, यह प्रश्न यहां प्रासंगिक नहीं है। प्रासंगिक इतना ही है कि अचित्त पुद्गल प्रकाश करते हैं। वे जीव के द्वारा गृहीत हो चुके हैं, इसलिए प्रकाश करते हैं यह तर्क भी संगत नहीं है।

प्रकाश, आतप, उद्द्योत, छाया ये सब पुद्गल के लक्षण हैं।

शब्द-बंध-सौक्ष्म्य-स्थौल्य-संस्थान-भेद-तमश्छायातपोद्द्योतवन्तश्च।

(तत्त्वार्थवार्तिक 5/24)

सद्दंधयारउज्जोओ पहा छाया तवे इ वा।
वण्णरसगंधफासा पुग्गलाणं तु लक्खणं ॥ (उत्तरज्झयणाणि 28/12)

अन्धकार पुद्गल का लक्षण है। वह जीव के द्वारा गृहीत होकर अन्धकार नहीं बनता। प्रकाश पुद्गल का लक्षण है। वह जीव के द्वारा गृहीत होकर प्रकाश बनता है, यह कोई नियम नहीं है। पुद्गलों का परिणमन जीव के प्रयोग से भी होता है और स्वभाव से भी होता है।''[47]

यदि उक्त तर्क को माना जाए, फिर तो आगमों में वर्तमान युगीन विज्ञान आदि की सारी बातें आनी चाहिए थी। सर्वज्ञ होने के नाते उनसे वर्तमान की सारी घटनाएं छिपी नहीं हैं। फिर उन सबका वर्णन क्यों नहीं मिलता?

प्रश्न 20. इलेक्ट्रीसीटी को निर्जीव बताने वाला आगम पाठ कौन-सा है?[48]

उत्तर यदि किसी आगम में जब यह पाठ नहीं है कि 'इलेक्ट्रीसीटी' सचित्त तेउकाय है, तब यह अपेक्षा करना कि उसे निर्जीव सिद्ध करने वाला आगम पाठ कौन-सा है, कैसे सम्भव है? इसी प्रकार ''यदि इलेक्ट्रीसीटी निर्जीव होती, तो सर्वज्ञ द्वारा जरूर यह बात आगम में प्रतिपादित हो जाती (देखें प्रश्न)'' इस तर्क के प्रतिपक्ष में क्या यह नहीं कहा जा सकता है कि ''यदि इलेक्ट्रीसीटी सजीव होती, तो आगम में यह तथ्य जरूर प्रतिपादित हो जाता''? इस प्रकार के व्यर्थ तक-वितर्क से क्या हम किसी नतीजे पर पहुंच सकते हैं?

हमें जो चिन्तन करना है वह यह होना चाहिए कि आगम में ऐसे कौन-से तथ्य उपलब्ध हैं जिनके आधार पर यह बहुत स्पष्ट अनुमान किया जा सके कि इलेक्ट्रीसीटी सजीव है या इलेक्ट्रीसीटी निर्जीव है।

हमने प्रारम्भ में ही इलेक्ट्रीसीटी और स्निग्धत्व-रूक्षत्व नामक (पुद्गल-गुणों का विस्तार से जो विवेचन किया था, वह आगम आधारित ही है। (देखें, प्रथम भाग का प्रथम प्रभाग)।

उसी विवेचन के परिप्रेक्ष्य में स्निग्ध-रूक्ष-स्पर्श और इलेक्ट्रीसीटी की समानता से यह स्पष्ट होता है कि इलेक्ट्रीसीटी मूलतः पुद्गल का मौलिक गुण है। जैन आगमों में स्निग्ध-रूक्ष-स्पर्श के आधार पर ही परमाणु से स्कन्ध बनने की प्रक्रिया को बताया गया है। यह बात बहुत ही महत्त्वपूर्ण है कि जैन दर्शन और विज्ञान दोनों ने सभी

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

पदार्थों की रचना में स्निग्ध-रूक्ष-स्पर्श अथवा ऋण (Negative) और धन (Positive) इलेक्ट्रीक चार्ज को ही आधारभूत माना है। इससे बढ़कर और क्या आगम प्रमाण इलेक्ट्रीसीटी को निर्जीव मानने के लिए हो सकता है? जैन दर्शन ने शरीर में दस प्राण के रूप में जैव विद्युत् की ऊर्जा को स्वीकार कर तथा अब वैज्ञानिकों ने जैव विद्युत् को समस्त शारीरिक क्रिया का आधार बनाकर स्पष्ट रूप से निरूपण किया है कि यह पौद्गलिक शक्ति किस प्रकार जीव द्वारा प्रयुक्त होती है और सभी प्राणी इस प्राण यानी जैव विद्युत् की ऊर्जा से ही जीवित है। इन आधारों पर कहीं पर भी कोई शंका नहीं रह जाती कि मूलतः अपने आप में इलेक्ट्रीसीटी भौतिक या पौद्गलिक परिणमन है, ऊर्जा है। इसी के विभिन्न परिणमन ध्वनि, प्रकाश, गति, चुम्बकत्व, उष्मा आदि के रूप में होने का तात्पर्य यही है कि ये सारे भौतिक ऊर्जा के रूप में इलेक्ट्रीसीटी के रूपान्तरण-स्वरूप उत्पन्न हो सकते हैं। जब तक इलेक्ट्रीसीटी का रूपान्तरण कंबश्चन द्वारा अग्नि का रूप धारण नहीं करता, तब तक वह पौद्गलिक ही है। पदार्थ में विद्यमान स्थित विद्युत् (static electricity), धातु के तार में प्रवहमान प्रवाह रूप विद्युत् तथा ऑक्सीजन और ज्वलनशील पदार्थ के अभाव में होने वाले 'डीस्चार्ज' रूप विद्युत् आदि अपने आप में निर्जीव हैं।

प्रश्न 21. ''हालांकि **ओघनिर्युक्ति** वगैरह में निर्जीव तेउकाय के नाम मिलते हैं। परन्तु उन निर्जीव तेउकाय के नामों में कहीं भी बिजली का नाम तो देखने को नहीं मिलता। इसके विपरीत बिजली का निश्चय से सजीव होने का उल्लेख **ओघनिर्युक्ति** में **'विज्जुयाइ निच्छइओ'** (गा. 358) इन शब्दों से तथा **पिंडनिर्युक्ति** में **'विज्जुयाइ निच्छयओ'** (गा. 36) इन शब्दों द्वारा मिलता है। **ओघनिर्युक्तिव्याख्या** में **द्रोणाचार्यजी** लिखते हैं कि **'विद्युदादिको नैश्चयिको भवति'** (गा. 359 वृत्ति) तथा **पिंडनिर्युक्तिव्याख्या** में समर्थ टीकाकार **श्रीमलयगिरिसूरिजी महाराज** ने भी अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि **'विद्युदुल्का-प्रमुखः तेजस्कायो निश्चयतः सचित्तः'** (गो. 42 वृत्ति)

ज्यादा महत्त्व की एक बात यह है कि अत्यन्त लाल तपे हुए महाकाय लोहे के गोले के एकदम अन्दर शुद्ध अग्निकाय के जीव तथा ईंट की भट्ठी के नीचे के मध्य भाग में निश्चय से बादर तेउकाय के जीव होते हैं यह बात आगमज्ञों के लिए प्रसिद्ध है। **श्रीज्ञाताधर्मकथाव्याख्या** में **श्रीअभयदेवसूरिजी महाराज** ने **'शुद्धाग्निः अयस्पिण्डान्तर्गतः अग्निः'** (1/16/163) ऐसा बताया है तथा **जीवाभिगमसूत्रव्याख्या** में और **पन्नवणाव्याख्या** में **श्री मलयगिरिसूरिजी महाराज** ने बताया है कि **'शुद्धाग्निः अयःपिण्डादौ'** (जीवा. 1/33 + पन्न. पद-1/31 वृत्ति) अर्थात् एकदम लाल तपे हुए लोहे के गोले इत्यादि में शुद्ध अग्निकाय जीव होते हैं।' मलधारी **श्री हेमचन्द्रसूरिजी** महाराज ने **जीवसमासव्याख्या** में **'अयस्पिण्डाद्यनुविद्धो ज्वालादिरहितः अग्निः'** (गा. 32) ऐसा कहकर गरम लोहे के गोले में अग्निकाय जीव का स्वीकार किया है। **दशवैकालिकवृत्ति** में **श्री हरिभद्रसूरिजी**

महाराज ने **'अग्निं अयःपिण्डानुगतम्'** (द.वै. 8/18 वृत्ति) ऐसा कहकर अत्यन्त तप्त और एकदम लाल बन चुके लोहे के गोले के भीतर में बादर अग्निकाय जीव होते हैं ऐसा सूचित किया है। इसीलिए वहां ऐसे गरम लोहे के गोलों का संघट्टा (स्पर्श) न हो जाए इस आशय से सावधानी रखने की सूचना साधु भगवंतों को दी है।

पिंडनिर्युक्ति में अत्यन्त स्पष्ट रूप से **श्री भद्रबाहुस्वामीजी** द्वारा कहा गया है कि **'इट्ठगपागाईण बहुमज्झे, विज्जुयाइ निच्छइओ'** (गा. 36) अर्थात् ईंट की भट्ठी के मध्य भाग में निश्चय से सजीव बादर तेउकाय होते हैं। **ओघनिर्युक्ति** में भी **श्री भद्रबाहुस्वामीजी** ने **'इट्ठगपागाइणं बहुमज्झे, विज्जुयाइ निच्छइओ'** (गा. 359) ऐसा बताया है। तदनुसार **गच्छाचारपयन्नाव्याख्या** में **श्रीवानर्षिगणी** ने भी **'इष्टकापाकादिमध्यगो विद्युदादिकश्च नैश्चयिकः'** (गा. 75) ऐसा कहकर 'ईंट की भट्ठी वगैरह के मध्य भाग में स्थित अग्नि तथा बिजली इत्यादि नैश्चयिक सजीव अग्निकाय जीव है' ऐसा स्पष्ट रूप से बताया है।

'जत्थ इंगाला कज्जति सा इंगालकारी, तत्थ य वाऊक्कातो' (16/1/662) इस तरह **भगवतीचूर्णि** के वचनानुसार जहां अंगारे बनाने में आते हैं वहां वायुकाय होता है' इस प्रकार के सिद्धान्त अनुसार तथा **भगवतीसूत्र** में **'न विणा वायुकाएणं अगणिकाए उज्जलइ'** (शतक-16/उद्देशो-1/सूत्र-662) इस प्रकार बताए अनुसार 'वायु के बिना अग्नि जल नहीं सकती' इस नियम के मुताबिक एकदम लाल हो चुके गरम लोहे के महाकाय गोले के मध्यभाग में, ईंट की भट्ठी के अन्दर के मध्य भाग में, कुम्हार की भट्ठी के मध्य भाग में बादर वायुकाय का अस्तित्व.....मान्य करना पड़ेगा ही। वहां वायुकाय किस प्रकार पहुंचेगा? अपने अनुभव में आने वाले वायु का तो दिवाल इत्यादि द्वारा प्रतिघात/प्रतिबंध/अवरोध होता है। इसलिए अत्यन्त तप्त नक्कर लोहे के बड़े गोले के मध्य भाग में तथाविध अप्रतिघाती (लोहे आदि नक्कर धातुएं भी जिसके आवागमन में अवरोध-अटकाव न करें ऐसे) वायु का अस्तित्व सिद्ध होता है।

सात लाख योनि वाले विविध वायु के सापेक्ष भाव से प्रतिघाती-अप्रतिघाती इत्यादि प्रकार मानने में किसी भी प्रकार का आगम विरोध नहीं आता है। अत्यन्त लाल तपे हुए नक्कर (ठोस) लोहे के बड़े गोले में किसी भी प्रकार से जिसका प्रतिघात/अवरोध (रूकावट) नहीं हो सकता, ऐसे वायु का प्रवेश हो सकता है तो खोखले/पोले बल्ब में तथाविध अप्रतिघाती वायु का प्रवेश क्यों नहीं हो सकता?

'पुढवी दग अगणि मारुअ इक्किक्के सत्तजोणि लक्खाओ' (गा. 968) ऐसा कहकर **प्रवचनसारोद्धार** ग्रन्थ में माननीय **श्री नेमिचन्द्राचार्यजी** ने अग्निकाय की तरह वायुकाय की भी सात लाख योनि बताई है। इसलिए विविध प्रकार के वायु में से कुछ निश्चित प्रकार के वायु का अस्तित्व और प्रवेश तो लाल तपे हुए लोहे के गोले, भट्ठी

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

के अन्दर के मध्यभाग, बल्ब इत्यादि में आगमानुसार भी स्वीकार किए बिना नहीं चल सकता।''[49]

उत्तर ओघनिर्युक्ति, पिण्डनिर्युक्ति तथा व्याख्या ग्रन्थों (जैसे पिण्डनिर्युक्ति व्याख्या, ज्ञाताधर्म कथा व्याख्या, पण्णवणा व्याख्या, जीव समास व्याख्या, दशवैकालिक वृत्ति, गच्छाचारपयन्ना व्याख्या आदि) में जो उल्लेख है, उनमें मूल पण्णवणा, दशवैकालिक आदि आगमों में प्रतिपादित अग्नि के स्वरूप को ही पुष्ट किया गया है, नया कुछ भी नहीं है।

शुद्धाग्नि अयस्पिण्डान्तर्गत ज्वाला-विरहित अग्नि या निरिन्धन अग्नि के रूप में प्रतिपादित है। यह भी अन्य अग्नि की तरह ही अग्नि में लोहे आदि को तपाने पर उत्पन्न होती है।

डॉ. जे. जैन के अनुसार ''अभिधान राजेन्द्र कोश पृष्ठ-2347 पर तेउकाय की व्याख्या में इन्हीं सब ग्रन्थों के आधार पर अग्निकाय के तीन प्रकार बताए हैं

1. सचित्त
2. अचित्त
3. मिश्र

सचित्त के दो प्रकार हैं 1. निश्चय, 2. व्यवहार

निश्चय से सचित्त के उदाहरण हैं ईंट की भट्टी या कुम्हार की भट्टी का मध्य भाग अथवा आकाशीय विद्युत् lightning)। ये अग्नियां उत्कट ताप, प्रकाश, ज्वलनशील पदार्थों की विद्यमानता तथा ऑक्सीजन के प्रयोग से प्रकट होती हैं। इनका अग्निकायिक स्वरूप स्पष्ट ही है।

व्यवहार सचित्त अग्नि में अंगारें, ज्वाला-रहित अग्नि आदि का समावेश है।

मिश्र तेउकाय में मुर्मुर (अग्नि में से निकलने वाली चिनगारियां) आदि हैं।

अचित्त तेउकाय में अग्नि द्वारा पके हुए भोजन, तरकारियां, पेय पदार्थ एवं अग्नि द्वारा तैयार की गई लोहे की सूई आदि वस्तुएं तथा राख, कोयला आदि अचित्त तेउकाय है। भगवती सूत्र, शतक 5, उद्देशक 2 के अनुसार

''भन्ते! ओदन, कुल्माष और सुरा इन्हें किन जीवों का शरीर कहा जा सकता है?''

''गौतम! ओदन, कुल्माष और सुरा में जो सघन द्रव्य हैं, वे पूर्व पर्याय-प्रज्ञापन की अपेक्षा से वनस्पति-जीवों के शरीर हैं। उसके पश्चात् वे शस्त्रातीत और शस्त्र-परिणत तथा अग्नि से श्यामल, अग्नि से शोषित और अग्नि-रूप में परिणत होने पर उन्हें

अग्नि-जीवों का शरीर कहा जा सकता है। सुरा में जो द्रव द्रव्य हैं, वे पूर्व पर्याय-प्रज्ञापन की अपेक्षा से जल-जीवों के शरीर हैं। उसके पश्चात् शस्त्रातीत यावत् अग्निरूप में परिणत होने पर उन्हें अग्नि-जीवों का शरीर कहा जा सकता है।''

''भन्ते! लोहा, तांबा, रांगा, सीसा, पाषाण और कसौटी इन्हें किन जीवों का शरीर कहा जा सकता है?''

''गौतम! लोहा, तांबा, रांगा, सीसा, पाषाण और कसौटी ये पूर्व पर्याय-प्रज्ञापन की अपेक्षा से पृथ्वी-जीवों के शरीर हैं। उसके पश्चात् शस्त्रातीत यावत् अग्निरूप में परिणत होने पर उन्हें अग्नि-जीवों का शरीर कहा जा सकता है।''

''भन्ते! अस्थि, दग्ध अस्थि, चर्म, दग्ध चर्म, रोम, दग्ध रोम, सींग, दग्ध सींग, खुर, दग्ध खुर, नख और दग्ध नख इन्हें किन जीवों का शरीर कहा जा सकता है?''

''गौतम! अस्थि, चर्म, रोम, सींग, खुर और नख ये त्रस प्राण-जीवों के शरीर हैं। दग्ध अस्थि, दग्ध चर्म, दग्ध रोम, दग्ध सींग, दग्ध खुर और दग्ध नख ये पूर्व पर्याय-प्रज्ञापन की अपेक्षा त्रस-प्राण जीवों के शरीर हैं। उसके पश्चात् शस्त्रातीत यावत् अग्नि-रूप में परिणत होने पर इन्हें अग्नि-जीवों का शरीर कहा जा सकता है।''

''भन्ते! अंगार, राख, बुसा और गोबर इन्हें किन जीवों का शरीर कहा जा सकता है?''

''गौतम! अंगार, राख, बुसा और गोबर ये पूर्व-पर्याय-प्रज्ञापन की अपेक्षा से एकेन्द्रिय जीवों द्वारा भी शरीर-प्रयोग में परिणमित भी है, यावत् पंचेन्द्रिय जीवों द्वारा भी शरीर-प्रयोग में परिणमित है। उसके पश्चात् वे शस्त्रातीत यावत् अग्नि-रूप में परिणत होने पर उन्हें अग्नि-जीवों का शरीर कहा जा सकता है।''[50]

भगवती-भाष्य[51] में आचार्य श्री महाप्रज्ञ ने इन सूत्रों की व्याख्या इस प्रकार की है

''प्रस्तुत आलापक में परिणामवाद अर्थात् तद्रूप अथवा तन्मय पर्यायवाद का निरूपण है। इस सिद्धान्त का प्रयोग दर्शन और ध्यान दोनों क्षेत्रों में होता है। आचार्य कुन्दकुन्द के अनुसार द्रव्य जिस भाव में परिणत होता है, तत्काल वह तन्मय बन जाता है।[52] आत्मा जिस भाव में परिणत होता है, वह उस भाव के साथ तन्मय हो जाता है। यह ध्यान का सिद्धान्त है।[53]

पूर्व पर्याय में जो वनस्पति-जीव का शरीर था, वह अग्निरूप में परिणत होकर अग्नि-जीव का शरीर बन जाता है। यह उत्तरवर्ती पर्याय है। यह पर्याय-प्रवाह का एक निदर्शन है। कोई भी द्रव्य एक रूप में नहीं रहता। उसमें पर्याय का प्रवाह सतत्

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

गतिशील है। इसी सिद्धान्त के अनुसार वनस्पति-जीव, अप्काय-जीव, पृथ्वी-जीव और त्रसकाय-जीव के शरीर अग्नि-जीव के शरीर-रूप में बदल जाते हैं।

पर्याय-परिवर्तन से होने वाले भावान्तर की चर्चा न्याय और वैशेषिक दर्शन में भी मिलती है। अग्नि के संयोग से पृथ्वी में कुछ गुण-विशेष का प्रादुर्भाव होता है। इसे 'पाकजगुण' कहा जाता है। उनके अनुसार जल, वायु और अग्नि में पाकज गुण नहीं होता।

पाकज गुण परमाणुओं के भीतर पैदा होता है या अवयवी द्रव्य में? इस प्रश्न को लेकर नैयायिकों और वैशेषिकों में मतभेद है। वैशेषिकों का मत है कि अग्नि का संयोग होने पर घट के समस्त परमाणु पृथक्-पृथक् हो जाते हैं और फिर नवगुणोपेत होकर (पककर) वे संलग्न होते हैं। इस मत का नाम 'पीलुपाक' है।

नैयायिक इस मत का विरोध करते हैं। उनका कहना है कि यदि घट के सभी परमाणु अलग-अलग हो गए, तब तो घट का विनाश ही हो गया। दुबारा परमाणुओं के जुटने से एक दूसरे ही घट का अस्तित्व मानना पड़ेगा। किन्तु पक जाने पर घट के स्वरूप में रंग के सिवा और कोई अन्तर नहीं पाया जाता। उसे देखते ही हम तुरन्त पहचान जाते हैं। इसलिए घट का नाश और घटान्तर का निर्माण नहीं माना जा सकता। घट-परमाणु उसी तरह संलग्न रहते हैं, किन्तु उनके बीच-बीच में जो छिद्र-स्थल रहते हैं, उनमें विजातीय अग्नि का प्रवेश हो जाने के कारण घट का रूप परिवर्तन हो जाता है। इस मत का नाम 'पिठरपाक' है।[54]

जैन दर्शन में पर्यायान्तर अथवा परिणामान्तर का सिद्धान्त मान्य है। वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श पुद्गल के गुण हैं। इनमें प्रयोगजनित और स्वाभाविक दोनों प्रकार का परिवर्तन होता है। ओदन आदि में अग्नि के संयोग से होने वाला परिवर्तन प्रायोगिक परिवर्तन है। परमाणु तथा परमाणु-स्कन्धों में सभी वर्णों की सत्ता है, इसलिए काली मिट्टी के परमाणुओं से बना पात्र आग में पकाने पर लाल रंग का हो जाता है। इसकी व्याख्या के लिए किसी नए सिद्धानत की स्थापना करना आवश्यक नहीं है।''

भगवती सूत्र, शतक 7, उद्देशक 10, सूत्र 229, 230 में अचित्त पुद्गलों द्वारा प्रकाश, ताप उद्द्योत किस प्रकार हो सकता है, उसका स्पष्ट निदर्शन है

''भन्ते! क्या अचित्त पुद्गल भी वस्तु को अवभासित करते हैं? उद्द्योतित करते हैं? तप्त करते हैं? प्रभासित करते हैं?''

''(कालोदायी)! हां करते हैं।''

''भन्ते! वे कौन-से अचित्त पुद्गल भी वस्तु को अवभाषित करते हैं? उद्द्योतित

करते हैं? तप करते हैं? प्रभासित करते हैं?''

''कालोदायी! क्रुद्ध अनगार ने तेजोलेश्या का निसर्जन किया, वह दूर जाकर दूर देश में गिरती है, पार्श्व में जाकर पार्श्व देश में गिरती है। वह जहां-जहां गिरती है, वहां-वहां उसके अचित्त पुद्गल भी वस्तु को अवभासित करते हैं, उद्द्योतित करते हैं, तप्त करते हैं और प्रभासित करते हैं। इस प्रकार ये अचित्त पुद्गल भी वस्तु को अवभासित करते हैं, उद्द्योतित करते हैं, तप्त करते हैं और प्रभासित करते हैं।''[55]

मीमांसा

''ईंट की भट्टी, कुम्हार की भट्टी इत्यादि भट्टियों के मध्य को अग्नि और आकाशीय विद्युत् की अग्नि को निश्चय सचित्त कहा है। आधुनिक विज्ञान के अनुसार 'अग्नि' (कंबश्चन) यानी 'दहन' की क्रिया है जिसमें ऑक्सीजन (प्राण वायु) के साथ जलने की रासायनिक प्रक्रिया होती है, उक्त सभी इसी के अन्तर्गत है।

व्यवहार नय में सारी सचित्त अग्नियों में इसी प्रक्रिया को देखा जाता है। इससे स्पष्ट है कि अग्नि को सचित्त बने रहने के लिए प्राणवायु से होने वाली ऑक्सीकरण या दहन क्रिया (कंबश्चन) की एक अनिवार्य अपेक्षा होती ही है।

मिश्र तेउकाय मुर्मुर आदि में भी जलती अग्नि से छिटकाया हुआ एक जल रहा ठोस पदार्थ है, मूलतः यह अंगारे का ही छोटा रूप है।''[56]

अचित्त तेउकाय जो पदार्थ अग्नि द्वारा पके हैं, यानी जो पदार्थ सचित्त तेउकाय के साक्षात् सम्पर्क से तैयार होते हैं। वे पदार्थ जब तक अग्निकाय का सम्पर्क रहता है, तब तक सचित्त बने रहते हैं। इनको भी 'ऑक्सीजन' की आपूर्ति हो, तब तक ये सचित्त रह सकेंगे, बाद में अग्नि का सम्पर्क टूट जाने पर अचित्त हो जाएंगे।

सचित्त अग्नि के मृत शरीर को 'मुक्केलगा' यानी अग्नि जीवों द्वारा मुक्त शरीर के रूप में 'अचित्त अग्नि' के पुद्गल के रूप में बताए गए हैं। इस आधार पर अग्नि पर पके हुए भोजन, पेय आदि तथा अग्नि द्वारा तैयार की गई लोहे की सूई को अचित्त तेउकाय कहा गया है। क्योंकि जब वे सचित्त अग्नि के संसर्ग में थे, तब उनमें सचित्त अग्नि का प्रवेश हुआ था। इससे यह तात्पर्य होता है कि ज्योंही सचित्त अग्नि का सम्पर्क टूट जाता है, ये अचित्त तेउकाय के रूप में रह जाते हैं। इनका सचित्त होना अग्नि के सम्पर्क के कारण ही है। ये स्वयं अपने आप में सचित्त अग्नि नहीं बनते। यदि स्वयं अग्नि के जीवों का सम्पर्क न हो, तो ये गरम होने पर भी सचित्त अग्नि नहीं होते। जैसे सूर्य के ताप को अचित्त ही माना जाता है। उसके ताप से गरम हुआ भोजन या लोहे की सूई अग्नि नहीं बन सकता। दूसरे शब्दों में सूर्य का ताप पौद्गलिक है और उससे गरम होने वाले पदार्थ भी पौद्गलिक ही हैं अचित्त हैं।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

ताप, प्रकाश स्वयं सचित्त नहीं हैं। सचित्त हैं जलने वाले पदार्थ लकड़ी, ईंधन, लपटें, अंगारे आदि। जैसे सूर्य का प्रकाश, ताप अचित्त पुद्गल हैं, वैसे उसके ताप से गरम किए हुए पदार्थ भी अचित्त ही हैं। सूर्य से तप्त होने वाली पृथ्वी की सतह या अन्य पदार्थ अचित्त गरम पुद्गल ही रहते हैं, अग्नि नहीं बनते।

लोहे की सूई या गोला जो अग्नि में गरम किए जाते हैं, अग्नि के सीधे सम्पर्क में आते हैं। यद्यपि यह गरम होने से लाल बन जाते हैं, फिर भी वे ताप को केवल सोखते हैं, उत्पन्न नहीं करते।

इसका तात्पर्य हुआ कि इनमें सचित्त तेउकाय के जीव अग्नि में से संक्रांत होते हैं। जहां इन जीवों को ऑक्सीजन या प्राणवायु मिलती है, वहां वे जीवित रह सकते हैं, किन्तु जहां इन्हें ऑक्सीजन नहीं मिलती, वे जीवित नहीं रह सकते हैं; इसलिए गरम लोहे का अग्नि के रूप में जीवित रहना तब तक सम्भव है जब तक अग्नि का सम्पर्क बना रहे तथा जब तक उन्हें प्राण-वायु प्राप्त होती रहे। इन दोनों में एक का भी अभाव होने पर ये अग्नि के रूप में जीवित रह नहीं सकते। लाल गर्म लोहे के भीतर तेउकाय का अस्तित्व इसी अपेक्षा से समझना होगा तथा सम्पर्क टूट जाने के पश्चात् उसे अचित्त तेउकाय के रूप में बताया गया है। मध्य भाग तक पहुंचे हुए तेउकाय के जीव भी ऑक्सीजन न मिलने पर अग्नि का सम्पर्क बने रहने पर, दूसरे जीव मध्य तक पहुंच सकते हैं पर ऑक्सीजन के अभाव में तुरन्त जीवित नहीं रह सकते। इसका तात्पर्य हुआ कि लोहे का गोला जब तक अग्नि में पड़ा रहेगा, तब तक यह शृंखला चालू रहेगी, संपर्क टूटते ही शृंखला टूट जाएगी, गोला अचित्त बन जाएगा।

आगम के व्याख्याकारों द्वारा उसे शुद्धाग्नि मानना तथा अग्नि के सम्पर्क से रहित होने पर अचित्त बताना इस तथ्य को ही सिद्ध करते हैं कि हमें सचित्त तेउकाय के इस लक्षण को स्वीकार करना ही होगा कि सचित्त तेउकाय के जीव ऑक्सीजन के अभाव में जीवित नहीं रह सकते। गरम गोले के मध्य भाग तक तेउकायिक जीवों का प्रवेश होना एक बात है, उनका जीवित रहना दूसरी बात है। नए-नए जीव प्रविष्ट होते रहें, तो मध्य भाग सचित्त तेउकाय के रूप में बताया जा सकता है, पर वह केवल इस अपेक्षा से कि तेउकायिक जीवों का धातु के मध्य भाग तक प्रवेश होता रहे, जो केवल अग्नि में धातु का रहना हो तभी सम्भव है। ज्योंही लोहे के गोले को अग्नि से बाहर निकाला जाएगा, जीवों का प्रवेश बन्द हो जाएगा, गोला पुनः अचित्त हो जाएगा।

अब प्रश्न होता है मध्य भाग तक ऑक्सीजन (वायु) जा सकती है या नहीं? इस विषय में निश्चितता के साथ कहने में कोई हिचक नहीं कि यह सम्भव नहीं है।

केवल गोले का सतही हिस्सा ही ऑक्सीजन के सम्पर्क में रहेगा, शेष भाग में ऑक्सीजन का प्रवेश हो ही नहीं सकता। जब कांच के गोले में भी बाहर से ऑक्सीजन का प्रवेश नहीं होता, तो लोहे के गोले में उसका प्रवेश न विज्ञान स्वीकार करता है, न जैन दर्शन। विज्ञान और जैन दर्शन यह तो स्वीकार करते हैं कि ठोस से ठोस पदार्थ में सूक्ष्म पुद्गल स्कन्धों का प्रवेश सम्भव है, किन्तु ऑक्सीजन या प्राण-वायु का प्रवेश इसलिए नहीं हो सकता कि लोहे के परमाणु-गुच्छों (Molecules) के बीच रिक्त स्थान में ऑक्सीजन का परमाणु-गुच्छ प्रविष्ट नहीं हो सकता। यह तभी सम्भव है जब रासायनिक क्रिया हो, जो सामान्य स्थिति में नहीं होती। जंग लगने की क्रिया में होने वाली रासायनिक क्रिया में आर्द्रता का मोलीक्यूल (H_2O) लोहे के मोलीक्यूल के साथ रासायनिक क्रिया करता है, तब लोहे का ऑक्सीजन के साथ रासायनिक बंध होता है जिससे जंग यानी फेरस ऑक्साइड के रूप में परिणमन होता है। किन्तु यह प्रक्रिया भी केवल सतही होती है। गोले के भीतर आर्द्रता का प्रवेश सम्भव नहीं है।

ठोस, तरल और वायु या बाष्प रूप में पदार्थों का विभाजन इसी आधार पर है कि ठोस पदार्थ के भीतर दूसरे स्थूल पदार्थ (ठोस, तरल या वायु) का प्रवेश नहीं होता। यहां तक कि लोहे जैसे ठोस और अपारदर्शी पदार्थों में किरणों का भी प्रवेश भीतर नहीं होता, केवल सतह पर ही उनका प्रवेश होता है।[57] केवल भौतिक प्रक्रिया से यह सम्भव नहीं है। सर्वत्र आगम-वचन की अपेक्षा को समझना जरूरी है। लोहे के मध्य भाग में अग्नि जीवों का अस्तित्व निरपेक्ष रूप में मानकर फिर यह कल्पना करना कि वायु का प्रवेश उसके भीतर होता ही होगा, न आगम-सम्मत है, न विज्ञान-सम्मत, और न तर्क-सम्मत।

न्यूट्रीनो या ऊर्जा-तरंग या पारमाणविक (sub-atomic) कणों का प्रवेश ठोस से ठोस पदार्थ में भी सम्भव हो सकता है। इसीलिए इलेक्ट्रोन, प्रोटोन, न्यूट्रीनो आदि कण अथवा उष्मा, प्रकाश, इलेक्ट्रीसीटी, ध्वनि आदि ऊर्जा-तरंगों के ठोस पदार्थों में प्रवेश या निर्गम की सम्भावना सबको मान्य है, किन्तु इनसे अग्नि की क्रिया जिसमें ऑक्सीजन की अनिवार्यता है, नहीं हो सकती। ऑक्सीजन को छोड़कर अन्य वायु (नाइट्रोजन आदि) कहीं हो, तो भी वे निष्क्रिय हैं, इसलिए अग्नि जलाने की क्रिया में अक्षम है। आगम के वचन वायु के बिना अग्नि नहीं होती, की अपेक्षा को न समझने के कारण ही असंगत कल्पना करने की आवश्यकता पड़ती है। इसी प्रकार अग्नि में तपाए लाल गरम लोहे के गोले को 'शुद्धाग्नि' के रूप में निरूपण को भी सापेक्षता के साथ समझना जरूरी है।

अत्यधिक उच्च तापमान पर ऑक्सीजन का संयोग मिलने पर जलने की

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

रासायनिक क्रिया या कंबश्चन की प्रक्रिया हो सकती है इस सामान्य नियम के आधार पर सचित्त तेउकाय और अचित्त या पौद्गलिक प्रक्रियाओं का पृथक्करण आसानी से हो सकता है।

सचित्त तेउकाय या अग्नि जलने की प्रक्रिया में ताप (ज्वलनबिन्दु तक), प्रकाश, ज्वलनशील पदार्थ और ऑक्सीजन ये चारों अनिवार्य हैं। अब यदि कोई ऐसा पदार्थ हो, जिसमें ताप हो, पर प्रकाश न हो तो उसे सचित्त तेउकाय की गणना में नहीं मान सकते। यही अन्तर बिजली के हीटर और बिजली के वाहक तांबे के तार में है। बिजली के हीटर में प्रयुक्त लोहे का तार विद्युत्-प्रवाह के कारण गरम भी होता है, लाल होकर प्रकाश भी करता है, तथा खुली हवा के ऑक्सीजन के साथ मिलकर ज्वलनशील पदार्थ की उपलब्धि हो तो अग्नि पैदा कर सकता है, पर तांबे के तार (जो सुचालक है) में विद्युत्-प्रवाह बहने पर सामान्य ताप भी बहुत कम होता है और प्रकाश नहीं होता। भीतर ऑक्सीजन का भी प्रवेश नहीं हो सकता। इसलिए वहां सचित्त तेउकाय के जीव उत्पन्न नहीं हो सकते।

अचित्त के उदाहरण

1. जहां ताप एवं प्रकाश है सूर्य की रोशनी में ताप भी है, प्रकाश भी है, पर वह पौद्गलिक यानी अचित्त ही है।

2. सूर्य की रोशनी से तप्त पृथ्वी अचित्त है।

3. कोयला आदि जलने के बाद बची हुई राख गरम है, पर अचित्त है।

4. गरम तवा या गरम लोहा अग्नि का सम्पर्क छूट जाने के बाद अचित्त है।

5. गरमागरम भोजन अग्नि का सम्पर्क छूटने के बाद अचित्त है।

6. बादल की अवस्था में स्थित विद्युत् static electricity यानी ऋण विद्युत् आवेश वाले बादल, घन विद्युत् आवेश वाले बादल सचित्त तेउकाय नहीं हैं।

7. बल्ब के अन्दर विद्यमान निष्क्रिय गैस या निर्वात में स्थित तन्तु-कुण्डली (filament coil) में विद्युत्-प्रवाह प्रवाहित हो तब ताप व प्रकाश पैदा होता है, पर ऑक्सीजन के अभाव में वह अचित्त है। जलते अंगारे या आकाशीय बिजली से यह भिन्न है।

8. डॉ. जे. जैन के अनुसार ''भट्टी में पकती हुई ईंट या लोहे (लोह-अयस्क) में साधारणतया अपचयन (reduction) होता है, ऑक्सीडेशन नहीं। सचित्त अग्नि में ऑक्सीडेशन होता है। भट्टी में जो लोह अयस्क है वह विज्ञान में FeO या Fe_2O_3 है, उसमें विद्यमान ऑक्सीजन उसमें से निकलकर कोयले को जला सकती है। लेकिन

इस प्रक्रिया में केवल कोयले के जलने में ही सचित्त तेउकाय माना गया है, जिस तरह साधारण चूल्हे या भट्टी में सचित्त तेउकाय है।''[58]

''इसका कारण है कि कुछ पदार्थ ऐसे होते हैं जो उच्च तापक्रम पर भी पिघलते नहीं हैं। जैसे-जैसे उनका तापमान बढ़ता है, उनकी गरमी बढ़ती जाती है, रंग बदलता है, अवरक्त किरणों से बढ़कर दृश्य प्रकाश का उत्सर्जन शुरू होता है। भट्टी में तो उसकी रिफ्रेक्टरी (refractory) भी लगभग उसी तापमान तक गरम होती है, लेकिन उसमें से प्रकाश पैदा नहीं होता। वह ठोस रूप में ही बनी रहती है। जैसे चूल्हे पर खाना बनता है, वैसे ही भट्टी में लोहा बनता है/पकता है। लोहा बनाने के लिए भट्टी में उच्च तापमान पर कुछ रासायनिक प्रक्रियाएं होनी जरूरी है, जो उसमें चूना व अन्य पदार्थ लोह अयस्क के साथ डालकर सम्पन्न की जाती है। आग भी जलती है कोयले और हवा, लेकिन सचित्त तेउकाय तो कोयले के जलने में ही है। लोह-अयस्क का अपचयन (reduction) होता है न कि अग्नि जलने में होने वाला ऑक्सीकरण। इसलिए यह क्रिया लोह-अयस्क का जलना नहीं कहलाती।''[59]

''इस तरह से बनता लोहा उसी तरह सचित्त तेउकाय नहीं है जैसे इंटा-भट्टी में बनती इंटें सचित्त तेउकाय नहीं है। प्राचीन काल में भी लोहा-भट्टी में लोहा बनाया जाता था। अतः इसकी जानकारी रखते हुए कहा गया है कि भट्टी के मध्य की अग्नि ही सचित्त तेउकाय है। उसमें बनने वाले लोहे को या गरम अयस्क को सचित्त तेउकाय नहीं बताया गया है, क्योंकि ऐसा उल्लेख नहीं है।

''यदि लाल गरम बनते लोहे का सचित्त तेउकाय के रूप में वर्णन नहीं मिलता है, तो उसको कुम्हार के भट्टे में पकते मिट्टी के बर्तन की तरह ही समझा गया है ऐसा माना जा सकता है। कुम्हार के भट्टे के मध्य में जो अग्नि जल रही है, उसी को सचित्त अग्निकाय माना गया है। (यह अग्नि जलना इसीलिए सम्भव है कि उसमें ऑक्सीजन की उपलब्धि है) यानी ऑक्सीजन (हवा) से जलने की प्रक्रिया को ही सचित्त तेउकाय की उत्पत्ति के लिए एक आवश्यक शर्त के रूप में माना गया है, ज्वलन-बिन्दु के ऊपर ऑक्साइड बनाना।'' इसे भगवती में बताया है ''वायु के बिना अग्नि नहीं होती।'' ज्वलन-बिन्दु के ऊपर तापमान का होना तथा ऑक्साइड का बनना ये सचित्त तेउकाय (अग्नि) के अनिवार्य अंग हैं। अतः ऑक्सीजन (हवा या प्राण-वायु) की प्रक्रिया (का होना) सचित्त तेउकाय पैदा होने के लिए अनिवार्यता दर्शाता है।''[61]

''जैसे सूर्य की रोशनी से खाना बनता है या पकता है बिना अग्निकाय को काम में लिए (सौर-चूल्हा) उसी प्रकार बल्ब का फिलामेण्ट तार गरम होकर प्रकाश पैदा करता है। बिजली (electricity) के प्रवाह कारण यानी बिना अग्निकाय के प्रयोग के (क्योंकि प्राणवायु से जलने वाली अग्नि का इसमें अभाव है।) इससे विचार

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

होता है कि जलता बल्ब अचित्त ही है, जब तक उसका फिलामेंट प्राणवायु के सन्दर्भ में आकर जलता नहीं है।''[62]

सूर्य की रोशनी और इलेक्ट्रीसीटी के तार में चलता प्रवाह ये दोनों केवल पौद्गलिक ऊर्जाएँ हैं। गैस-फिल्ड बल्ब में भी कोई प्राणवायु नहीं है। निर्वात बल्ब में भी प्राणवायु रहने नहीं दिया जाता।

शुद्ध अल्यूमिनियम धातु की सतह सीधे प्राणवायु के सम्पर्क में आने पर स्वतः मंद गति से ऑक्सीकृत होती रहती है तथा लोहा भी आर्द्रता की उपस्थिति में मंद गति से ऑक्सीकृत होता रहता है, जिसे 'जंग लगना' कहा जाता है। लेकिन यह सारी क्रिया 'जलने की क्रिया' नहीं है। साधारण ऑक्सीडेशन और दहनक्रिया रूप कंबश्चन में अन्तर है। कंबश्चन 'एक्सोथर्मिक' क्रिया है यानि उष्मा का उत्पादन होता है।

9. डॉ. जे. जैन के अनुसार, ''आगम में ऐसा कोई उदाहरण नहीं मिलता सचित्त तेउकाय का जिसमें प्राणवायु का उपयोग न होता हो। जितने उदाहरण दिए गए हैं उनमें या तो जलने की क्रिया के मुताबिक प्राण-वायु का सीधा उपयोग होता है (जैसे अग्नि, अंगारे, ज्वाला, मुर्मुर अर्चि, अलात, शुद्धाग्नि, संघर्ष-समुत्थित अग्नि) अथवा आकाशीय विद्युत्, अशनि, उल्का जिनमें प्राणवायु सहचारी के रूप में उपस्थित होती है। प्लाज्मा या आयनीकरण की प्रक्रिया में डीस्चार्ज होकर भी 'प्राणवायु' की उपस्थिति के कारण तथा अत्यन्त तीव्र तापमान पर ज्वलनशील पदार्थों का योग मिलने के कारण सचित्त तेउकाय की उत्पत्ति की स्थिति बन जाती है।

''यह ध्यान देने योग्य है कि भट्टी में लोह-अयस्क से लोह उस समय भी बनता था, किन्तु उसका नाम सचित्त तेउकाय के उदाहरण में नहीं मिलता है। कुम्हार और ईंट की भट्टी का उदाहरण मिलता है, उसमें भी वहां बनते हुए पदार्थ यानी ईंट व बर्तन को सचित्त तेउकाय नहीं बतलाया गया है केवल उसके मध्य में जलती अग्नि को ही सचित्त तेउकाय बताया गया है। गरम हुई सूई को भी अचित्त तेउकाय में बताया गया है।

''इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि तेउकाय या अग्निकाय में केवल प्रकाश का उद्गम स्थान होना-भर ही उसको सचित्त तेउकाय नहीं बना देता। प्राणवायु का प्रयुक्त होना एक आवश्यक शर्त है। वो भी जलने की तरह रासायनिक क्रिया के रूप में।''[63]

10. डॉ. जे. जैन फिर अधिक स्पष्ट करते हुए लिखा है ''यदि प्राणवायु-शून्य वातावरण में गरम पिघले हुए लोहे को (जो लाल तो होता ही है), दूसरी अग्नि से या

अन्य ताप-शक्ति से गरम करते जाएं तो वह पहले ताप को सोखेगा फिर वो ताप व प्रकाश देता रहेगा, लेकिन यह ताप व प्रकाश खुद पैदा नहीं करता है। यह उसका अपना Self-sustaining (स्वपोषी) ताप-प्रकाश नहीं है। यह तो उसको अन्य अग्नि से मिलता रहा, तो उसको वह ग्रहण करके छोड़ता रहता है। यह ताप का मिलना/प्राप्त करना जैसे अन्य अग्नि से होता है, वैसे सूर्य की गरमी से भी हो सकता है।''[64] अतः वह पिंड अचित्त की श्रेणी में ही है।

प्रश्न 22. भगवतीसूत्र में तो स्पष्ट रूप से वायुकाय को अग्निकाय की तुलना में अल्प अवगाहना वाला (कद वाला) बताया है तथा वायुकाय से अग्निकाय स्थूल ही है। ये हैं **भगवतीसूत्र** के शब्द **'भन्ते! तेउक्काइयस्स वाउक्काइयस्स कयरे काए सव्वबायरे कयरे काए सव्वबायरतराए? गोयमा! तेउक्काए सव्वबादरे तेउक्काए सव्वबादरतराए'** (भग. 19/3/763) इस प्रकार तपे हुए लोहे के गोले में स्थूल अग्निकाय और वायु का प्रवेश शास्त्र सिद्ध होने से प्रकाशमान बल्ब में आवश्यक वायु का प्रवेश होने में कोई शास्त्रविरोध दिखलाई नहीं पड़ता।''[65]

उत्तर 1. वायुकाय की अवगाहना तेउकाय से अल्प है तथा वह तेउकाय की अपेक्षा सूक्ष्म है। इस बात से तो यही सिद्ध होता है कि विद्युत्प्रवाह तेउकाय नहीं है, क्योंकि विद्युत्-प्रवाह निश्चित रूप से वायु से सूक्ष्म है। विद्युत्-प्रवाह में जो इलेक्ट्रोन कण हैं, वह वायु यानी ऑक्सीजन के मोलीक्यूल (O_2) की अपेक्षा सूक्ष्म हैं। यदि इलेक्ट्रोन-प्रवाह को तेउकाय माना जाए तो आगम-विरुद्ध वचन होता है।

2. जलते हुए दीपक पर कांच का गोला ढकने पर दीपक थोड़ी देर में बुझ जाता है, क्योंकि वायु (ऑक्सीजन) का प्रवेश गोले में नहीं होता। यदि सूक्ष्म वायु गोले में प्रवेश नहीं कर सकती तो उससे स्थूल तेउकाय का प्रवेश या निर्गम उसमें कहां से होगा? किन्तु जो दीपक के प्रकाश को भी तेउकाय मानते हैं, वह तेउकाय वायुकाय से स्थूल हैं, फिर भी वह प्रकाश कांच के गोले से बाहर प्रसारित होता है, पर वायु का प्रवेश जो सूक्ष्म है अन्दर नहीं होता।

3. उक्त आगम-वचन की संगति तब होती है जब

(i) इलेक्ट्रोन के रूप में विद्युत-प्रवाह को तेउकाय न माना जाए।

(ii) दीपक के प्रकाश को तेउकाय न माना जाए।

(iii) वायुकाय की सूक्ष्मता को अग्नि की अपेक्षा से इस आधार पर समझा जाए कि अंगारा आदि की अग्नि चक्षुःग्राह्य है, जबकि हवा या ऑक्सीजन के रूप में वायु चक्षु का विषय नहीं है।

भगवती में जीव की अवगाहना की तुलना की गई है। इन स्थावर जीवों की

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

अवगाहना एक अंगुल के असंख्यातवें भाग जितनी प्रतिपादित है और उनमें तुलनात्मक दृष्टि से वायुकाय के जीव की अवगाहना से तेउकाय के जीव की अवगाहना अधिक बताई है।

प्रश्न 23. ''शायद किसी को शंका हो सकती है कि 'चूल्हा, दीया, लालटेन, गैस इत्यादि में जो अग्नि पैदा होती है वह इंधन के आधार पर उत्पन्न होती है तथा इंधन की कम या ज्यादा मात्रानुसार वह भी कम या ज्यादा होती है। इसलिए उसे सजीव माना जा सकता है। किन्तु इलेक्ट्रीसीटी में तो किसी भी प्रकार के इंधन की आवश्यकता नहीं रहती। तो फिर उसे किस प्रकार सजीव माना जा सकता है? इंधन (खुराक) बिना तो जीव की उत्पत्ति-स्थिति-वृद्धि किस प्रकार से सम्भव है?

परन्तु यह शंका उचित नहीं है। क्योंकि तमाम प्रकार की अग्नि को इंधन (व्यक्त खुराक) की आवश्यकता हो ऐसा कोई नियम नहीं है। चूल्हे इत्यादि में उत्पन्न होने वाली अग्नि को इंधन की आवश्यकता होती है। परन्तु आकाशीय बिजली, इलेक्ट्रीसीटी, बल्ब-प्रकाश इत्यादि स्वरूप तेउकाय के जीवों के लिए इंधन की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। क्योंकि वह शुद्ध अग्नि है।

श्री दशवैकालिक चूर्णि में श्री **जिनदासगणी महत्तर** ने **'इंधनरहिओ सुद्धागणि'** (4/12) ऐसा कहकर इंधनरहित अग्नि को शुद्ध अग्नि रूप में बताया है। **श्री दशवैकालिकसूत्रव्याख्या** में **श्री हरिभद्रसूरिजी** महाराज ने भी **'निरिन्धनः = शुद्धः अग्निः'** (अध्ययन 4/12 वृत्ति) यह कहकर इंधनरहित अग्नि को शुद्ध अग्निकाय जीव बताया है। श्वेताम्बरमान्य **जीवसमास** ग्रन्थ में तथा दिगम्बरमान्य **मूलाचार** ग्रन्थ में **'इंगाल-जाल-अच्ची मुम्मुर-सुद्धागणी य अगणी य'** (जी.स 32 + मूला. गा. 221) इत्यादि रूप में जो अग्निकाय जीव के प्रकार बताए हैं उनमें आकाशीय बिजली को शुद्ध अग्निस्वरूप बताया गया है। मलधारी **श्रीहेमचन्द्रसूरिजी** महाराजा ने **जीवसमासव्याख्या** में **'शुद्धाग्निः= विद्युदग्निः'** (गा. 32) बिजली स्वरूप अग्नि को शुद्ध अग्निस्वरूप ही स्पष्ट रूप से बताया है। इसलिए आकाशीय विद्युत, इलेक्ट्रीसीटी, बल्ब के फिलामेण्ट में उत्पन्न होने वाला प्रकाश, बल्ब-प्रकाश की ज्योति [-रोशनी (उजाला)], दूर तक फैलती दीये की ज्योति इत्यादि इंधनशून्य होने के कारण शुद्ध अग्निरूप सिद्ध होती है। इस प्रकार इंधन के बिना उसकी उत्पत्ति, स्थिति, वृद्धि इत्यादि दिखाई देने के कारण आगमानुसार बिजली वगैरह शुद्ध अग्निकाय जीव स्वरूप सिद्ध होते हैं।''[66]

उत्तर जिसे जिनदासमहत्तर ने दशवैकालिक चूर्णि में इंधन-रहित अग्नि या शुद्धाग्नि कहा है, वह आग में प्रविष्ट लोहे के गोले को बताया है। जीवसमास व्याख्या में मलधारी हेमचन्द्रसूरि द्वारा **शुद्धाग्निः विद्युदग्निः** कहा गया है, वह आकाशीय

चमकने वाली बिजली ही है। आकाशीय चमकने वाली/कड़कने वाली विद्युत् और इलेक्ट्रीसीटी के रूप में प्रवाहमान विद्युत्-प्रवाह की भिन्नता के विषय में पहले ही स्पष्टता की जा चुकी है। इस कथन से तो यही सिद्ध होता है कि इलेक्ट्रीसीटी या बल्ब-प्रकाश अग्नि नहीं है न निरिन्धन अग्नि है, न विद्युत् (Lightning) रूप अग्नि है, न इंधन के आधार पर जलने वाली अग्नि है।

प्रश्न 24. ''दूसरी महत्त्व की बात यह है कि जीवसृष्टि की उत्पत्ति और स्थिति भी विभिन्न प्रकार से देखने को मिलती है। तथा हवा, पानी, खुराक की आवश्यकता भी अनेक प्रकार से दिखाई देती है। उदाहरण के तौर पर मनुष्य, मछली और मगर इत्यादि प्राणी ऑक्सीजन के आधार पर जीवित रहते हैं। परन्तु उसमें भी तफावत है (1) मनुष्य हवा में से ऑक्सीजन लेता है। (2) जबकि मछली पानी में से ऑक्सीजन लेकर जीवित रहती है। पानी के बाहर हवा में ऑक्सीजन पर्याप्त मात्रा में होने पर भी यदि मछली को पानी से बाहर निकाली जाए तो वह मर जाती है। पानी में ऑक्सीजन होते हुए भी यदि सामान्य व्यक्ति को पानी में डुबाया जाए तो वह मछली की भांति जीने के बजाय मर जाता है। (3) जबकि मेंढक इत्यादि उभयचर प्राणी सागर और जमीन दोनों जगह पर ऑक्सीजन लेकर जीवित रहते हैं। इसी प्रकार से अग्निकाय की बाबत भी समझी जा सकती है।

पन्नवणासूत्र में अग्निकाय की सात लाख योनि बताई गई हैं। सात लाख योनि वाले तेउकाय जीवों में से (1) मोमबत्ती, अगरबत्ती, दीपक, गैस, लकड़ी इत्यादि का अग्नि तो खुले वातावरण में से डायरेक्ट प्राप्त हो सके वैसी हवा के आधार पर अपना अस्तित्व टिकाए रख सकती है। इसलिए प्रस्तुत में 'जलती हुई मोमबत्ती, अगरबत्ती इत्यादि के ऊपर यदि कांच का ग्लास उलटा रखा जाए तो कुछ समय में वह क्यों बुझ जाती है? यदि तार के माध्यम से बल्ब में वायु पहुंच सकता है तो ग्लास और जमीन के बीच में से अन्दर जा सके ऐसे वायु से मोमबत्ती क्यों जलती हुई नहीं रह सकती?' ऐसे प्रश्न को कोई अवकाश ही नहीं रहता। क्योंकि सब प्रकार की पद्धति से मिलते सभी बादर वायुकाय अग्नि-उत्पादक होते ही हैं ऐसा आगम की मान्यता के अनुसार नहीं लगता है। अन्यथा खुली हवा में रहे हुए ऑक्सीजन के आधार पर पानी के बाहर लम्बे समय तक मछली क्यों जीवित नहीं रह सकती? तथा पानी में रहे ऑक्सीजन के आधार पर समुद्र में डुबा हुआ मनुष्य क्यों लम्बे समय तक जीवित नहीं रह सकता? ऐसी समस्याएं मुंह फाड़कर खड़ी रहेंगी। समस्या का समाधान तो दोनों पक्षों को समान रूप से मान्य एक ही होना चाहिए न! तथाविध शारीरिक रचना = झालरयुक्त फेफड़े तन्त्र की विशिष्ट रचना के अनुसार मछली जीने के लिए पानी में से ऑक्सीजन को अलग करके ग्रहण करती है। जबकि मनुष्य खुली हवा में से ही नाइट्रोजन मिश्रित ऑक्सीजन लेकर जिन्दा रहता है। इसी प्रकार मोमबत्ती आदि खुले

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

वातावरण में ऑक्सीजन के माध्यम से जलती है। जबकि बल्ब के फिलामेण्ट में उत्पन्न हुए प्रकाश (= बादर तेउकाय) के लिए यह कहा जा सकता है कि

(2) बल्ब, मर्क्युरी लेम्प वगैरह के फिलामेण्ट में उत्पन्न हुए अग्निकाय के जीव खुली हवा के बदले इलेक्ट्रीसीटी जिस वायर में से पसार होती है उस वायर के माध्यम से अथवा अन्य कोई प्रकार से वहां आने वाले वायु के द्वारा अथवा बल्ब में स्थित वायु के द्वारा अपना अस्तित्व टिका सकते हैं। अपनी सजीवता बनाए रखने के लिए, जीवन-निर्वाह के लिए बल्बप्रकाश अपने प्रायोग्य वायु को विलक्षण पद्धति से प्राप्त कर ही लेता है इतना तो सुनिश्चित ही है। अत्यन्त गरम लालभभूके लोहे के ठोस निच्छिद्र गोले में रही हुई अग्नि अपने योग्य वायु को किसी भी प्रकार से प्राप्त करती ही है न!

(3) इसी प्रकार हीटर की अग्नि, इलेक्ट्रीक सगड़ी की अग्नि इत्यादि खुले वातावरण और स्थूल वेक्यूम दोनों में अपना अस्तित्व बनाए रखती हैं। इस तरह अग्निकाय के भी स्थूल दृष्टि से तीन भेद तो समझ ही सकते हैं। इसलिए बल्ब टूट जाने पर, फिलामेण्ट के जल जाने के कारण, खुली हवा में पैदा न होने की वजह से बल्बप्रकाश को निर्जीव नहीं कह सकते।

कुछ लोगों की मान्यता ऐसी है कि 'अग्नि को जलने के लिए ऑक्सीजन वायु जरूरी है। इसलिए जलती हुई मोमबत्ती इत्यादि के ऊपर ग्लास उलटा रखने पर बुझ जाती है। यद्यपि पूर्व में (पृष्ठ 32) हमने ऑक्सीजन बिना भी आग लग सकती है, उसके अनेक उदाहरण दिखाए ही हैं। फिर भी 'ऑक्सीजन के बिना आग नहीं लगती' इस बात को हम एक बार सत्य मान लें, तो प्रस्तुत में ऐसा कह सकते हैं कि मोमबत्ती, अगरबत्ती, तैल का दीया, कोयला इत्यादि में जो अग्नि उत्पन्न होती है वह इंधन वाली है। वह ऑक्सीजन नामक वायु द्वारा अपना अस्तित्व बनाए रख सकती है। इसलिए उस पर ग्लास आदि ढंकने में आए तो वह पुराना ऑक्सीजन खलास हो जाने पर नया ऑक्सीजन नहीं मिलने के कारण बुझ जाती है। परन्तु आकाशीय बिजली, इलेक्ट्रीसीटी, विद्युत्प्रकाश वगैरह तो पूर्व (पृ. 68) में बताए अनुसार इंधनरहित = निरिन्धन अग्निकाय है। निरिन्धन अग्निकाय को अपना अस्तित्व बनाए रखने में ऑक्सीजन ही जरूरी है ऐसा मानने की आवश्यकता नहीं है। ऑक्सीजन के अलावा दूसरे उपयोगी वायु से भी वह अपना अस्तित्व बनाए रख सकती है ऐसा माना जा सकता है। शास्त्र में तो 'जहाँ अग्नि होती है वहाँ वायु होता है' इतना बताया है। 'जहाँ अग्निकाय होता है वहाँ ऑक्सीजन नामक वायु होता है' ऐसा नहीं बताया है। इसलिए 'ऑक्सीजन नहीं होने से बल्ब में अग्निकाय जीव उत्पन्न नहीं हो सकते' ऐसा नहीं कहा जा सकता।

एक ओर महत्त्व की बात यह है कि नाइट्रोजन, आर्गोन वगैरह उमदा वायु में ऑक्सीजन वायु का प्रमाण कुछ न कुछ मात्रा में होता ही है। यह बात **'विज्ञानकोश-रसायन विज्ञान'** (**विज्ञानकोश रसायण विज्ञान,** भाग 5, गुजरात यूनिवर्सिटी ऑफ अहमदाबाद) नाम के पुस्तक में **डॉ. सी. बी. शाह** (M.Sc., Ph.D.) द्वारा बताई गई है। उस ऑक्सीजन का शोषण हो सकता है वह बात अलग है।

नाइट्रोजन वगैरह वायु उमदा-निष्क्रिय होने के कारण किसी भी उच्च तापमान पर भी स्वयं के इलेक्ट्रोन नहीं गुमाते तथा लकड़े वगैरह की तरह नष्ट नहीं होते, इसलिए ही वह लम्बे समय तक बल्ब में प्रकाश-गरमी वगैरह को उत्पन्न करने में उपयोगी बन सकते हैं। यह बात **विज्ञानकोश** (भाग-5/पृष्ठ 412) पुस्तक में **डॉ. (श्रीमती) एम. एस. देसाई** ने स्पष्ट रूप से बतलाई है। इसके पूर्व (पृष्ठ 28) में बताए अनुसार फिलामेण्ट में आग न लग जाए, जल न जाए, इसके लिए बल्ब में नाइट्रोजन वगैरह उमदा वायु का अस्तित्व तो विज्ञान के सिद्धान्त के अनुसार भी सिद्ध होता ही है।

इस प्रकार से विचार करने में आए तो नाइट्रोजन और आर्गोन नाम के वायु बल्ब में अग्निकाय को प्रकट करने में/उत्पन्न करने में सहायता करते हैं। कोई दूसरा स्थूल वायु यह कार्य नहीं कर सकता ऐसा मान सकते हैं। मछली ऑक्सीजन के आधार पर जीवित रहती है किन्तु पानी में से ऑक्सीजन मिले तब ही वह उसे स्वीकार करती है। उसी प्रकार 'जहां अग्नि है वहां वायु है' यह बात सच्ची है। किन्तु बल्ब वगैरह में इलेक्ट्रीसीटी के माध्यम से जो अग्निकाय के जीव उष्णता और प्रकाश के रूप में उत्पन्न होते हैं उनके अस्तित्व के लिए बाहर की खुली हवा प्रतिकूल है। पर एकदम पतली हवा, वायर वगैरह के माध्यम से मिलने वाली हवा अथवा नाइट्रोजन, आर्गोन स्वरूप वायु ही उपयोगी बन सकते हैं ऐसा कह सकते हैं। ऐसा मानने में कोई शास्त्रविरोध, साइन्सविरोध, अनुभवविरोध या युक्तिविरोध नहीं आता है।

विज्ञ वाचक वर्ग को यहां एक बात विशेष ध्यान में रखनी चाहिए कि 'विज्ञान के अनुसार, बल्ब में रही हुई हवा के कारण बल्ब प्रकाशित होता है' ऐसा मैं नहीं कहता। 'बल्ब को प्रकाशित करने में वायु उपयोगी है ऐसा आधुनिक साइन्स मानती है' ऐसा भी मैं नहीं कहता। मगर 'आगमानुसार, अग्निकाय के लिए वायु जरूरी है' ऐसा मैं बता रहा हूं। तथा फिलामेण्ट जल न जाए इसके लिए आधुनिक साइन्स के सिद्धान्त के अनुसार, बल्ब में प्रविष्ट किए गए नाइट्रोजन वायु और आर्गोन वायु वहां हाजिर हैं ही। अतः अग्निकाय के लक्षण बल्ब प्रकाश में दिखाई देने से तथा बल्ब में वायु विद्यमान होने से वहां आगमानुसार सजीव तेउकाय के उत्पन्न होने में किसी

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

भी प्रकार का आगमविरोध नहीं आता। यही बताने का हमारा आशय है।''[67]

उत्तर चाहे मनुष्य हो या मछली, चाहे फेफडों से श्वास ग्रहण करे या झालर-युक्त फेफड़ों से सभी जीवों को 'ऑक्सीजन' ग्रहण करना ही पड़ता है इस सत्य के आधार पर प्रश्न यही है कि क्या ऑक्सीजन के बिना भी अग्नि के जीव बल्ब में पैदा हो सकते हैं या जीवित रह सकते हैं? निष्क्रिय वायुओं द्वारा अग्नि की प्रक्रिया विज्ञान द्वारा अस्वीकृत होते हुए भी उस सम्बन्ध में यह आग्रह कहां तक संगत होगा कि ''ये वायु अग्नि प्रकट करने में सहायता करते हैं।'' बल्ब की समग्र प्रणाली इतनी स्पष्ट है कि शंका का कोई अवकाश ही नहीं है। प्रस्तुत प्रश्न में उठाई गई बातों पर हम विस्तृत चर्चा कर चुके हैं। वायर के माध्यम से किसी भी प्रकार की वायु बल्ब तक नहीं पहुंच सकती।

दूसरी बात है बल्ब को निरिन्धन अग्नि मानकर उसे ऑक्सीजन की जरूरत नहीं है, ऐसा मानने का कोई आधार नहीं है। पहले तो बल्ब को निरिन्धन अग्नि मानना ही गलत है। फिर उसके लिए ऑक्सीजन के सिवा अन्य कोई वायु की अपेक्षा मानना तथा उस वायु की पूर्ति तार के माध्यम से मानना ये सारी विसंगत बातें हैं। फिर वापिस आर्गोन या नाइट्रोजन में ऑक्सीजन का कुछ-न-कुछ मात्रा में होना मानकर ऑक्सीजन से ही उसकी पूर्ति करवाना इसकी क्या आवश्यकता है?

विशुद्ध दशा में निष्क्रिय गैसों में ऑक्सीजन का शोषण शत-प्रतिशत करने की अक्षमता को मान भी लिया जाए तो आखिर वह ऑक्सीजन कब तक बल्ब के फिलामेंट को जलाएगा? ऑक्सीजन के साथ ज्वलन-क्रिया होते हुए भी बल्ब का फिलामेण्ट क्या अक्षुण्ण रह पाएगा?

पुनः आर्गोन या नाइट्रोजन को ही बल्ब के फिलामेण्ट को जलने में सहायक बताना कैसे सम्भव होगा? जबकि ये वायु निष्क्रिय हैं। सत्य तो यही है कि

1. न पतली हवा का अस्तित्व बल्ब में है।
2. न वायर के माध्यम से कोई हवा वहां पहुंच सकती है।
3. न आर्गोन, नाइट्रोजन आदि को ग्रहण कर बल्ब जलता है।

प्रश्न 25. ''विज्ञान तो मिनरल वाटर को निर्जीव कहकर दें, अण्डों को शाकाहारी कहकर दें, लहसुन-प्याज को भक्ष्य (= खाने योग्य) कहकर दें, पेप्सी को पेय (= पीने योग्य) कहकर हमको दें तो क्या हम उसका उपयोग कर सकते हैं? क्या विज्ञान के पास सजीव-निर्जीव, भक्ष्य-अभक्ष्य, पेय-अपेय, गम्य-अगम्य वगैरह की तात्त्विक व्यवस्था है? विज्ञान द्वारा इन सभी प्रश्नों का जवाब कहां से मिलेगा?

वर्षों से जो निरन्तर परिवर्तनशील है, जिसके सिद्धान्तों में दिन-प्रतिदिन

परिवर्तन होते रहते हैं, जो स्वयं संपूर्ण सत्य को प्राप्त नहीं कर सकने का स्वीकार करता है, ऐसे आज के विज्ञान को ऑथेन्टिक मानकर उसके समीकरण अनुसार शास्त्रीय सत्य को नापने के बजाय सर्वज्ञ भगवंत ने निःस्वार्थ भाव एवं करुणा दृष्टि से बताए हुए शास्त्रों को, शास्त्रीय तथ्यों को, अतीन्द्रिय पदार्थों को सत्य के रूप में हृदय से स्वीकार करके सर्वज्ञ कथित तत्त्वों के साथ आधुनिक साइन्स कितनी हद तक किस प्रकार से शेक-हेण्ड करती है? इस विषय की सूक्ष्म दृष्टि से खोज करना वही सच्चा-सलामत और सरल मार्ग है।''[68]

उत्तर आगम और विज्ञान में परस्पर कहां तक समन्वय होता है, कहां तक नहीं यह अपने आप में एक स्वतन्त्र अन्वेषण का विषय है। परन्तु किसी भी विषय की मीमांसा को सत्यपरक बनाने के लिए यह आवश्यक है कि अनेकान्त दृष्टिकोण का प्रयोग हो और एकान्तिक आग्रह के आधार पर चिन्तन न हो, भले यह विषय विद्युत् के सचित्त-अचित्त का हो या पदार्थों के भक्ष्य-अभक्ष्य आदि का। जब हम किसी बिन्दु पर विज्ञान की दृष्टि से विचार करते हैं, तो इसका अर्थ यह कर लेना कि 'हम उसके (विज्ञान के) समीकरण अनुसार शास्त्रीय सत्य को नापने का प्रयत्न कर रहे हैं', ठीक नहीं है।

हमने प्रारम्भ में ही इस विषय में काफी स्पष्ट कर दिया था कि जो बात आगम-प्रमाण द्वारा स्पष्ट है, उसे विज्ञान की ओथेन्टीसीटी की अपेक्षा नहीं है, पर जिन विषयों पर आगम में स्पष्टता नहीं है, उन्हें विज्ञान के सन्दर्भ में समझने की कोशिश करने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। साथ में जिन अपेक्षाओं से जो तथ्य आगमों में निर्दिष्ट है, उन अपेक्षा या दृष्टि को स्पष्ट करने में जहां विज्ञान हमें सहायक होता है, वहां उसको यह कहकर अस्वीकार करना कि ''वह निरन्तर परिवर्तनशील है, उसके सिद्धान्तों में दिन-प्रतिदिन परिवर्तन होते रहते हैं। वह स्वयं पूर्ण सत्य को प्राप्त नहीं कर सकने को स्वीकार करता है'' कहां तक ठीक है?

जहां तक स्थावर-काय के जीवत्व का प्रश्न है, विज्ञान ने केवल वनस्पतिकाय के जीवत्व को स्वीकार किया है, शेष स्थावरकायों के जीवत्व को नहीं। इसलिए हम विज्ञान के आधार पर स्थावर जीवों के जीवत्व-अजीवत्व की मीमांसा कैसे कर सकते हैं? पर पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु के स्वरूप समझने में यदि हमें वैज्ञानिक सिद्धान्त सहायक होते हैं, तो भी उनका परहेज करना यह कहां तक ठीक है?

दूसरी बात है एक ओर विज्ञान को अपूर्ण बताकर उसकी ओथेण्टीसीटी को अस्वीकार करना और दूसरी ओर उसी के आधार पर विद्युत् को सचित्त सिद्ध करने की कोशिश करना क्या ये दोनों असंगत नहीं हैं?

हम न विज्ञान को ओथेन्टिक मानकर उसके समीकरण अनुसार शास्त्रीय सत्य

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

को नापते हैं और न ही अतीन्द्रिय पदार्थों को अस्वीकार करने की बात कहते हैं, न हम आगम-प्रधानता की अपेक्षा विज्ञान-परस्तता के हामी हैं। हमने आगम के आधार पर ही विद्युत् की अचित्तता तथा विज्ञान के आधार पर ही उसकी पुष्टि करने का प्रयत्न किया है। आगमसम्मत वैज्ञानिक तथ्यों को झुठलाकर अवैज्ञानिक (मनगढ़त्त) कल्पनाओं के आधार पर विद्युत् की सचेतनता को सिद्ध करने का प्रयत्न करना यह सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है कि भ्रान्तियों एवं पूर्वाग्रहों के जाल से मुक्त हुए बिना न आगम की सही श्रद्धा की पुष्टि हो सकती है और न विज्ञान की आगम-अविरोधी तथ्यों की सही जानकारी।

प्रश्न 26. ''क्या त्रिकालअबाधित आगमों में शोध का अवकाश है? और वह भी विज्ञान के द्वारा आगम को शुद्ध करने का? क्या सर्वज्ञकथित आगम कमजोर हैं कि उन्हें अपनी सत्यता साबित करने के लिए विज्ञान का सहारा लेना पड़े? विज्ञान के आधार पर आगम में शोध-खोज की आवश्यकता हो तो मुख्यता विज्ञान की साबित होगी या आगम की? तीर्थंकर भगवन्त सर्वज्ञ होने से साक्षात् प्रत्यक्ष रूप से तीनों जगत् के तमाम पदार्थों को जानते हैं देखते हैं। जबकि विज्ञान के पास तो जानने के साधन भी कमजोर हैं। विज्ञान के साधन कितने भी सक्षम क्यों न हों फिर भी उनके द्वारा अतीन्द्रिय पदार्थों का साक्षात्कार हो सके, ऐसी कोई सम्भावना भी नहीं है।

एक तरफ विज्ञान के साधनों को पंगु स्वीकार करना और इसके बावजूद भी विज्ञान के आधार पर आगम में छानबीन करनी यह तो फ्रेम के नाप अनुसार ऐतिहासिक चित्र को काटने जैसा हुआ। इसमें विद्वत्ता भी किस प्रकार से कही जा सकती है।

वास्तव में तो फ्रेम के नाप अनुसार फोटो को काटकर दीवार पर लटकाने के बजाय फोटो के नाप के अनुसार फ्रेम तैयार करनी यही बुद्धिमत्ता की निशानी है। फोटो यानी सर्वज्ञ-वीतरागकथित तत्त्व और फ्रेम यानी आधुनिक साइन्स के समीकरण। आत्मा, कर्म, स्वर्ग, नरक, निगोद में अनन्त जीव, मोक्ष, आश्रव, संवर, बंध, निर्जरा, वगैरह में से एक भी तत्त्व को नापने की फुटपट्टी जिस आधुनिक साइन्स के पास नहीं है, उसके आधार पर सर्वज्ञकथित आध्यात्मिक अतीन्द्रिय तत्त्वों को नापना-जांचना यह तो जन्मांध व्यक्ति द्वारा दिए गए श्वेत-श्याम आदि रूप के फैसले को मान्य रखने जैसी बात हुई। श्वेत आदि रूप से सम्बन्धित निर्णय करने में हजारों जन्मांध व्यक्तियों के फैसले की तुलना में किसी एक ऐसे व्यक्ति का फैसला, जो आंख से देख सकता है, उसे मान्य करने में ज्यादा बुद्धिमत्ता है। छद्मस्थ जीव बुद्धिशाली हों फिर भी अतीन्द्रिय बाबत में तो केवल सर्वज्ञ वीतराग भगवन्त का ही निर्णय मान्य हो

सकता है।''[69]

उत्तर जहां आगम द्वारा स्पष्ट प्रतिपादन उपलब्ध हो, वहां विज्ञान के आधार पर आगम की छानबीन की अपेक्षा नहीं होती, पर जिस विषय में आगम स्पष्टतः कोई विधान-निषेध नहीं करता, वहां विज्ञान द्वारा प्रस्तुत अवधारणा से बिलकुल परहेज करना सत्य-सन्धित्सु के लिए कहां तक उचित होगा?

आज विज्ञान के क्षेत्र के ऐसे विवेचन हमें उपलब्ध हो रहे हैं, जो सामान्य इन्द्रिय-ज्ञान से जानना सम्भव नहीं है। उनके आधार पर हम सत्य की खोज की दिशा में आगे बढ़ें, तो उसमें कहां आगम के प्रति हमारी श्रद्धा में कमी आती है? बल्कि बहुत-से ऐसे विषय जो आगमों में केवल संकेत रूप में या अज्ञात अपेक्षा से प्रतिपादित हैं, उन्हें विज्ञान द्वारा स्पष्ट करना हमारी आगम-श्रद्धा को और अधिक दृढ़ करता है। जहां जैनाचार्यों द्वारा यहां तक की उदारता व्यक्त है

पक्षपातो न मे वीरे, न द्वेषः कपिलादिषु।
युक्तिमद् वचनं यस्य, तस्य कार्यः परिग्रहः॥

''न मेरा वीर के प्रति पक्षपात है, न कपिल आदि के प्रति द्वेष है। जिसका वचन युक्तिसंगत है, उसका ही ग्रहण करना चाहिए।'' वहां यदि कोई विज्ञान के युक्तिसंगत ही नहीं, स्पष्ट प्रयोगों से प्रमाणित सांव्यावहारिक प्रत्यक्ष पर आधारित और आगम अविरोधी तथ्यों को भलीभांति कसकर काम में लेता है, तो भी उसे ऐसा मानना कि वह फ्रेम के अनुसार फोटो की कांटछांट कर रहा है, क्या आग्रह-बुद्धि का ही प्रदर्शन नहीं है?

जब 'इलेक्ट्रीसीटी' का विषय सीधे रूप में आगम में चर्चित ही नहीं है, वहां आगम द्वारा प्रदत्त अन्य संकेत तथा विज्ञान द्वारा प्रदत्त सर्वमान्य/सर्वग्राह्य अवधारणा को आधार मानकर उसके स्वरूप का विवेचन ही हमारे लिए 'व्यवहार' का सर्वश्रेष्ठ मार्ग बचता है। आचार्य महाप्रज्ञ ही नहीं, अनेक अन्य जैन विद्वानों तथा दूसरे विद्वानों ने सैकड़ों ऐसी बातों को विज्ञान के आधार पर स्पष्ट कर जैन दर्शन की वैज्ञानिकता को 'व्यवहार' के धरातल पर सुस्पष्ट किया है, वहां अगर ऐसा माना जाए कि सर्वज्ञ-प्रणीत तत्त्व को विज्ञान के द्वारा नापने की कोशिश हो रही है या सर्वज्ञ के प्रति अश्रद्धा हो रही है, तो वह उचित नहीं है। जैसे पहले भी बताया गया है सर्वज्ञ-प्रणीत बहुत सारे तथ्य सही परिप्रेक्ष्य में समझने के लिए अथवा उसके पीछे रही सापेक्षता क्या है, उसे भलीभांति ग्रहण करने के लिए विज्ञान की अवधारणाएं जहां सहायक बनती हैं, वहां उनका उपयोग हमारे सम्यग् बोध को ही स्पष्ट करेगा, सर्वज्ञ-प्रणीत तत्त्व के प्रति अश्रद्धा नहीं।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

अस्तु, प्रस्तुत प्रसंग इलेक्ट्रीसीटी क्या है? सजीव है या निर्जीव? आकाशीय विद्युत् (lightning), तार में प्रवाहमान विद्युत् प्रवाह (electric current) और मनुष्य तथा अन्य प्राणियों के जीवित शरीर में कार्यरत विद्युत् (bio-electricity) कहां तक सदृश है, कहां तक विसदृश आदि विषय तो निश्चित रूप से विज्ञान की अवधारणाओं, सिद्धान्तों और प्रयोगों से जितने स्पष्ट समझे जा सकते हैं, उतने एकांगी ज्ञान से नहीं यह अपने आप में ही निर्विवाद है। उदाहरणार्थ वनस्पति जीव है, यह जैन आगमों में प्रतिपादित है। आज विज्ञान ने अनेक प्रयोगों से वनस्पतिकाय में होने वाले संवेदन, भाव आदि को स्पष्ट कर दिया है। इससे उन जीवों में विद्यमान आहार-संज्ञा, भय-संज्ञा, मैथुन-संज्ञा, परिग्रह-संज्ञा आदि स्थानांग सूत्र में प्रतिपादित दस संज्ञाओं को भलीभांति समझने में और सुविधा होती है।[70] तो क्या हम ऐसे वैज्ञानिक तत्त्वों की उपादेयता को अस्वीकार करें? प्रत्युत इन प्रयोगों से तो सर्वज्ञ-प्रणीत ज्ञान के प्रति हमारी श्रद्धा और सुदृढ़ होगी। इसी प्रकार यदि कोई वैज्ञानिक शोध आदि द्वारा पृथ्वी आदि जीवों के जीवत्व को समझने में सुविधा होगी, तो क्या हम उन्हें नहीं मानेंगे?

प्रश्न 27. ''दूसरी एक महत्त्व की बात यह है कि **ओघनिर्युक्ति, आचारांगसूत्र** वगैरह आगमों में बताए अचित्त अग्निकाय, अचित्त अप्काय वगैरह पदार्थों को निर्जीव मानने में और हमारे प्रस्तुत विश्लेषण में कोई भी विरोधाभास नहीं है। **सूत्रकृतांग** (श्रुतस्कन्ध-1/अध्य. 5/उद्देशो-1/गा. 10 से 39) और **उत्तराध्ययन** (92/24-44-45) सूत्र में बताए मुताबिक नरक में अग्निकाय जीव नहीं होने पर भी वहां पर सख्त गरमी होने का हम स्वीकार करते हैं। सूर्य के गरम किरणों को हम शास्त्र अनुसार निर्जीव ही मानते हैं। ये सभी बातें निर्विवाद रूप से हमें मान्य ही हैं। हम जुगनू को अग्नि नहीं मानते तथा शरीर की गर्मी अथवा चन्द्रमा के किरणों को या स्वयं प्रकाशक मणि-रत्न इत्यादि के उद्योत को सजीव अग्निकाय नहीं मानते। किन्तु 'बिजली निर्जीव अग्निकाय है' ऐसा कोई भी शास्त्र-पाठ बताए बिना उसे अचित्त = निर्जीव के रूप में किस प्रकार से जाहिर किया जा सकता है? शास्त्राधार बिना अपनी मरजी के मुताबिक विद्युत्-प्रकाश को निर्जीव रूप से जाहिर करने का अधिकार असर्वज्ञ को किस प्रकार से मिल सकता है?''[71]

उत्तर जैसे सूर्य का आतप शास्त्राधार से निर्जीव मानने में कोई आपत्ति नहीं है, वैसे ही इलेक्ट्रीसीटी (यानी स्निग्ध-रुक्ष गुणधर्म) को भी पौद्गलिक परिणमन की क्रिया-रूप स्वीकार करने में कहां आपत्ति है? शब्द, आतप आदि की भांति ही यह एक सार्वभौम पौद्गलिक परिणमन ही है, जो वैस्रसिक, प्रायोगिक और मिश्र तीनों रूप में सम्भव है। शास्त्रों में पुद्गल के परिणमन के अन्तर्गत जो स्निगध-रूक्ष की चर्चा है, वह 'इलेक्ट्रीसीटी' की ही है। केवल शब्दान्तर या भाषा-प्रयोग का अन्तर है। इसी प्रकार तेजोलेश्या (या तैजस् वर्गणा के पुद्गलों) के सम्बन्ध में उपलब्ध शास्त्रीय

चर्चा से भी इलेक्ट्रीसीटी की पौद्गलिकता भली-भांति सिद्ध हो जाती है। इस विषय की चर्चा भी हम प्रश्न 20 के उत्तर में कर चुके हैं। प्राचीन साहित्य की भाषा को समझना जरूरी है। स्निग्ध-रूक्ष का अर्थ ऋण-धन विद्युत् के रूप में स्वीकृत होने से यह स्पष्ट हो जाएगा कि इलेक्ट्रीसीटी स्वयं पुद्गल के मूल स्पर्श गुण की द्योतक है। रूक्ष-स्निग्ध से आकाशीय विद्युत् की उत्पत्ति बताने वाले प्राचीन पाठ (जिसको उद्धृत किया जा चुका है।) इस तथ्य के प्रमाण हैं। जैन दर्शन में वर्णित पुद्गल परमाणु और पुद्गल-स्कन्ध के निर्माण में मूल भूमिका स्निग्ध-रुक्ष की है, वैसे विज्ञान के अनुसार सभी मूलभूत तत्त्व (element) के परमाणु की संरचना में ऋण और धन विद्युत् की ही मुख्य भूमिका है। जब इतना स्पष्ट प्रमाण हमें मिल जाता है, तब फिर क्यों हम उसे स्वीकार न करें? इसमें कहीं भी संशय या अनिश्चय नहीं है।

प्राण, लेश्या आदि का शास्त्रीय विवेचन भी भली-भांति बताता है कि ऋण-धन विद्युत्, विद्युत्-चुम्बकीय तरंगों का विकिरण आदि को आगमकारों ने अपनी शब्दावली में प्रस्तुत किया है।

दूसरी ओर जब विज्ञान प्रत्यक्षतः इन जैन अवधारणाओं का ही समर्थन करता हुआ जैविक प्रक्रियाओं के लिए जैव विद्युत्, आभामण्डल आदि को व्याख्यायित करता है, तब जैन दर्शन में श्रद्धाशील के लिए तो बहुत ही गौरव का विषय बनता है कि कैसे हमारे प्राचीन ज्ञानियों ने इतने सूक्ष्म विषयों को अपने प्रकार से स्पष्ट किया था। आज तो विज्ञान के क्षेत्र में प्राण-प्रक्रिया, आभामण्डलीय परिणमन (यानी लेश्या के रंगों के प्रभाव) के क्षेत्र में होने वाले अनुसंधान जैन अवधारणाओं को और अधिक उजागर करते दृष्टिगोचर हो रहे हैं।

प्रश्न 28. ''प्रकाश चाहे दीपक आदि अग्नि का हो या विद्युत् (इलेक्ट्रीसीटी) के उपकरणों का हो, उसे ही कुछ जैन ग्रन्थ सचित्त तेउकाय बताते हैं। ऐसा मानने में क्या आपत्ति है?[72]

उत्तर प्रकाश को जैन आगमों में कहीं पर भी अग्निकाय या तेउकाय नहीं बताया है। उसको पौद्गलिक परिणमन या पर्याय के रूप में ही प्रस्तुत किया है। प्रकाश चाहे सूर्य का हो, चन्द्रमा का हो, तारा का हो, आकाशीय विद्युत् का हो या अग्नि-अंगारों का हो वह निर्जीव है। उसके स्पर्श को आगमों में कहीं वर्ज्य नहीं बताया है। ऐसी स्थिति में कुछ उत्तरकालीन ग्रन्थकारों की मान्यता के आधार पर उसे सचित्त तेउकाय मान लेना तथा वैज्ञानिक अवधारणाओं की काल्पनिक व्याख्या कर अपने पक्ष में प्रस्तुत करना कहां तक उचित है? इस विषय की सम्पूर्ण शास्त्रीय मीमांसा एवं वैज्ञानिक सिद्धान्तों की वास्तविकता प्रस्तुत करना बहुत जरूरी है। (देखें परिशिष्ट-1)

जिन उत्तरकालीन ग्रन्थों के सन्दर्भ उद्धृत हैं, वे सभी जैन परम्पराओं में मान्य

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

ग्रन्थ नहीं हैं। इसी प्रकार पंचांगी आगम का प्रामाण्य भी केवल सम्प्रदाय-विशेष में ही स्वीकृत है, शेष अन्य सम्प्रदायों द्वारा वे आगम के रूप में मान्य नहीं हैं।[73]

विज्ञान ने इलेक्ट्रोन, फोटोन आदि के सम्बन्ध में बहुत स्पष्ट रूप से अपने सिद्धान्तों को प्रस्तुत किया है। फोटोन-प्रकाशाणु किस प्रकार प्रकाश-ऊर्जा की इकाई है तथा किस प्रकार उसका कणरूप एवं तरंग-रूप प्रकट होता है, इसे भली-भांति समझने के बाद कहीं पर भी यह आशंका नहीं रहती कि वह सजीव हो। फोटो-इलेक्ट्रीक प्रक्रिया में फोटोन की पौद्गलिक ऊर्जा का ही रूपान्तरण इलेक्ट्रोन के विकिरण का निमित्त बनता है।[74] आगमों में जब सूर्य की किरणों के फोटोन को निर्जीव-पौद्गलिक बताया है तथा उसका स्पर्श यदि वर्ज्य नहीं है, तो उसे (फोटोन को) उत्तरकालिक ग्रन्थों के आधार पर सजीव मानकर इलेक्ट्रोन को भी उसके आधार पर सजीव बताना आगम की मान्यता का ही खण्डन करना है। सूर्य-किरणों वाले फोटोन और मोमबत्ती, दीये या अग्नि के प्रकाश के फोटोन को विज्ञान शत-प्रतिशत एकरूप-समान मानता है। फिर तो सूर्य के प्रकाश का स्पर्श भी वर्ज्य मानना चाहिए।

प्रश्न 29. ''अध्यात्म मार्ग का आधार अहिंसा है। इसलिए आरम्भ-समारम्भ छोड़ना प्रत्येक साधक का महत्त्व का कर्त्तव्य बन जाता है। सभी आरम्भ छूट न सकें फिर भी महाआरम्भ को तो छोटे-बड़े प्रत्येक साधक को छोड़ना आवश्यक है। उपर्युक्त अनेक आगम प्रमाणों की साक्षी से विद्युत् प्रकाश सजीव सिद्ध होने से उसकी विराधना को छोड़ना प्रत्येक साधक का कर्तव्य बन जाता है। तदुपरान्त षड्जीवनिकाय की विराधना में भी अग्निकाय की विराधना महाआरम्भ स्वरूप होने से जरूर त्याग करने के योग्य बन जाती है।

भगवतीसूत्र में भगवान **श्रीमहावीर स्वामीजी कालोदायी** को बताते हैं कि

'जे से पुरिसे अगणिकायं उज्जालेइ से णं पुरिसे महाकम्मतराए चेव, महाकिरियतराए चेव महासवतराए चेव महावेयणतराए चेव।...जे से पुरिसे अगणिकायं उज्जालेइ से णं पुरिसे बहुतरागं पुढविकायं समारंभति, बहुतरागं आउक्कायं समारंभति, अप्पतरायं तेऊकायं समारंभति, बहुतरागं वाऊकायं समारंभति, बहुतरागं वणस्सइकायं समारंभति, बहुतरागं तसकायं समारंभति' (भगवतीसूत्र शतक 7, उद्देशो 10, सूत्र 307)

अर्थात् ''अग्निकाय को जलाने वाले जीव बहुत से पृथ्वीकाय, जलकाय इत्यादि जीवों को नष्ट कर डालते हैं। इसीलिए वे महाकर्म बंध करते हैं, महाआरम्भक्रिया करते हैं, महाआश्रव का भोग बनते हैं, षड्जीवनिकाय को महावेदना देते हैं।'' इससे अग्नि को जलाने वाले तथा बल्ब वगैरह को चालू करने के द्वारा विद्युत्प्रकाश को उत्पन्न करने वाले व्यक्ति वास्तव में महाआरम्भ ही करते हैं ऐसा सिद्ध होता है।''[75]

इसी प्रकार आचारांग, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, निशीथभाष्य, निशीथसूत्रचूर्णि, प्रश्नव्याकरणसूत्र आदि में भी अग्निकाय के महाआरम्भ सम्बन्धी सन्दर्भ प्राप्त हैं।[76]

उत्तर अग्निकाय तेउकाय की हिंसा को जिस रूप में महाआरम्भ बताया है, उस रूप में उसे महाआरम्भ स्वीकार करने में कहां आपत्ति है? उसी प्रकार तेउकाय को आचारांग में दीर्घलोकशस्त्र, उत्तराध्ययन में सव्वभक्खी, दशवैकालिक में तीक्ष्ण शस्त्र के रूप में जो प्रतिपादित किया है, उसे कौन अस्वीकार करता है? यदि विद्युत् (इलेक्ट्रीसीटी) भी तेउकाय (अग्नि) रूप सिद्ध हो जाए, तो उस पर भी वही बात लागू हो जाएगी। इलेक्ट्रीसीटी किस रूप में तेउकाय बन सकती है और किस रूप में नहीं, इसकी विस्तृत चर्चा हम कर चुके हैं। इसलिए जहां इसका तेउकायिक रूप प्रगट होता है, वहां उसको अग्नि की भांति ही महा-आरम्भ माना ही जाए। पर जहां-जहां केवल पौद्गलिक परिणमन के रूप में ही है, वहां-वहां आरम्भ वाली बात लागू नहीं होती।

प्रश्न 30. ''प्रकाशमान बल्ब की गरमी के कारण उसकी बाहर की स्पर्श में आने वाले वायुकाय के जीवों की भी हिंसा होती है तथा रात्रि में लाईट के कारण आने वाले अनेक त्रसकाय के जीवों की भी विराधना होती है।''[77]

उत्तर यदि बल्ब की गरमी के कारण बाहर की सतह पर स्पर्श में आने वाले वायुकाय के जीवों की हिंसा हो, तो फिर किसी भी गरम पदार्थ के कारण पात्र आदि गरम होने पर स्पर्श में आने वाली वायुकाय के जीवों की हिंसा माननी पड़ेगी!

लाईट पर आने वाले त्रस जीवों की हिंसा लाईट जगाने वाले के प्रमाद से संबद्ध है। उसमें भी कृत, कारित, अनुमोदित, मनसा, वाचा, कायेन जुड़ने वाला दोषी होगा। (जैसा पंखे के विषय में बताया गया, वैसे यहां पर भी लागू होगा) देखें प्रश्न 33 का उत्तर, पृष्ठ 216।

प्रश्न 31. जहां विद्युत्-प्रवाह से न प्रकाश होता है या न तापमान तीव्र होता है, बल्कि केवल विद्युत्-ऊर्जा का गति ऊर्जा में रूपान्तरण होता है, वहां सचित्त तेउकाय की विराधना या हिंसा होती है, ऐसा मानना कहां तक संगत है? उदाहरणार्थ सेल से चालित हाथ घड़ी।

उत्तर हाथ घड़ी में सेल से विद्युत्-प्रवाह घड़ी की इलेक्ट्रोनिक सिस्टम को संचालित करता है। इसमें कहीं भी अग्नि या तेउकाय का कोई लक्षण प्रगट नहीं होता। उस स्थिति में यह स्पष्ट है कि यह केवल (कोरा) पौद्गलिक परिणमन ही है। सामान्य घड़ी जो स्प्रींग की यान्त्रिक ऊर्जा से चलती है, वह सेल वाली घड़ी में विद्युत् की ऊर्जा से चलती है। यदि विद्युत् का यान्त्रिक ऊर्जा से परिणमन मात्र ही सचित्त तेउकाय है, तो फिर शरीर में भी होने वाली यान्त्रिक क्रिया को सचित्त तेउकाय मानना होगा।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

शरीर में विद्युत्-ऊर्जा से संचालित गति आदि यान्त्रिक क्रिया में जैसे कहीं भी तेउकाय की विराधना नहीं है, वैसे ही घड़ी में भी कहीं ऐसी विराधना नहीं होती, यह स्पष्ट है।

प्रश्न 32. ''माईक के एम्प्लीफायर के ऊपर लगी हुई लाईट, आवाज के आरोह-अवरोह के साथ जलती-बुझती है और उसमें और भी दूसरी लाईटें चालू होती हैं। इसके अलावा ट्रांजिस्टर्स, रेजिस्टर्स, डायोड्स इत्यादि भी उसमें लगे हुए होते हैं। तथा माईक चालू हो तब उसमें से कुछ पार्ट्स तो बहुत गरम हो ही जाते हैं। यह बात सिर्फ माईक के एम्प्लीफायर के विषय में ही नहीं किन्तु इलेक्ट्रीसीटी आधारित फोन (मोबाइल भी), फैक्स, कम्प्यूटर, केल्क्युलेटर इत्यादि तमाम चीजों में समान रूप से लागू पड़ती है। इसमें ट्रांजिस्टर कितना भी छोटा क्यों न हो फिर भी वह गरमी का उत्सर्जन करता ही है। पेंटीयम वगैरह कम्प्यूटर्स की मुख्य चीप भी गरम होती ही है। इसलिए उसको ठण्डी करने के लिए हीटसिंक और पंखे का उपयोग किया जाता है। इसलिए वहां भी जीव विराधना होती है, यह स्पष्ट ही है।''[78]

उत्तर इलेक्ट्रीसीटी स्वयं निर्जीव है, ऐसा स्पष्ट सिद्ध होने पर भी इन सब साधनों का साधु स्वयं संचालन कर सकते हैं, ऐसा मानना उपयुक्त नहीं है। जिन साधनों के प्रयोग में किसी भी प्रकार की हिंसा कृत, कारित, अनुमोदित रूप में न हो तथा महाव्रतों, समिति, गुप्ति की विराधना न हो, ऐसे साधनों का उपयोग साधु स्वयं करे या न करे, यह व्यवहार का प्रश्न है। उदाहरणार्थ सेल द्वारा संचालित घड़ी का प्रयोग करने में ऐसा कहीं पर नहीं होता, इसलिए वह वर्ज्य नहीं है। माइक या लाईट गृहस्थों के उपयोग के लिए गृहस्थ प्रयुक्त करे, इसमें साधु को दोष कैसे लगेगा? फोन, फैक्स, टेलेक्ष आदि भी व्यवहार के विषय हैं। जो-जो चीजें कल्पनीय हैं, वे सारे करना साधु के लिए जरूरी नहीं हैं। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अपेक्षाओं के आधार पर इनका प्रयोग-अप्रयोग निर्दिष्ट हो सकता है।

इसी प्रकार माइक आदि का प्रयोग भी गृहस्थ लोग अपनी सुनने की सुविधा के लिए करते हैं। जैसे पण्डाल, स्टेज आदि सभा की सुविधा के लिए निर्मित होते हैं वैसे ही माइक, लाउडस्पीकर, एम्पलीफायर आदि का प्रयोग भी गृहस्थ लोग अपनी सुविधा के लिए करते हैं। यदि पण्डाल, स्टेज आदि का उपयोग साधु करते हैं, तो उन्हें दोष नहीं लगता, तो माइक में साधु की आवाज चली जाने से उसका दोष साधु को कैसे लगेगा? (टेलीफोन की प्रक्रिया में विद्युत्-ऊर्जा का ध्वनि के रूप में परिवर्तित होना भी पौद्गलिक परिणमन है। जहां तक तेउकाय की विराधना का सम्बन्ध है, टेलीफोन में बात करने से ऐसा होने की सम्भावना नहीं है।)

सौर सेल में सौर ऊर्जा से विद्युत्-ऊर्जा पैदा की जाती है। इसमें भी केवल

पौद्गलिक परिणमन ही है, सचित्त तेउकाय का प्रसंग नहीं बनता।

जहां माईक आदि में गर्मी होती है, तो क्या वह जीवकृत नहीं है? इस प्रश्न का उत्तर है बहुत सारे पौद्गलिक परिणमन ऐसे हैं, जहां गर्मी या उष्मा पैदा होती है; जैसे विस्रसा परिणमन केवल पौद्गलिक हैं, उन्हें जीव द्वारा कृत नहीं माना जा सकता। परम्पर रूप में सृष्टि के सभी परिणमनों में जीव और पुद्गल का संयोग किसी-न-किसी रूप में जुड़ा हुआ है। किन्तु उसका तात्पर्य यह नहीं है कि अनन्तर रूप में सभी परिणमन में जीव का योग अवश्य है। (विस्तृत चर्चा प्रश्न 23 के उत्तर में की जा चुकी है।)

प्रश्न 33. ''एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह है कि तेरापंथी साधु-साध्वी पंखे का उपयोग करते हैं। उसमें उनका आशय शासन की प्रभावना करने का है या शरीर की सुखशीलता को पुष्ट करने का है? पंखे के उपयोग में वायुकाय की विराधना तो स्पष्ट है ही। तदुपरांत कितनी बार उड़ते हुए पंछी वगैरह की भी वहां विराधना होती है। तब फिर पंखे का उपयोग तेरापंथी साधु किस लिए करते हैं? यह बात समझ में नहीं आती। क्या इससे जीवनभर षड्जीवनिकाय की हिंसा का त्याग करने का महाव्रत दूषित नहीं होता?

14 पूर्वधर **श्री स्वयंभवसूरिजी** महाराज ने तो **दशवैकालिकसूत्र** में **'चेलेण वा चेलकणेण वा हत्थेण वा मुहेण वा अप्पणो वा कायं बाहिरं वा वि पुग्गलं न फुमेज्जा न वीएज्जा'** (द.वै. 4/4) ऐसा कहकर 'वस्त्र द्वारा या वस्त्र के अंचल से, अथवा हाथ द्वारा, या मुंह द्वारा, स्वयं के शरीर को अथवा बाहर की किसी भी चीज को फूंकने का, बुझाने का कार्य साधु मन-वचन-काया से करना-कराना-अनुमोदना 'छोडे' इस प्रकार की वायुकाय की रक्षा की बात बताई है। 14 पूर्वधर **श्री भद्रबाहुस्वामीजी** महाराज ने भी **आचारांग निर्युक्ति** में

'वियणे अ तालयंटे सुप्पसियपत्त चेलकण्णे य।
अभिधारणा य बाहिं गंधग्गी वाउसत्थाइं॥'

(आ.नि.श्रु. 1/अ. 1/3.7/गा. 170) ऐसा कहकर उन्होंने वीजणा पंखा वगैरह की, वायुकाय की हिंसा के साधन के रूप में, पहचान कराकर उनसे दूर रहने की सलाह दी है।''[79]

उत्तर पंखे के चलने से वायुकाय की विराधना होती है, जो साधु के लिए कृत, कारित, अनुमोदित, मनसा, वाचा, कायेन वर्ज्य है। किन्तु जहां पंखा चलता हो, वहां बैठने से वायुकाय की विराधना का कोई प्रसंग नहीं होता। यदि पंखे को साधु चलवाए या चलते हुए का अनुमोदन करे, तो अवश्य वह दोष का भागी बनेगा। जहां

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

साधु बैठे हों वहां अन्य कोई व्यक्ति अपनी सुविधा के लिए पंखा चलाए, तो उसमें साधु को दोषी ठहराना संगत नहीं है। उस स्थिति में साधु का कर्तव्य है कि वह अपने भावों का संयम करे पंखे से मिलने वाले सुख की कामना न करे, मन से भी अनुमोदना न करे। यदि कोई ऐसा करता है, तो उसे निश्चित ही दोष लगेगा, यह स्पष्ट है। जैसे गृहस्थ हिंसा कर अपने निमित्त से भोजन, पानी, वस्त्र, मकान, औषध आदि का निर्माण करता है और साधु को देने पर साधु उसे शुद्ध (निर्दोष) आहार, पानी आदि के रूप में ग्रहण करता है, तो साधु को कोई दोष नहीं लगता, पर यदि साधु के भावों में इन सबके प्रति किसी प्रकार की भावना हो या मानसिक अनुमोदन भी हो, तो साधु दोष का भागी बनता है। वैसे ही पंखे के सम्बन्ध में है। पंखे की हवा लगने मात्र से उसकी हिंसा में साधु को संभागी मान लेने का कोई औचित्य दिखाई नहीं देता।

इसमें कहीं दो राय नहीं है कि साधु को न स्वयं विद्युत् संचालिक पंखा चलाना कल्पता है, न चलवाना और न अनुमोदन करना। इसमें भले ही विद्युत् निर्जीव है; हाथ पंखा भी तो निर्जीव ही है, पर उसका प्रयोग साधु के लिए त्रिकरण-त्रियोग से वर्ज्य है। उसी प्रकार विद्युत् चालित पंखे में भी है।

अब यदि गृहस्थ अपनी सुविधा के लिए पंखा चलाता है, वहां साधु को रहना कल्पता है या नहीं? इस प्रश्न का गंभीर चिन्तन जरूरी है। यदि साधु गृहस्थ द्वारा चालित पंखे का अनुमोदन (मनसा, वाया, कायेन) न करे और माध्यस्थ भाव से वहां स्थित हो, तो वायुकाय की विराधना का दोष साधु को कैसे लगेगा? क्योंकि पंखे द्वारा हो रही वायुकाय की हिंसा में साधु की उपस्थिति किसी भी रूप में निमित्तभूत नहीं है। इस विषय की चर्चा पहले भी की जा चुकी है। यदि जहां पंखा चलता हो वहां साधु को रहना ही नहीं कल्पता तो फिर पंडाल आदि में रहना कैसे कल्पेगा?

इसलिए स्पष्ट है कि जिस क्रिया में साधु त्रिकरण-त्रियोग से जुड़ा हुआ नहीं है, उसका दोष साधु को नहीं लगता। गृहस्थ अपने उपयोग के लिए जिन साधनों का प्रयोग करता है और उनमें वहां वायुकाय या त्रसकाय या अन्य कोई भी जीवों की हिंसा होती है, तो उसका पाप गृहस्थ को लगता है। यदि साधु उसको न करता है, न कराता है, न अनुमोदन करता है तो उसका दोष नहीं लगेगा।

माइक, लाईट आदि की चर्चा भी हम कर चुके हैं।

प्रश्न 34. ''दूसरी एक महत्त्व की बात यह है कि विद्युत्-प्रकाश के उपयोग में मात्र स्थावरकाय और त्रसकाय जीवों की विराधना का दोष लगता है ऐसा नहीं है। इलेक्ट्रीसीटी की उत्पत्ति में भी बहुत सारे त्रसकाय पंचेन्द्रिय जीवों की हिंसा का महादोष लागू पड़ता ही है। जिन महानदियों में डेम बांधकर टरबाइन के माध्यम से

विद्युत् उत्पन्न की जाती है वहां टरबाइन के तीक्ष्ण दांतों से लाखों मछलियों की हिंसा होती है। टरबाइन के दांतों में फंसकर कटी हुई मछलियों के थोकबंद मांस से टरबाइन बंध न हो जाए इसलिए प्रत्येक छः-आठ घण्टों के अन्तर में उसके दांतों को साफ करते हैं। उसमें से टनबंध मांस निकलता है। टरबाइन के पास में बहुता हुआ पानी भी मछलियों के खून से लाल हो जाता है। इतनी घोर हिंसा के बाद इलेक्ट्रीसीटी उत्पन्न होती है। इस प्रकार की हिंसा का पाप इलेक्ट्रीसीटी का उपयोग करने वाले को अवश्य लगता है। इसलिए इलेक्ट्रीसीटी के उत्पादन में हिंसा और वह सजीव होने के कारण उसके उपयोग में भी हिंसा का दोष स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

वास्तव में त्रस-स्थावर दोनों प्रकार के ढेर सारे जीवों की हिंसा से कलंकित हुए माइक-लाईट-फोन-फेक्स वगैरह का उपयोग जीवनपर्यन्त सर्व हिंसा के त्यागी ऐसे जैन साधु-साध्वीजी भगवन्त किस प्रकार से कर सकते हैं? ऐसा करें तो उनका अहिंसा महाव्रत किस प्रकार से निर्मल रह सकता है?[80]

उत्तर जैन साधु ऐसी कोई चीज का प्रयोग नहीं कर सकता, जिसमें महाआरम्भ तो क्या, अल्प आरम्भ भी हो। इसीलिए आहार आदि भी सहज-निष्पन्न होने से ही साधु ग्रहण करते हैं। आहार की भांति ही वस्त्र, पात्र, उपकरण, स्थान, औषध आदि सभी चीजें बिना आरम्भ कहीं नहीं बनती। इनके आरम्भ में भी बिजली का प्रयोग अनन्तर या परम्पर रूप में होता ही है। यदि बिजली की उत्पत्ति में महाआरम्भ के आधार पर उसके उपयोग को सदोष माना जाए तो फिर बिजली की सहायता से निष्पन्न उक्त चीजों का भी उपयोग साधु कैसे कर सकते हैं? जिस प्रकार सहज निष्पन्न उपयुक्त चीजों का उपयोग साधु के लिए विहित है, उसी प्रकार माइक, लाईट आदि गृहस्थों की सुविधा के लिए गृहस्थों द्वारा प्रयुक्त हो तो उसका दोष साधु को कैसे लगेगा? टरबाइन में मछली आदि के कटने की हिंसा की क्रिया उन्हें लगेगी जो कृत, कारित, अनुमोदित रूप में उसमें जुड़ते हैं, फिर भले ही वे साधु हो या गृहस्थ। गृहस्थ की अपनी सुविधा के लिए लगे माइक, लाईट आदि का दोष यदि साधु को भी लगेगा तो फिर गृहस्थों के लिए निर्मित पंडाल, स्टेज, मकान (उपाश्रय) आदि का दोष साधु को क्यों नहीं लगेगा? जहां तक धर्म-प्रचार का सम्बन्ध है हिंसा के माध्यम से धर्म प्रचार करना ही जब अधर्म है तो हिंसा के द्वारा धर्म-प्रचार करना विहित कैसे होगा? पर जैसे पुस्तक-मुद्रण आदि में लगने वाली क्रिया साधु को नहीं लगती वैसे ही माइक आदि की क्रिया भी साधु को कैसे लगेगी? यदि धर्म-प्रचार के लिए पुस्तक आदि का लेखन साधु कर सकते हैं तो फिर अपनी यतनापूर्वक उपदेश देने में साधु कैसे दोषी होगा? माइक आदि गृहस्थ अपनी सुविधा के लिए लगाते हैं, यह बात वैसी ही है जैसे पुस्तक का मुद्रण आदि गृहस्थ अपनी सुविधा के लिए करते

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

हैं। न पुस्तक-मुद्रण में साधु कृत, कारित, अनुमोदित रूप में संलग्न हो सकता है, न माइक आदि के प्रयोग में।

जैन साधु पांच महाव्रतों का पालन करते हुए ही धर्म-प्रचार करते हैं। इसीलिए वे पुस्तक-मुद्रण जैसी सावद्य प्रवृत्तियों को न कर सकते हैं, न करवा सकते हैं, न उनका अनुमोदन कर सकते हैं। यदि इस सम्बन्ध में वे महाव्रतों का पालन वफादारी से कर सकते हैं तो फिर धर्म-उपदेश एवं प्रचार के कार्य को उस प्रकार क्यों नहीं कर सकते? पुस्तक-मुद्रण और माइक, लाईट आदि के साथ साधु की संलग्नता समान है। निश्चित ही संयम-धर्म को विशुद्ध रखकर ही जैन साधु धर्म-प्रचार करे, यही वांछनीय है।

आचार्य तुलसी ने तेरापंथ की नीति को स्पष्ट करते हुए 'माइक आदि विषय' की चर्चा इस प्रकार की है

''तटस्थता की नीति

संशोधन और परिवर्तन की नीति के साथ कुछ विषयों में हमने तटस्थता की नीति अपनाई है। फोटो, टेपरिकॉर्डिंग, बिजली आदि कुछ ऐसे विषय हैं। गृहस्थ अपने प्रयोजनों से इनका प्रयोग करता है, उसमें साधु तटस्थ रहे तो कोई दोष प्रतीत नहीं होता। तटस्थता की नीति से मेरा अभिप्राय है निषेध और अनुमोदन, इस द्वन्द्व से बचकर अप्रमत्त भाव से व्यवहार करने की नीति।

प्रमादवश कुछ भूलें हो जाना असम्भव नहीं है। भूल का समर्थन भी नहीं किया जाना चाहिए। यदि इन कार्यों में साधु की प्रेरणा या लगाव हो तो वह वांछनीय नहीं है। इसके साथ-साथ यह मानकर भी नहीं बैठना चाहिए कि इन कार्यों में प्रेरणा या लगाव हुए बिना कोई रह ही नहीं सकता। व्यवहार की ऐसी अनेक प्रवृत्तियां हैं, जिनसे साधु को तटस्थ रहना जरूरी होता है समर्थन और निषेध, इन दोनों से बचकर अपनी स्थिति में रहना होता है।

माइक का प्रयोग मुख्यतः सुनने वालों की उपयोगिता है साधु इस पर बोले तो उसकी भी पूरी तटस्थता बरतनी होती है। इसका निषेध न करे तो उसकी प्रेरणा भी नहीं करनी चाहिए। निषेध और प्रेरणा के बीच का रास्ता अवश्य ही बहुत संकरा है। किन्तु, उस पर चला नहीं जा सकता, ऐसा नहीं माना जा सकता।

उक्त प्रवृत्तियों में मुनि निमित्त बनता है। और, निमित्त बनने से बचना देह धारण और व्यवहार की स्थिति में सम्भव भी कहां है? यदि मुनि उन प्रवृत्तियों में लिप्त न हो तो वह उनकी आसक्ति से अपने आपको बचा सकता है।''[81]

प्रश्न 35. ''एक और महत्त्व की बात तो यह है कि सचित्त (= सजीव) तेउकाय के लक्षण जिसमें दिखाई देते हैं वैसी इलेक्ट्रीसीटी और बल्बप्रकाश में निर्जीवता का निश्चय असर्वज्ञ को किस प्रकार से हो सकता है? असर्वज्ञ व्यक्ति तो ऐसा व्यवहार नहीं कर सकता। **यदि स्वयं के पास उपलब्ध साधन सामग्री द्वारा किसी चीज की निर्जीवता का अभ्रान्त निर्णय नहीं हो सकता तो छद्मस्थ साधु-साध्वीजी भगवंत उस चीज का उपयोग-उपभोग उत्सर्ग मार्ग से नहीं कर सकते** यह बताने के लिए तो श्रमण भगवान महावीर ने केवलज्ञान के बल से तालाब के पानी को निर्जीव जानते हुए भी अत्यन्त प्यास से व्याकुल साधुओं को उस प्रासुक-निर्जीव जल को पीने की अनुज्ञा नहीं दी। क्योंकि केवलज्ञान द्वारा निर्जीव दिखाई देने वाला वह पानी छद्मस्थ जीवों के पास रहने वाली ज्ञान-सामग्री से निर्जीव स्वरूप निश्चित हो सके ऐसा सम्भव नहीं था। ऐसा होने पर भी प्यास से व्याकुल साधुओं को यदि वैसे पानी को पीने की छूट दें तो भविष्यकाल में अनेक साधु अपने पास उपलब्ध साधन-सामग्री से निर्जीव स्वरूप नहीं जान पाने वाली चीज वस्तुओं का भी प्रस्तुत दृष्टान्त के आलम्बन द्वारा उत्सर्ग मार्ग से उपयोग करने लगेंगे यह प्रबल संभावना थी। ऐसी गलत परंपरा का प्रारंभ हो जाएगा। परमकृपालु परमात्मा कैसे होने देते? इसलिए उन्होंने वह पानी निर्जीव होते हुए भी उस पानी को पीने की आज्ञा नहीं दी। यह समस्त घटना **आचारांगवृत्ति** में **श्रीशीलांकाचार्य** ने इस प्रकार से बताई है

''कालतस्त्वचित्तता स्वभावतः स्वायुःक्षयेण वा। सा च परमार्थतोऽतिशयज्ञानेनैव सम्यक् परिज्ञायते, न छाद्मस्थिकज्ञानेनेति न व्यवहार-पथमवतरति। अत एव च तृषाऽतिपीडितानामपि साधूनां स्वभावतः स्वायुःक्षयेणाऽचित्तीभूतमपि तडागोदकं पानाय वर्धमानस्वामी भगवान् नानुज्ञातवान्, इत्थंभूतस्याऽचित्तीभवनस्य छद्मस्थानां दुर्ल्लक्ष्यत्वेन मा भूत् सर्वत्राऽपि तडागोदके सचित्तेऽपि पाश्चात्यसाधूनां प्रवृत्तिप्रसङ्ग इति कृत्वा' (आचारांगनिर्युक्ति अध्ययन-1 पृथ्वीकाय/गा. 13 की वृत्ति)

इस अति उत्तम ऐतिहासिक और आगमिक आदर्श को नजर समक्ष रखकर, प्रकाश-दाहकता इत्यादि तेउकाय के लक्षण जिसमें दिखाई देते हैं वैसी इलेक्ट्रीसीटी का, विद्युतप्रकाश का, इलेक्ट्रीसीटी पर आधारित समस्त साधनों का औत्सर्गिक उपयोग, सर्व हिंसा का जीवनभर त्याग करने वाले साधु-साध्वीजी भगवंत किस प्रकार से कर सकते हैं?

इससे निष्कर्ष निकलता है कि केवलज्ञान द्वारा निर्जीव स्वरूप में निश्चित हुआ पानी भी श्रुतज्ञान की दृष्टि से निर्जीव रूप सिद्ध न हो तब उसका सजीव के रूप में व्यवहार करना यही सर्वज्ञ तीर्थंकर भगवन्तों को मान्य है। मतलब कि सजीव-निर्जीव

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

का व्यवहार तथा निर्णय करने के लिए हमारे लिए केवलज्ञान की तुलना में श्रुतज्ञान बलवान प्रमाण सिद्ध होता है। इस अपेक्षा से केवलज्ञान की तुलना में श्रुतज्ञान बलवान सिद्ध होता है तो मंदबुद्धि या शुष्क तर्क की तुलना में तो श्रुतज्ञान ज्यादा बलवान बनता ही है। हमारे लिए तो श्रुतज्ञान की ही सबसे ज्यादा विश्वसनीयता-उपादेयता-प्रमाणरूपता है ऐसा सूचित करने के लिए तो 'श्रुतधर गवेषणा करके, श्रुत के उपयोग से निर्दोष स्वरूप जानने के बाद, जो गोचरी लाते हैं, वह गोचरी केवली को दोषित दिखाई दे तब भी केवज्ञानी उस गोचरी का उपयोग करते हैं। अन्यथा श्रुत अप्रामाणित हो जाता है' ऐसा **भद्रबाहुस्वामीजी** ने **पिंडनिर्युक्ति** में बताया है। यह रही वह गाथा

'आहो सुओवउत्तो सुयनाणी जइ वि गिण्हइ असुद्धं।
तं केवली वि भुंजइ अपमाणं सुयं भवे इह रा ॥' (गा. 524)

इसीलिए तो किसी भी प्रकार के अतीन्द्रिय पदार्थ के स्वरूप वगैरह विषय में हमारे सभी संशय दूर करने के लिए श्रुतज्ञान ही अत्यन्त आदरणीय परम विश्वसनीय, दृढ़ आधारभूत और प्रबल प्रमाणभूत है।

वर्तमान में उपलब्ध पंचांगी आगम और आगमावलंबी श्रुत के माध्यम से उपर्युक्त प्रकार से विचार-विमर्श करते हुए हमें तो 'इलेक्ट्रीसीटी और बल्बप्रकाश वगैरह सजीव अग्निकाय ही हैं' ऐसा निश्चित रूप से मालूम पड़ता है। भवभीरु-पापभीरु मुनि-मुमुक्षु-श्रद्धालु आराधक व्यक्ति इस बाबत में मध्यस्थता से आगमानुसार निर्णय कर सकें इस आशय से आगमादि के वचन, तथा विज्ञान को भी आदर की दृष्टि से देखते हुए आराधक, विज्ञान और आगम के समन्वय से निश्चित कर सकें इसलिए आधुनिक साइन्स के सिद्धान्तों को भी प्रस्तुत विचारणा में आधार रूप से बताए हैं। दोनों दृष्टि से विचार करने से हमें 'इलेक्ट्रीसीटी और विद्युत बल्ब का प्रकाश ये दोनों सजीव अग्निकाय हैं।' ऐसा निसन्दिग्ध रूप से ज्ञात होता है।''[82]

उत्तर किसी चीज की सजीवता-निर्जीवता को सर्वज्ञ द्वारा विहित निर्देशों के आधार पर असर्वज्ञ जान सकता है। जैसे उष्ण जल या शस्त्रपरिणत जल साधु ग्रहण करता है, उस समय वह सर्वज्ञ द्वारा निर्दिष्ट कसौटियों को आधार बनाता है, वैसे ही अग्निकाय के लिए सर्वज्ञों द्वारा निर्दिष्ट कसौटियों को कसकर यह निर्णय लेना असर्वज्ञ के लिए कोई कठिन नहीं है कि विद्युत् (इलेक्ट्रीसीटी) अपने आप में निर्जीव है। उसके कौन-से प्रयोग में अग्निकाय या वायुकाय या त्रसकाय या अन्य कोई जीव की हिंसा हो सकती है या नहीं हो सकती उसका निर्णय भी सर्वज्ञ द्वारा निर्दिष्ट कसौटियों के आधार पर भलीभांति किया जा सकता है। जैसे हाथ-पंखी या पंखे का प्रयोग वायुकाय की विराधना में स्पष्टतः कारणभूत बनता है, वैसे ही बिजली द्वारा

चालित पंखा भी वायुकाय की विराधना का कारण बनता ही है। इसीलिए जैन साधु न स्वयं बिजली के पंखे को चलाए, न औरों से चलवाए और न ही चलते हुए का अनुमोदन करें, किन्तु गृहस्थों द्वारा अपनी सुविधा से चलाए गए पंखों के नीचे बैठे हुए साधु को वायुकाय की विराधना का दोषी कैसे माना जाएगा? यदि मन से भी उसका अनुमोदन वह कर देगा, तो दोष लगेगा ही।

जैन साधु जो भी चीजें ग्रहण करते हैं, वे अचित्त (निर्जीव) हैं, ऐसा निर्णय आगम, श्रुत, आज्ञा, धारणा और जीत इन पांच व्यवहारों के आधार पर करते हैं। इस विषय में श्रीमज्जयाचार्य ने बहुत स्पष्ट रूप से प्रतिपादत किया है। (देखें, टिप्पण संख्या 42)

इसी आधार पर तेरापंथ धर्मसंघ में राख या चूना से परिणत पानी को अचित्त मानकर ग्रहण किया जाता है। फल आदि सन्दर्भ में भी कौन-सा फल किस स्थिति में सचित्त है, किस स्थिति में अचित्त है, इसका निर्णय करने हेतु अलग-अलग कसौटियां निर्धारित की गई हैं। उसी तरह सैल द्वारा संचालित घड़ी का प्रयोग विहित माना गया है। बहुत सारी प्रवृत्तियां सदोष न हो, फिर भी जब तक उन्हें वर्ज्य माना जाता है, कोई भी साधु तेरापंथ धर्मसंघ में उन प्रवृत्तियों को नहीं कर सकता। इसी आधार पर माइक, लाईट आदि का प्रयोग साधु स्वयं नहीं करते। गृहस्थ अपनी सुविधा के लिए करते हैं; किन्तु माइक में साधु का शब्द जाने से साधु को दोष नहीं लगता, सहज-निष्पन्न लाईट आदि का प्रकाश काम में लेने से भी साधु को दोष नहीं लगता, इसलिए इस प्रकार के कार्यों का विधान तेरापंथ की मर्यादा में चिंतनपूर्वक किया गया है।

''श्रुतधर (मुनि) गवेषणा करके श्रुत के उपयोग से निर्दोष स्वरूप जानने के बाद जो ग्रहण करता है, वह केवली को अशुद्ध (दोषयुक्त) दिखने के बाद भी केवली उसका उपयोग करते हैं, अन्यथा श्रुत अप्रमाणित हो जाता है।'' यह उद्धरण ही बहुत स्पष्टतया श्रुतज्ञान के निर्णय को कसौटियों पर कसने के पश्चात् शुद्ध बताता है। विद्युत्-विषयक अवधारणा पर जो चिन्तन प्रस्तुत किया गया है, वह निर्जीव रूप में उसे सिद्ध करते हैं। इस श्रुतज्ञान का आधार ही व्यवहार में स्वीकार्य है। (यह पहले भी स्पष्ट कर चुके हैं कि जहां तक प्रामाण्य का सम्बन्ध है, तेरापंथ मूल 32 आगमों को ही प्रमाण के रूप में स्वीकार करते हैं। पंचांगी का प्रामाण्य मान्य नहीं है।)[83]

प्रश्न 36. ''पिंडनिर्युक्ति में 'जं संकियमावन्नो पणवीसा' (गा. 521) ऐसा कहकर **श्रीभद्रबाहुस्वामीजी** द्वारा बताई गई एक और बात यहां अनिवार्य रूप से याद आ जाती है। गोचरी लेने गए साधु को 'सामने पड़ी हुई भोजनादि सामग्री सचित्त है

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

अथवा अचित्त?' इस बात की यदि शंका हो जाए और उसका समाधान न होने पर यदि वह उस चीज को ग्रहण करता है तो उस साधु को सचित्तभक्षणनिमित्तक कर्मबंध होता है, नहीं कि अचित्तभक्षणनिमित्तकलाभ। इस दृष्टिकोण से विचार करते हुए कह सकते हैं कि उपर्युक्त अनेक आगम प्रमाण इत्यादि द्वारा किसी व्यक्ति को 'इलेक्ट्रीसीटी और विद्युत् प्रकाश दोनों सजीव हैं' यह निर्णय न होने पर भी 'यह सजीव है या निर्जीव?' इस प्रकार की शंका भी हो तो ऐसे शंकाग्रस्त साधक को माइक-लाईट इत्यादि का उपयोग करने से तेउकाय विराधना-निमित्तक कर्मबंध ही होता है। इतनी बात तो निश्चित ही है। अभी तक जो यहां विचार किए गए हैं उनसे प्राज्ञों को इलेक्ट्रीसीटी और बल्बप्रकाश इत्यादि की सजीवता के सम्बन्ध में शंका भी उत्पन्न न हो, क्या यह संभव है?''[84]

उत्तर सर्वप्रथम तो शंका के लिए स्थान ही नहीं है। उपर्युक्त समग्र विवेचन से जब यह भली-भांति स्पष्ट है कि इलेक्ट्रीसीटी अपने आप में केवल पौद्गलिक परिणमन ही है, तब फिर शंका के लिए अवकाश कहां है? जहां तक लाईट-माइक आदि का सम्बन्ध है, उसके लिए जैसे ऊपर स्पष्ट किया गया है कि यदि साधु कृत-कारित-अनुमोदित से मुक्त रहता है तो फिर उसे कैसे उसका दोषी माना जाएगा?

अपने व्यवहार में अपने निर्णय का आधार अपना विवेक एवं संयम ही बनता है। भोजन आदि के ग्रहण में भी शंका का निवारण का आधार अपना विवेक एवं संयम ही होता है। उसके आधार पर शंका-रहित होकर ही साधु भोजन आदि ग्रहण करते हैं। उसी प्रकार प्रस्तुत प्रसंग में भी जब यह शंका नहीं है कि ''इलेक्ट्रीसीटी शायद सजीव हो'', तो उसी आधार पर निर्णय किया जाएगा। इलेक्ट्रीसीटी के कौन-से प्रयोग में यह सम्भावना है, इसका निर्णय करके ही शंकामुक्त होकर ही उस सम्बन्ध में व्यवहार किया जाए, तो कहां आपत्ति है?

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

भाग-2

टिप्पणी-क्रम

1. मुनि यशोविजयजी, विद्युत् सजीव या निर्जीव (द्वितीय आवृत्ति), पृष्ठ 15
2. वही, पृष्ठ 17, 18, 19
3. बल्ब में टंगस्टन के तार की पसंदगी क्यों की जाती है, वह निम्न उद्धरण से स्पष्ट हो रहा है (इंटरनेट से प्राप्त)

   "How does a regular lamp (light bulb) work?

   A normal incandescent lamp contains a double-wound tungsten filament inside a gas-filled glass bulb. By "double-round", I mean that a very fine wire is first wound into a long, thin spiral and then this spiral is again wound into a wider spiral. While the final filament looks about 1 or 2 centimeters long, it actually contains about 1 meter of fine tungsten wire. When the bulb is on, an electric current flows through the filament from one end to the other. The electrons making up this current carry energy, both in their motion and in the forces that they exert on one another. As they flow through the fine tungsten wire, these electrons collide with the tungsten atoms and transfer some of their energy to those tungsten atoms. The tungsten atoms and the filament become extremely hot, typically about 2500° Celsius. Tungsten wire is used because it tolerates these enormous temperatures without melting and because it resists sublimation longer than any other material. Sublimation is when atoms "evaporate" from the surface of a solid. The gas inside the bulb is there to slow sublimation and extend the life of the filament.

   Once the filament is hot, it tends to transfer heat to its colder surroundings. While much of its heat leaves the filament via convection and conduction in the gas and glass bulb, a significant fraction of this heat leaves the filament via thermal radiation. For any object that is hotter than about 500° Celsius, some of this thermal

   raidiation is visible light and for an object that is about 2500° Celsius, about 10% is visible light. The light that you see from the bulb is the visible portion of its thermal radiation. However, most of the filament's thermal radiation is invisible infrared light. While you can feel this infrared light warming your hand, you can't see it. Because only about 80% of the electric power delivered to the bulb becomes thermal radiation and only about 12% of that thermal radiation is visible, an incandescent light bulb is only about 10% energy efficient. Other types of lamps, including flourescent and gas discharge lamps, are much more energy efficient."

4. मुनि यशोविजयजी, पूर्व उद्धृत ग्रन्थ, पृष्ठ 19, 20
5. प्रथम भाग का टिप्पण 44 (a), (b), (c) द्रष्टव्य है।
6. मुनि यशोविजयजी, पूर्व उद्धृत ग्रन्थ, पृष्ठ 102
7. (a) Satish K. Gupta, op. cit., p. 736—

   "Hertz's experimental arrangement consists of two metal plates P_1 and P_2 held parallel to each other and connected to two metal spheres, S_1 and S_2 through thick metallic rods R_1 and R_2. The distance between the metal plates was about 60 cm and the separation between the two spheres was about 2–3 cm. The spheres can be slided over the rods, so as to adjust the gap between them. An induction coil is used to apply a high voltage of several thousand volt across the two metal plates. When the discharge of metal plates takes place in the form of a spark in the gap between spheres S_1 and S_2, eelctromagnetic waves are radiated. The waves so radiated can be detected with the help of a detector made of a circular coil and two metal spheres S_1' and S_2'

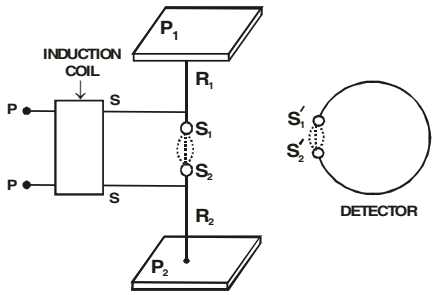

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

Explanation. The high potential difference across the metal plates ionises the air between the sphers S_1 and S_2 and allows a path for discharge of plates. During the discharge of plats, a sparks is produced between the spheres due to the high potential difference.

(= 5×10^7 Hz). It results in oscillations of charges on the plates at such a high frequency. Therefore, a highly ascillating electricfied is produced acrass the vertical gap between the tow sphers. It, in turn, produces a highly oscillating magnetic field of same frequency in horizontal plane and perpendicular to the gap between the spheres. The oscillating electric and magnetic fields constitute electromagnetic waves of the same frequency (5×10^7 Hz.) and these waves are radiated from the spark gap."

(b) Text-book of Physics (Std. XII), part II, Pages 95-97—

Here, Q_1 and Q_2 are two metallic spheres. Joined to them are two metallic rods M and N with some space between called spark gap S. The rods are connected to the two terminals of an induction coil to provide high intermittant voltage. The spheres Q_1 and Q_2 act as capacitors and the rods acts as inductors. This arrangement threfore, acts as an oscillagling circuit in which atternately Q_1 and Q_2 acquire positive and negative charges which reverse in their polarity each time a spark passes across the gap S. The process repeats itself rapidly with a difinite period.

The electromagnetic waves generated in the process are detected by another spark gap arrangement R placed at some distance

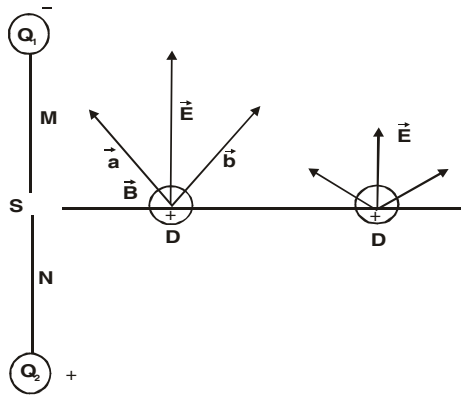

from S. The spheres Q_1 and Q_2 which can be adjusted along the rods M and N are slided so that the circuit of the gap S is in resonancw with R. The electromagnetic waves generated at S are then detected as sparks occuring across the gap R.

When a spark passes across S, a stream of electrons pass across the spark gap from the negatively charged sphere to the positively charged sphere, reversing their polarities. In this situation the direction of the electric field at C and D will be reversed. Thus, at each passage of spark the polarity of charges on Q_1 and Q_2 reverses and the electric field dirction in the surrounding region also reverses; i.e. the electric field oscillates.

Further, the stream of electrons crossing the spark gap constitutes a current. This alternating current in the spark gap generates an alternating magnetic filed in the neighbourhood. Application of Ampere's right hand rule readily shows that the resulting magnetic field is perpendicular to the electric field.

According to Maxwell's electromagnetic field theory, these electric and magnetic fields in the neighbourhood do not appear instantaneously. The influence of the oscillations of S spread to the neighbouring region with velocity of light. Thus, at various points in the region around S, the oscillations have phases which depend upon their distance from S.

7. (c) देखें, प्रथम भाग, टिप्पण 54, 55

8. देखें, प्रथम भाग, टिप्पण 61

9. http://www.edmtt.com/articles reports/edmprocesses.html. by Dean Brink, President and Technical Director, EDM Technolgoy Transfer. EDM: Principles of operation, Part I, Different types of machining processes that use EDM. Pages 1, 2, 3

10. G.E.C. Type K Oil Circuit Breakers, by The General Electric Company of India Ltd.

Circuit Breaker

Type K range of oil circuit breakers have been designed for use on systems upto 660 volts and for normal current ratings upto 1200 A.

The circuit breakers are of fabricated sheet steel construction and specially designed for installations in situation where reliability and robust construction are essential.

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

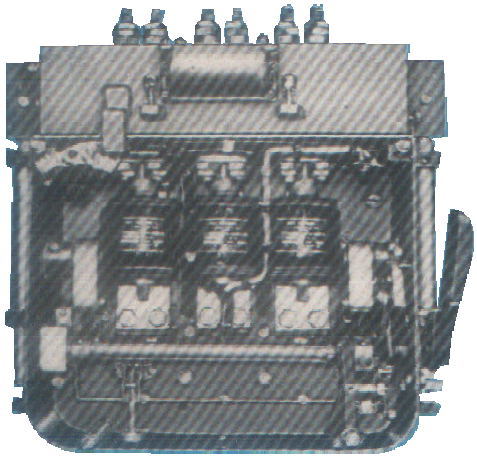

All circuit breakers are subjected to a series of routine mechanical and electrical tests to ensure proper and reliable working in service.

The circuit breaker has double break contacts, the contacts being of spring loaded multifinger type engaging with a moving crossbar and giving high pressure line contact.

The trip free operating mechanism is self contained and all working parts are adequately electroplated. Gaskets are provided to prevent oil throw and to seal off dirt and dust.

Mechanical ON/OFF indication of the breaker is provided and connections are available for electrical indication.

All circuit breakers of the same rating are interchangeable.

Isolating contacts

The main isolating finger contacts are of the self aligning multiple plug-and-socket type with silver to silver contact faces, and designed to ensure high-pressure multi-line contacts; they are mounted on robust insulation bases. Secondary isolating plugs and sockets which are spring mounted to ensure self-alignment are provided for auxiliary and control circuit connections.

Interlocks

A system of mechanical interlocks ensures that it is not possible to

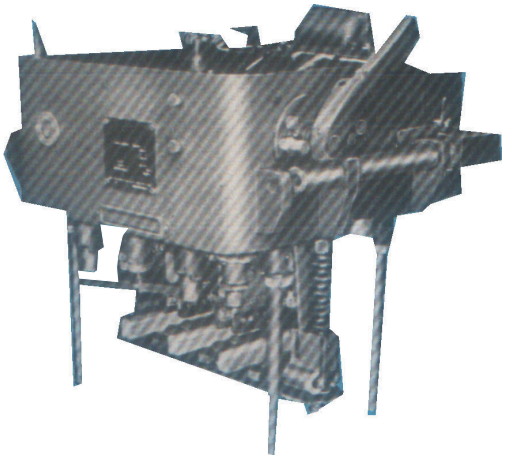

make or break the load on the isolating contacts or remove the breaker tank and top plate while the circuit breaker is ON.

Trip Coils

Any combination of over current, earth fault, under voltage and shunt trip coils, upto a maximum of four, can be incorporated.

Over current coils are adjustable from 75% to 200% of the full load current and are fitted with oil dashpot time lags having an inverse time characteristic. The settings of the overload trip coils can be adjusted from the front of the circuit breaker. The dashpots are fitted with a padlocking device to prevent unauthorised alteration of the settings.

Earth fault trip coils are available with tappings to suit individual requirements.

Current Transformers

The current transformers are of air cooled ring type and comply with the appropriate British & Indian Standard Specifications and are fitted on each phase within the circuit breaker.

11. मुनि यशोविजयजी, पूर्व उद्धृत ग्रन्थ, पृष्ठ 24
12. वही, पृष्ठ 25

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

13. वही, पृष्ठ 26, 27

"A light bulb also has **most of the air sucked out of it.** If it did not, wire would actually burn up instantly. When a light bulb 'burns out', it is because the filament slowly vaporizes." [url:http.// www.madsci.org/posts/archives/May 97/864507907.ph.r.h tme.]"

14. वही, पृष्ठ 27

"Inert gases such as nitrogen and argon were later added to the bulbs to reduce tungsten evapouration, or sublimation."

[url.http//www.geocities.com/bio-electrochemistry/coolidge.html.)"

15. वही, पृष्ठ 27-30

16. वही, पृष्ठ 31, 32

17. वही, पृष्ठ 26 (पूर्व प्रश्न 7 में उद्धृत)

18. वही, पृष्ठ 32, 33

19. देखें, प्रथम भाग का सातवां प्रभाग (पृष्ठ 42)।

20. मुनि यशोविजयजी, पूर्व उद्धृत ग्रन्थ, पृष्ठ 33-35

21. वही, पृष्ठ 36, 37

22. वही, पृष्ठ 37-43.

23. (a) Satish K. Gupta, op.cit., p. 502—

"Magnetic Field and Magnetic Field lines

Magnetic field. *The space around a magnet (or a conductor carrying current), in which its magnetic effect can be experienced, is called the magnetic field.*

The magnetic field in a region is said to be uniform, if the magnitude of its strength and direction is same at all the points in that region.

A uniform magnetic field is represented by equidistant parallel arrows.

The magnetic field of a bar magnet can be plotted by using a small compass needle. It is found that the magnetic field produced by a bar magnet and a current carrying straight solenoid are identical. Fig. shows the magnetic field produced

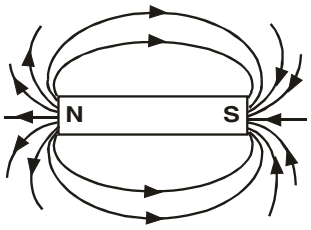

by a bar magnet. It follows that magnetic field produced by a current carrying straight solenoid is identical to that produced by a bar magnet. The magnetic field lines do not exist in reality. This hypothetical concept has been developed in order to visualize the strength of magnetic field in different regions and the effect of magnetic field. The regions, where the magnetic field lines are close enough (crowded), the magnetic field is considered as quite strong there.

2. Usually, the strength of magnetic field B is simply called magnetic field.

Magnetic field line. *The magnetic field line is the path along which an isolated north pole will tend to move, if it is free to do so."*

(b) Text-book of Physics (Std. XII) Part 2, Pages 39-42, 48, 49—

"The large scale supply of electrical power for the household and the industrial uses is through a different process—conversion of mechanical energy to the electrical energy by means of suitable generators (turbines) in power houses. In this chapter we will learn about the principles involved in generation of power in this way, viz. the electromagnetic induction.

1. Electromagnetic Induction and Faraday' Experiments

A scientist named Michel Faraday discovered in the year 1831 that a change in the value of the magnetic flux linked with a conducting coil give rise to the induction of an electron motive force in the coil. The emf generated this way is called the induced emf. Fig. 1 illustrates simple experiment which demonstrates the electromagnetic induction. In this experiment, a sensitive galvenometer is connected in series with a conducting coil.

In fig. 1(a), a bar magnet is held stationary with respect to the

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

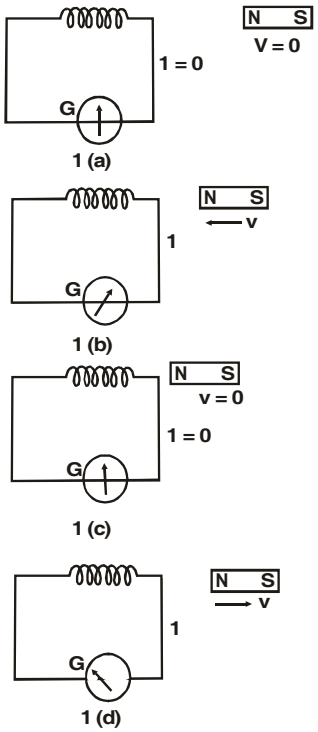

coil. No deflection of galvenometer is observed under this situation. Now if the bar magnet is quickly moved towards the coil, with one of its poles facing the coil, the galvenometer records a deflection, showing that some current flows through the coil. It is also seen that faster the magent is moved, greater is the deflection of the galvenometer. Similiar effects are also observed if the coil is moved keeping the magnet fixed. Again, deflection in opposite direction is observed. When the magnet is moved away, to that recorded when the magnet is moved towards the coil. If the galvenometer deflects on one side when a particular pole is facing the coil (say north pole), delection of the opposite sense is recorded if the other pole is made to face the coil; when the magnet is brought near the coil. Also

whenever, the coil and the magnet are stationary with respect to each other, no deflection is observed.

The above results can be understood as follows. When the bar magnet is near the coil some of the magnetic lines of force are passing through the coil; that is "some magnetic flux is linked with the coil". Now when there is relative motion between the coil and the magnet, the amount of flux linked with the coil is changing. When the relative motion stops, there is no further chang in the amount of the flux linked. So we conclude that, “when there is a change in the flux linked with the coil, there is an emf generated in the coil". The observation that a faster motion of the magnet gives rise to a larger defiection, shows that the emf generated depends upon the rate of change of the flux linking the coil. The current resulting from this "induced emf" is called the "induced current". To cause the change in the flux linked with the coil, it is not necessary to have a bar magnet. If two coils S and P are placed near each other as shown in fig. 2; and a key connected in the circuit of the coil P is switched on and off so that current alternately flows and stops flowing through the coil P, the galvenmeter connected in the circuit with the coil S alternately shows a deflection on one and the other side. Further, if a steady current is maintained in the coil P and the two coils are moved relative to each other, then also a current is induced in the coil S. Here, it is the flux generated by the current in the coil P that links with the coil S and a change in that flux causes an induced emf in the coil S.

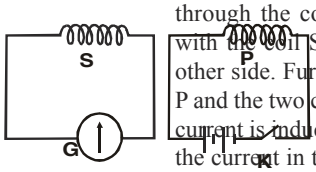

2. Lenz's Law

We have yet not said anything regarding the magnitude and the direction of the inducted emf. This direction of emf and the resultig direction of the induced current can be inferred from the considerations based on the principle of conservation of energy and this leads us to Lenz's law.

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

When a current flows in a coil, magnetic flux is produced due to this current and the coil now acts as a magnet. Which face of the coil acts like a north pole and which face becomes a south pole depends upon the direction of the current in the coil.

Fig. 3 shows a cross section of the coil. Looking at the coil if the currentappears to be flowing through, it in a counterclockwise direction, then the side of the coil facing the observer is its north pole. If the current appears Clockwise then the side towards the observer is the south pole. This is made clear in fig. 3.

Consider moving a bar magnet with its north pole towards the coil. When the magnet is moved towards the coil, if the induced current is such that the side of the coil facing the magnet becomes a south pole, then there would be a force of attraction between the magnet and the coil, and due to this force magnet would be further drawn nearer. Thus, the induced current would be generated without doing work. Heat[2] energy can now be obtained by connecting a resistance to its circuit, without spending any mechanical energy. One can see that this violates the conservation of energy. So, when a north pole of the magnet is brought near the coil, the side of the coil towards the magnet must become the north pole, so that the induced current resists the motion of the magnet. It is the work done is moving the magnet against this force, that gets converted to the electrical energy and can be used, for example to generate the heat energy as I^2Rz. Thus, we see that the direction of the induced current and the corresponding direction of the resulting magnetic field is a consequence of the conservation of energy. This leads us to Lenz's law which states :

"If an agency generates an induced emf through its action (such as motion of the magnet as illustrated) the induced emf would be such that the current produced by this emf would generate a magnetic field such as to oppose the action of the agency."

3. Faraday's Law

Faraday gave the law relating the induced emf in a circuit with the rate of change of the flux as "the negative time rate of change of magnetic flux linked with a circuit is equal to the induced emf in the circuit."

4. Self Induction

We have learnt that when a current passes through a coil, some magnetic field is created so that the coil itself behaves like a magnet. The magnetic flux prroduced by the current in the coil is linked with the coil itself (fig. 8), and when the current in the coil changes, this flux linked with the coil also changes.Under such circumstances also, there would be an emf induced in the coil which is called the "self induction". If the number of turns in a coil is N and the flux linked with each turn is ϕ, then the total flux linked with the coil is $N\phi$.

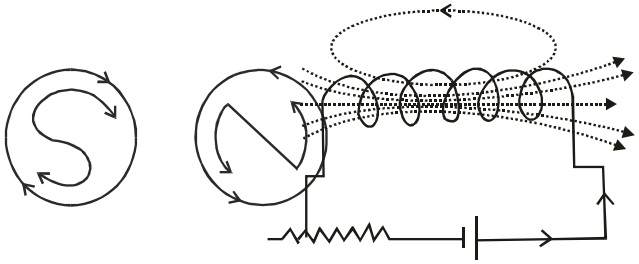

The parameter L (i.e., total flux due to unit current) here is called the self inductance of the coil. Its value depends upon the size and shape of the coil as well as the number of turns. It also depends upon the magnetic property of the medium of the space within the coil, e.g., if the coil is wound around a soft iron core (after ensuring proper insulation) it attains a very large value.

24. जैसे फोटोन कण और तरंग दोनों रूप में व्यवहार करते हैं, वैसे ही इलेक्ट्रोन भी कण और तरंग दोनों रूप में व्यवहार करते हैं। इस तथ्य को भौतिकशास्त्र में इस प्रकार समझाया गया है

Satish K. Gupta, op.cit., pp. 1093, 1094—

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

"Dual Nature of Radiation

The phenomena such as interference, diffraction and polarisation were successfully explained on the basis of wave nature of light. On the other hand, photoelectric effect, Compton effect, etc. can be explained on the basis of quantum nature of radiation. For instance, in photoelectric effect, when a photon of radiation strikes a metal surface, it gives up all its energy to a single electron in an atom and the electron is knocked out of the metal. It carries a part of the energy of the incident photon. In Compton effect, when an X-ray photon is incident on a free electron, the electron recoils along a definite direction with some energy depending upon the direction along which incident photon is scattered. From these two effects, it appears as if *a particle (photon of radiation) is colliding against and another particle (electron)*. Hence, it became necessary to assume that in photoelectric effect and Compton effect, *radiation exhibits particle nature.*

The various phenomena concerning radiation can be divided into three parts :

(i) *The phenomena such as interference, diffraction, polarisation, etc. in which interaction of radiations takes places with radiation itself.* Such phenomena can be explained on the basis of electro-magnetic (wave) **nature of radiation** only.

(ii) *The phenomena such as photoelectric effect, Compton effect, etc. in which interaction of radiation takes place with matter.* Such phenomena can be explained on the basis of **quantum (particle) nature of radiation.**

(iii) *The phenomena such as rectilinear propagation, reflection, refractin, etc. in which the interaction of radiation takes place neither with itself, nor with matter.* Such phenomena can be explained on the basis of either of the two natures of the radiation.

It may be pointed out that in a particular experiment, radiation has a particular nature *i.e.* either it *possesses wave nature or particle nature.*

De-Broglie Waves

Radiation behaves both as wave and particle. In 1924, Loius de-Broglie put forward a bold hypothesis that matter should also possess dual nature.

The folloowing observations led him to the duality hypothesis for matter :

1. *The whole energy in this universe is in the form of matter and electromagnetic radiation.*
2. *The nature loves symmetry. As the radiation has got dual nature, matter should also possess dual nature.*

Thus according to de-Broglie, a wave is associated with every moving particle. These waves are called *de-broglie waves or matter waves.*

According to quantum theory of radiation, energy of a photon is given by $E = h\nu$

Therefore, the wavelength of the photon is given by

$$\lambda = \frac{h}{p} \quad (p \text{ is momentum}).$$

de-Broglie asserted that the equation is completely a general formula and applies to photons as well as other moving particles. The momentum of a particle of mass m moving with velocity v is $m v$. Hence, de-Broglie wavelength is given by

$$\lambda = \frac{h}{m v}$$

This is called *de-Broglie relation.* It connects the *momentum,* which is *characteristic of the particle* with the *wavelength,* which is *characteristic of the wave.*

25. (a) तरल पदार्थों में विद्युत्-प्रवाह को प्रवाहित कर रासायनिक प्रभाव से 'इलेक्ट्रोलाइसिस' के द्वारा रासायनिक बेटरियों में विद्युत् उत्पन्न किया जाता है। इसे समझने के लिए देखें, Satish K. Gupta, op. cit. p. 346—

"Chemical Effect of Electric Currents

If electric current is passed through a liquid, it may or it may not alllow even the passage of current through it. In fact, on the basis of their electric behaviour, the liquids may be divided into three classes :

(i) *The liquids which do not allow current to pass through them.* Form example, distilled water vegetable oil, etc.

(ii) *The liquids which allow current through them but do not dissociate into ions.* For example, mercury.

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

(iii) *The liquids which allow current through them by dissociating into ions.* For exmaple, salt solutions, acids and bases. Such liquids are called *electrolytes.*

The process of dissociation of a liquid into ions on passing current through it, is called electrolysis.

Therefore, passage of electric current through the electrolytes produces chemical effect.

Electrolyte

The substances, which dissociate into ions and when in solution form, allow electric current to pass through them, are called electrolytes. For example, acids, bases, acidulated water, salt solution, such as copper sulphate, silver nitrate, etc.

On the basis of their behaviour towards the passage of electric current, the electrolytes are of the following two types :

1. Strong electrolytes. *Those electrolytes, which are more or less completely ionised in their solutions, are called strong electrolytes.* For example, HCl, NaOH and NaCl.

2. Weak electrolytes. *Those electrolytes, which are ionised to a small extent in their solutions, are called weak electrolytes.* For example, NH_4Cl, CH_3COOH and H_2CO_3.

Electrolysis

The process of liberating free elements from an electrolytic solution, when electric current is passed through it, is called electrolysis.

When an electrolyte, such as copper sulphate ($CuSO_4$) is dissolved in water, it dissociates into ions.

Consider that the copper sulphate solution is taken in a vessel and current is passed through it by sing two electrodes and a source of e.m.f. The electrode, through which the current enters the electrolytic solutions, is called *anode,* while the other electrode, through which current leaves, is called *cathode.*

On passing current, Cu^{++} ions drift to the cathode, while SO_4^{--} ions towards this anode. At the cathode, Cu^{++} ions discharge themselves and copper atoms are liberated at the cathode."

(b) Satish K. Gupta, op. cit. Pages 212-216 (Voltaic Cell, Daniel Csu, Lechanche Cell) "In voltaic cell, for each Zn^{++} ion so

produced, two electrons (2 e^-) are left on the zinc rod. As more and more Za^{++} ions enter the electrolyte, the zinc rod becomes more and more negative. Also, the concentration of Za^{++} ions in the electrolyte goes on increasing. The H^+ drift to the copper rod. On reaching the copper rod, the H^+ ions extract electrons from the rod and form neutral hydrogen atoms. Asa result of it copper rod acquires positive charge. As more and more H^+ ions ions discharge at the copper rod, it becomes more and more positive. Due to positive charges building up on copper rod and negative charge on the zinc rod, the potential difference between the two rods goes on increasing. It continues, till the potential gradient along the electrolyte between copper and zinc rod just restricts the drift of H^+ ions to the copper rod.

Daniel Cell

It was developed by Daniel in the year 1836.

Construction. It consists of a copper vessel containing copper sulphate ($CuSO_4$) solution. The copper vessel itself acts as the positive pole of the cell, Inside the $CuSO_4$ solution, a porus pot containing an amalgamated zinc rod and dilute H_2SO_4 acid is placed. Whereas the porus pot prevents the dilute H_2SO_4 and the $CuSO_4$ solution from mixing with each other, it allows the H^+ ions produced in the porous pot to diffuse through its walls into the $CuSO_4$ solution. The amalgamated zinc rod is used in order to avoid the defect of local action from occuring in the cell. The amalgamated zinc rod acts as the negative role of the cell and both the $CuSO_4$ solution and dil, H_2SO_4 serve as the electrolyte. However, the $CuSO_4$ solution serves as depolariser also.

When the cell functions, the concentration of $CuSO_4$ solution falls. In order to keep the concentrate of $CuSO_4$ solution constant, the crystals of $CuSO_4$ are placed on the perforated shelf provided along walls of the copper vessel.

Action. Inside the porus pot, the dilute H_2SO_4 acid disociates into H^+ and SO_4^{--} ions. As them rod is dipping inside the dilute H_2SO_4 acid, some of the zinc atoms go into the solution as Zn^{++} ions. In each Zn^{++} ion going into the solution, two electrons are left on the zind rod. As the concetration Zn^{++} ions in the solution increases, zinc rod becomes more and more negative and the

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

H^+ ions dilute through the walls of the porus pot into the $CuSO_4$ solution.

The formation of $ZnSO_4$ on the porus pot does not affect the working of the cell, until crystals of $ZnSO_4$ are deposited along its walls.

As the Cu^{++} ions deposit on the copper vessel, it acquires positive charge. Due to building up of the positive charge on the copper vessel and negative charge on the zinc rod, the potential difference between the two poles of the cell goes on increasing.

Leclanche Cell

It was invented by George Leclanche in the year 1865.

Construction. It consists of a glass vessel con (NH_4Cl) as electrolyte. An amalgamated zinc rod dipping in the NH_4Cl solution acts as the negative pole of the cell. The use of amalgamated zinc rod avoids the defect of local action from occurring in the cell. A porus pot containing the carbon rod is placed inside the NH_4Cl solution. The carbon rod acts as the positive pole of the cell. The empty space in the porus pot is filled with manganese dioxide (MnO_2) and charcoal powder Manganese dioxide is used as *depolariser.* The use of charcoal powder makes MnO_2 conduction and thus, decreases the internal resistance of the cell.

Action. The electrolyte HN_4Cl solution dissociates into NH_4^+ and Cl^- ions. As zinc rod is dipping inside the NH_4Cl solution, some of the atoms go into the solution as Zn^{++} ions. For each Zn^{++} ion so produced, two electrons are left on the zinc rod and hence it becomes negative pole of the cell. The NH_4 ions are repelled by Zn^{++} ions and they diffuse into the MnO_2 and charcoal mixture through the walls of the porus pot. Inside the glass vessel, Zn^{++} ions combine with Cl^- ions to form $ZnCl_2$.

On diffusing into porus pot, NH_4^+ ions extract electrons from the carbon rod making carbon rod as positively charged and producing ammonia and hydrogen gas.

Whereas the ammonia gas escapes from the cell, hydrogen gas is neutralised by MnO_2 producing manganese trioxide (Mn_2O_3) and water.

Secondary Cells

A secondary cell is one in which chemical energy is converted into electrical energy but they do so when they are charged by passing current through them by some source.

These are also called accumulators or storage cells. These are of two types :

1. Lead acid cell or lead accumulator, 2. Edison alkali cell

Lead Accumulator

It is a secondary cell and is the most common type of storage battery used in automobiles. It is known as lead acid cell. It was invented by French Physicist, Gaston Plante in the year 1859.

Construction. It consists of a hard rubber, glass or celluloid container containing dilute sulphuric acid as the electrolyte. Each of the two electrodes consists of a set of alternate parallel mesh type perforated plates made of lead. The set of plates to be made the positive pole is filled with a paste of lead dioxide (PbO_2), while the set of plates to be made the negative pole is filled with a paste of spongy lead (Pb). The positive and negative plates are kept separated and insulated from each other by porus separators made of rubber, plastic or glass fibre. This arrangement of positive and negative plates is placed inside the dilute sulphuric acid and connected to the lead terminals provided on the hard and rigid cover of the container [Fig.].

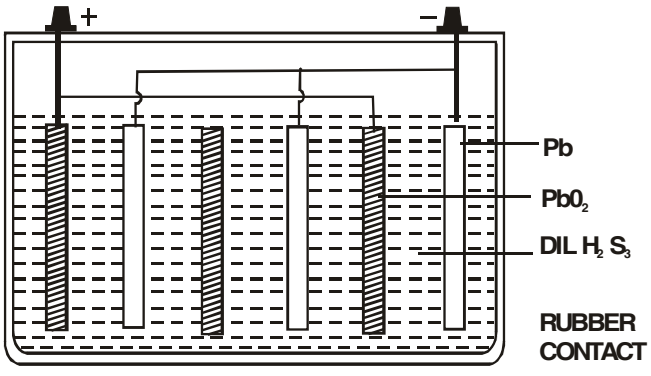

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

The e.m.f. of each cell of a fully charged lead accumulator is 2.05 V and a lead accumulator of each six cells produces an e.m.f. of nerarly 12 V. The specific gravity of the electrolyte (dilute sulphuric acid) is a fully charged lead accumulator is 1.28. However, when discharged, both the e.m.f. of the cell and the specific gravity of the electrolyte fall. Whereas, e.m.f. of a cell of the accumulator should not be allowed to fall below 1.8 V, the specific gravity of the elctrolyte should not drop below 1.12."

26. Satish K. Gupta. op. cit., pp. 1092, 1093—

"Photoelectric Cells

A photoelectric cell is an arrangment which converts light energy into electrical energy.

Photoelectric cells are of the following three types :

1. *Photoemissive cells,* 2. *Photovoltaic cells,* 3. *Photoconductive cells.*

A photoemissive cells may be of *vacuum type* or *gas filled type.* Let us discuss the working of a photoemissive cell.

Photoemissive cell. It consists of two electrodes, a cathode C and an anode A enclosed in a highly evacuated glass bulb. The cathode C is a semi-cylindrical plate coated with a photosensitive material, such as a layer of cesium deposited on silver oxide. The anode A is in the form of a wire, so that it does not obstruct the path of the light falling on the cathode.

When light of frequency above the threshold frequency for the cathode surface is incident on the cathode, photoelectrons are emitted. If a potential difference of about 10 V is applied between the mode and cathode, the photoelectrons are attracted towards the anode and the microammeter connected in the circuit will record the current.

The chief advantagen of this type of photocell are that there is no time-lag between the incident light and the emission of photoelectrons and that the photoelectric current is proportional to the intensity of light. The cell is extremely acccurate in response. Hence, it is used in television and photometry.

The current may be increased by a factor of about 5 by filling the tube with an inert gas at a pressure of a few mm of mercury. When the potential difference between the electrodes exceeds the ionisation

potential of the gas, the emitted photoelectrons ionise the gas atoms and now a larger current flows.

Applications of Photoelectric Cells

Photoelectric cells have a variety of application in industries and the daily life. A few important applications of photoelectric cells are as given below :

1. It is used for the reporduction of sound from the sound track recorded on one edge of the cinema films.
2. It is used in a television studio to convert the light and shade of the object into electric currents for transmission of picture.
3. It is used in a photographic camera for the automatic adjustment of aperture.
4. It is used to compare the illuminating powers of two sources of light and to measure the illumination of a surface.
5. It is used for automatic counting of the number of persons entering a hall, a stadium, etc.
6. It is used for automatic switching of street lights and traffic signals.
7. It is used for raising a fire alarm in the event of accidental fire in buildings, factories, etc.
8. It is used in burglar's alarms for houses, banks and treasuries.
9. A photo cell is also used in industries to locate flaws in metal sheets.
10. It is also used to control the temperature during a chemical reaction and that of a furnace.
11. A photocell can be used in determining the opacity of solids and liquids."

27. (a) डॉ. जे. जैन, पूर्व उद्धृत लेख, पृष्ठ 13

''प्रकाशीय विद्युत् : (सौर-बेटरी) :

फोटो वोल्टिक सेल में विद्युत् e.m.f. केवल दृश्य प्रकाश की किरणों से पैदा हो सकता है। ये बिना दूसरी बेटरी के ही विद्युत् धारा पैदा कर सकते हैं।''

(b) वही, पृष्ठ 28, 29

''अग्नि से जो ताप-ऊर्जा या प्रकाश-ऊर्जा पैदा होती है, वो बिजली-ऊर्जा

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

से पैदा होने वाली ताप व प्रकाश ऊर्जा के समान तो जरूर है, लेकिन दोनों के उद्‌गम अलग-अलग हैं।

''पहले में यानी 'अग्नि' में रासायनिक-प्रक्रिया (ऑक्सीकरण या जलना) होना जरूरी है। उसी जलने की प्रक्रिया से ताप व प्रकाश की ऊर्जा पैदा होती है।

''लेकिन विद्युत्-ऊर्जा किसी चुम्बकीय क्षेत्र में सुचालक (conductor) के घूमने से पैदा होती है (जेनेरेटर), या किसी अन्य तरीकों से **'दबाव-अंतर'** (potential-difference) पैदा किया जाता है, जैसे घर्षण से (एम्बर/एबोनाइट) या दो पदार्थों के बीच तापक्रम के अंतर से (थर्मोकपल) आदि।

''यहां यह भी विचार करना उचित होगा कि 'सचित्त अग्नि' के ताप की भांति ही **'प्रकाश-ऊर्जा'** या अन्य ऊर्जा-स्रोतों से भी उपरोक्त काम हो सकते हैं क्या! जैसे **सूर्य के प्रकाश** से ताप पैदा होता है, उससे खाना सेका व बनाया जाता है (सौर्य उष्मक), मशीनें चलती हैं आदि। सूर्य की रोशनी से सीधे विद्युत्-ऊर्जा बनाई जा सकती है (सौर सेल) जिससे इलेक्ट्रोनिक सेल घड़ी या केलकुलेटर चलते हैं। तो **क्या** यह **'सूर्य का प्रकाश' सचित्त** है? उपरोक्त विश्लेषण के आधार पर तो इसका उत्तर होगा 'नहीं'। उसी प्रकार बिजली के प्रवाह से ताप पैदा हो सकता है, यानी पदार्थ का तापक्रम बढ़ सकता है, तो भी सूर्य की प्रकाश-ऊर्जा के माफिक यह भी अचित्त ऊर्जा हो सकती है।

केवल इस कारण से कि **'सचित्त अग्नि'** में 'गरम' करने की क्षमता है या प्रकाश पैदा करने की क्षमता है, दूसरे प्रकार की ऊर्जा, जो दूसरों को गरम कर सकती है, 'सचित्त अग्नि' की श्रेणी (category) में होना जरूरी नहीं है। जैसे सूर्य की रोशनी से पृथ्वी, पानी और हवा गरम हो जाती है, वर्षा हो सकती है, बिजली पैदा हो सकती है।

''उसी (सूर्य) विकिरण में जो अवरक्त किरणें यहां पहुंचती हैं, वो पृथ्वी, वायु और जल को गरम करती हैं। लेकिन यह विकिरण यानी सूर्य का प्रकाश व अवरक्त किरणें स्वयं सचित्त अग्निकाय नहीं हैं।''

''इस तरह बिजली अग्नि का 'महापुंज' है, और साधारण अग्नि से भी **महान कार्य** करने वाली ऊर्जा होते हुए भी (हालांकि ताप-बिजली घरों में ताप-ऊर्जा का 60-70 प्रतिशत ही बिजली की ऊर्जा में परिवर्तन हो पाता है यानी बिजली-ऊर्जा पैदा करने के लिए कहीं ज्यादा ताप ऊर्जा व्यय की

जाती है।) ये ऊर्जाएं किसी पदार्थ को केवल तभी सचित्त बनाती है, जब कुछ आवश्यक शर्तें पूरी हो जाती हैं। अन्यथा उपरोक्त संदर्भ में खुद का अचित्त ऊर्जा होना ही सिद्ध होता है।''

28. Satish K. Gupta, op. cit., pp. 215, 216—

"Dry Cell

It is portable form of a Leclanche cell.

Construction. In a dry cell, a moist paste of ammonium chloride containing zinc chloride is used as an electrolyte. Zinc chloride being highly hydroscopic, it is added to ammonium chloride in order to keep moistened. The paste of NH_4Cl and $ZnCl_2$ is containd in a small cylindrical zinc vessel, which acts as the negative pole of the cell. A carbon rod fitted with a brass cap is placed in the middle of the zinc vessel. It acts as the positive pole of the cell. The carbon rod is surrounded by a closely packed mixutre of MnO_2 and charcoal powder in a muslin bag. While the MnO_2 acts as depolariser, the charcoal powder reduces the internal resistance of the cell by making MnO_2 electrically conducting. The zinc container and its contexts are sealed at the top with pitch of shellac. A small hole is provided at the top, so as to ammonia gas formed during chemical reaction to help escape the cell.

Action. A dry cell is only a modification of a wet Leclanche cell. Therefore, the action of a dry as regards the chemical reactions that take place are same as in case of Leclanche cell.

The dry cells are manufactured in different sizes and shapes to suit particular needs. Irrespection the size of the cell, the e.m.f. of the cell is nearly 1.5 V. Its internal resistance may vary from 0.10 to 10 Ω. Further, an electric current of about 0.25 A can be continuously drawn from a dry cell.

29. मुनि यशोविजयजी, पूर्व उद्धृत ग्रन्थ, पृष्ठ 43-47

30. वही, पृष्ठ 47-51

31. (a) आचार्य श्री महाप्रज्ञजी, विद्युत् : सचित्त या अचित्त, जैन भारती (मासिक), दिसंबर, 2002, पृष्ठ 15, 16 पर भगवती 7/229, 230 से उद्धृत

अचित्त पुद्‌गल : प्रकाश और ताप

अत्थि णं भंते! अच्चित्ता वि पोग्गला ओभासंति? उज्जोवेंति? तवेंति?

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

पभासेंति?

हंता अत्थि।

कयरे णं भंते! ते अच्चित्ता वि पोग्गला ओभासंति? उज्जोवेंति? तवेंति? पभासेंति?

कालोदाई! कुद्धस्स अणगारस्स तेय-लेस्या निसट्ठा समाणी दूरं गता दूरं निपतति, देसं गता देसं निपतति, जहिं जहिं च णं सा निपतति तहिं-तहिं च णं ते अचित्ता वि पोग्गला ओभासंति, उज्जोवेंति, तवेंति, पभासेंति। एतेणं कालोदाई!

ते अचित्ता वि पोग्गला ओभासंति, उज्जोवेंति, तवेंति, पभासेंति। (भगवई 7/229, 230)

भंते! क्या अचित पुद्गल भी वस्तु को अवभासित करते हैं? उद्योतित करते हैं? तप्त करते हैं? प्रभासित करते हैं?

हां, करते हैं।

भंते! वे कौन-से अचित्त पुद्गल वस्तु को अवभासित करते हैं? उद्योतित करते हैं? तप्त करते हैं? प्रभासित करते हैं?

कालोदाई! क्रुद्ध अनगार ने तेजोलेश्या का निसर्जन किया, वह दूर जाकर दूर देश में गिरती है, पार्श्व में जाकर पार्श्व देश में गिरती है। वह जहां-जहां गिरती है, वहां-वहां उसके अचित्त पुद्गल भी वस्तु को अवभासित करते हैं, उद्योतित करते हैं, तप्त करते हैं और प्रभासित करते हैं। कालोदाई! इस प्रकार वे अचित्त पुद्गल भी वस्तु को अवभासित करते हैं, उद्योतित करते हैं, तप्त करते हैं और प्रभासित करते हैं।''

कुछ विचारक होते हैं इसमें विद्युत् का नाम नहीं है। प्रश्न नाम होने का नहीं है। मूल प्रतिपाद्य यह है 'अचित्त पुद्गल प्रकाश करते हैं, तप्त करते हैं।' उस स्थिति में यह व्याप्ति नहीं बनती कि जिसमें दाहकता है, प्रकाश है, ताप है, वह सचित्त ही होता है।''

(b) भगवती सूत्र, शतक 15, सूत्र 121

''अज्जोति! समणे भगवं महावीरे समणे निग्गंथे आमंतेत्ता एवं वयासी जावतिए णं अज्जो! गोसालेणं मंखलिपुत्तेणं मम वहाए सरीरगंसि तेये निसट्ठे से णं अलाहि पज्जत्ते सोलसण्हं जणवयाणं, तं जहा 1. अंगाणं, 2. बंगाणं, 3. मगहाणं, 4. मलयाणं, 5. मालवगाणं, 6. अच्छाणं,

7. वच्छाणं, 8. कोच्छाणं, 9. पाढाणं, 10 लाढाणं, 11. वज्जीणं, 12. मोलीणं, 13. कासीणं, 14. कोसलाणं, 15. अवाहाणं, 16. सुंभुत्तराणं घाताए वाहए उच्छादणयाए भासीकरणयाए।''

(c) आचार्य महाप्रज्ञ, पूर्व उद्धृत लेख, पृष्ठ 19

''इंदभूती नाम अणगारे गोयमसगोते...संखित्तविउलतेयलेसे...।
(भगवती 1/9)

संक्षिप्ता शरीरान्तर्लीनत्वेन ह्रस्वतांगता, विपुला-विस्तीणां अनेकयोजनप्रमाण-क्षेत्राश्रितवस्तुदहनसमर्थत्वात्तेजोलेश्या विशिष्टतपोजन्यलब्धि विशेषप्रभवा तेजोज्वाला यस्य स तथा। (भ.वृ. 1/9)

वृत्तिकार ने तेजोलेश्या का अर्थ तेजो-ज्वाला किया है। यहां तेजोलेश्या का प्रयोग एक ऋद्धि (लब्धि या योगज विभूति) के अर्थ में हुआ है।

ठाणं के अनुसार यह ऋद्धि तीन कारणों से उपलब्ध होती है। इसकी तुलना हठयोग की कुंडलिनी से की जा सकती है। कुंडलिनी की दो अवस्थाएं होती हैं सुप्त और जागृत। तेजोलेश्या की भी दो अवस्थाएं होती हैं संक्षिप्त और विपुल। इसके द्वारा हजारों किलोमीटर में अवस्थित वस्तु को भस्म किया जा सकता है। इसी प्रकार बहुत दूर तक अनुग्रह भी किया जा सकता है। इसके द्वारा अनुग्रह और निग्रह दोनों किए जा सकते हैं।''

''भगवती वृत्ति में तेजोलेश्या को अग्निसदृश द्रव्य कहा गया है। (भ.वृ. पत्र 642 तदग्निसदृश-द्रव्यान्तराऽपेक्षयावसेयं संभवन्ति तथाविधशक्ति-मन्ति द्रव्याणि तेजोलेश्याद्रव्यवदिति।)''

32. मुनि यशोविजयजी, पूर्व उद्धृत ग्रन्थ, पृष्ठ 51, 52

33. आचार्य महाप्रज्ञ, पूर्व उद्धृत लेख पृष्ठ 15, 16

''भगवती का एक और उल्लेख है कि दिन में पुद्गल शुभ रूप में परिणत हो जाते हैं और रात्रि में वे अशुभ रूप में परिणत होते हैं। नैयायिक आदि अंधकार को अभाव रूप में मानते हैं। जैन दर्शन के अनुसार वह पुद्गल का परिणाम है। जैसे अंधकार पुद्गल का परिणाम है, वैसे ही प्रकाश भी पुद्गल का परिणाम है। भगवती का पूर्ण पाठ इस प्रकार है

'से नूणं भंते! दिया उज्जोए? राइं अंधयारे?
हंता गोयमा! दिया उज्जोए। राइं अंधयारे॥
से केणट्ठेणं?

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

गोयमा! दिया सुभा पोग्गला सुभे पोग्गलपरिणामे, राइं असुभा पोग्गला असुभे पोग्गलपरिणाम। से तेणट्ठेणं ॥' (भगवई 5/237-238)

'भंते! क्या दिन में उद्योत और रात्रि अंधकार है?'

'हां, गौतम! दिन में उद्योत और रात्रि में अंधकार है।'

'यह किस अपेक्षा से?'

'गौतम! दिन में शुभ पुद्‌गल होते हैं और पुद्‌गलों का परिणमन शुभ होता है। रात्रि में अशुभ पुद्‌गल होते हैं और पुद्‌गलों का परिणमन अशुभ होता है यह इस अपेक्षा से।'

दिन में सूर्यरश्मियों के संपर्क से पुद्‌गलों का परिणमन शुभ होता है। इसलिए दिन में उद्योत होता है। रात्रि में सूर्यरश्मि तथा अन्य प्रकाशक वस्तुओं के अभाव में पुद्‌गलों का परिणमन अशुभ हो जाता है।

प्रस्तुत आलापक में उद्योत और अंधकार का अनेक अपेक्षाओं से निरूपण किया गया है। नरक में पुद्‌गलों का अशुभ परिणमन होने के कारण निरंतर अंधकार रहता है। वृत्तिकार के अनुसार पुद्‌गल की शुभ परिणति के निमित्तभूत सूर्यकिरण आदि प्रकाशक वस्तु का अभाव है। दिवसे शुभाः पुद्‌गला भवन्ति, किमुक्तं भवति? शुभः पुद्‌गलपरिणामः स चार्ककरसम्पर्कात्। (भ.वृ. 5/238)''

34. मुनि यशोविजयजी, पूर्व उद्धृत ग्रन्थ, पृष्ठ 52, 53

35. A.K. Shaha, op. cit., pages 121, 122

(पूरे उद्धरण के लिए देखें इसी लेख का प्रथम भाग, छठा प्रभाग, टिप्पण अंक 10.)

36. वही, pages 120, 121—

"The limits of inflammability

There is a particular limit to excess air or oxygen in combustion of each kind of the gas and when this limit is surpassed the gas becomes non-inflammable. Similarly there is also a particular lower limit of deficient air or oxygen required for combustion of each kind of the gas and when this limit is transgressed, the gas becomes non-inflammable. Table 3.8 illustrates both the upper and the lower limits of inflammability.

TABLE 3.8
Limits of Inflammability of Gases in Air
(At ordinary temperatures and at atmospheric pressure)

Gas	Limits as per cent by volume in air	
	Per cent lower limit mixture	Per cent upper limit mixture
Hydrogen (H_2)	6.2	71.4
Carbon monoxide (CO)	16.3	71.2
Coal gas	7	21
Coke-Oven gas	7	21
Blue water gas	12	67
Blast-furnace gas	36	65
Methane (CH_4)	5.8	13.3
Ethane (C_2H_6)	3.3	10.6
Ethylene (C_2H_4)	3.4	14.1
Ethyl alcohol (C_2H_5OH)	3.7	13.7
Benzene (C_6H_6)	1.4	5.5
Pentane (C_5H_{12})	1.3	4.9
Ether $(C_2H_5)_{20}$	1.6	7.7

37. मुनि यशोविजयजी, पूर्व उद्धृत ग्रन्थ, पृष्ठ 53, 54

38. तत्त्वार्थ सूत्र, 5/24

''शब्द-बन्ध-सौक्ष्म्य-स्थौल्य-संस्थान-भेद-तमश्छाया-ऽऽतपोद्योतवन्तश्च ॥''

[शब्द-बन्ध-सौक्ष्म्य-स्थौल्य-संस्थान-भेद-तमः-छाया-आतप-उद्योतवन्तश्च पुद्‌गला भवन्ति।]''

39. मुनि यशोविजयजी, पूर्व उद्धृत ग्रन्थ, पृष्ठ 54-57

40. आचार्य तुलसी, भिक्षुन्यायकर्णिका, 1/5, 6, 8

''व्यवच्छेदकधर्मो लक्षणम् ॥5॥

(वृत्ति वस्तुनो व्यवस्थापनहेतुभूतो धर्मो लक्ष्यं व्यवच्छिनत्ति सांकीर्ण्यमपनयतीति लक्षणम्)

अव्याप्त-अतिव्याप्त-असंभविनस्तदाभासाः ॥6॥

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

(वृत्ति अतत् तदिव आभासते इति तदाभासः) लक्ष्यालक्ष्यवृत्तिरतिव्याप्तः ॥8॥

(वृत्ति यथा वायो र्गतिमत्त्वम्)

अनुवाद ''एक वस्तु को दूसरी वस्तुओं से पृथक् करने वाला धर्म लक्षण है ॥5॥

(वृत्ति वस्तु के व्यवस्थापन में हेतुभूत धर्म, जो लक्ष्य को शेष से व्यवच्छिन्न करता है दूसरों से उसे पृथक् करता है, वह लक्षण है।)

''अव्याप्त, अतिव्याप्त और असंभवी ये तीन लक्षणाभास हैं।'' ॥6॥

(वृत्ति जो लक्षण नहीं है पर लक्षण जैसा प्रतीत होता है, उसे लक्षणाभास कहा जाता है।)

''जो लक्षण लक्ष्य और अलक्ष्य दोनों में मिलता है वह अतिव्याप्त लक्षणाभास है।'' ॥8॥

(वृत्ति जैसे वायु का लक्षण गतिशीलता।)''

41. आचार्य महाप्रज्ञ, पूर्व उद्धृत लेख, पृष्ठ 14-19

विद्युत् : सचित्त या अचित्त

वर्तमान युग बिजली का युग है। इस विषय में दो प्रश्न उपस्थित होते हैं

1. बिजली अग्नि है या नहीं?

2. बिजली सचित्त है या अचित्त?

इस विषय पर विभज्यवादी शैली से विचार करना आवश्यक है।

अग्नि के मुख्य धर्म पांच हैं 1. ज्वलनशीलता, 2. दाहकता, 3. ताप, 4. प्रकाश, 5. पाकशक्ति।

नरक में जो अग्नि है वह ज्वलनशील भी है सूयगडो 1/5/11), दाहक भी है (सूयगडो 1/5/12), उसमें ताप (सूयगडो 1/5/13) और प्रकाश भी है। (सूयगडो 1/5/14), पाक-शक्ति भी है (सूयगडो 1/5/15) फिर भी वह निर्जीव है, अचित्त है।

सजीव अग्निकाय सिर्फ मनुष्य-क्षेत्र में होती है। मनुष्य-क्षेत्र से बाहर सजीव अग्नि नहीं होती। सूत्रकृतांग में उसे अकाष्ठ अग्नि इंधन के बिना होने वाली अग्नि बताया गया है। (सूयगडो 1/5/38)''

''नरक में होने वाली अग्नि, तेजोलेश्या के प्रयोग के समय निकलने वाली ज्वाला जैसे अचित्त और निर्जीव अग्नि है, वैसे ही विद्युत् भी अचित्त और निर्जीव अग्नि है यह स्वीकार करने में कोई कठिनाई नहीं है। वास्तव में अचित्त अग्नि तैजस ऊर्जा है, तैजस वर्गणा के पुद्गल हैं। षड्जीवनिकाय में आने वाला सजीव

अग्निकाय नहीं है।''

''**अग्नि नहीं, अग्नि सदृश द्रव्य**

तत्थ णं जे से विग्गहगति समावन्नए नेरइए से णं अगणिकायस्स मज्झंमज्झेणं वीइवएज्जा। (भगवई 14/54, 55)

नारकक्षेत्रे बादराग्निकायस्याभावात्, मनुष्यक्षेत्रे एवं तद्भावात्, यच्चोत्तराध्ययनादिषु श्रूयते 'हुयासणे जलंतंम्मि दड्ढपुव्वो अणेगसो।' इत्यादि तदग्निसदृशद्रव्यान्तरापेक्षययावसेयं, संभवन्ति च तथाविधशक्तिमन्ति द्रव्याणि तेजोलेश्याद्रव्यवदिति। (भगवई टीका 14/54, 55)

अचित्त अग्नि

इंगालरासिं जलियं सजोइं, तओवमं भूमिमणुक्कमंता।
ते डज्झमाणा कलुणं थणंति, उसुचोइया तत्थ चिरट्ठिईया ॥ (सूयगडो 5/1/7)

वे जलती हुई ज्योति सहित अंगारराशि के समान भूमि पर चलते हैं। उसके ताप से जलते हुए वे चिल्ला-चिल्लाकर करुण क्रंदन करते हैं। वे चिरकाल तक उस नरक में रहते हैं।

इंगालरासिं

जधा इंगालरासी जलितो धगधगेति एवं ते नरकाः स्वभावोष्णा एव ण पुण तत्थ बादरो अग्गणी अत्थि, णऽण्णत्थ विग्गहगति समावण्णएहिं। ते पुण उसिणपरिणता पोग्गला जंतवाऽचुल्लीओ वि उसिणतरा (सूत्रकृतांग चूर्णि, पृ. 128)

तत्र बादराग्नेरभावात्तदुपमां भूमिमित्युक्तम्, एतदपि दिग्दर्शनार्थमुक्तम्, अन्यथा नारकतापस्येहत्याग्निा नोपमा घटते, ते च नारका महानगरदाहाधिकेन तापेन दह्यमाना। (सूत्रकृतांग वृत्ति, पत्र 129)

विधूमो नामाग्निरेव, विधूमग्रहणाद्, निरिन्धनोऽग्निः स्वयं प्रज्वलितः सेन्धनस्य ह्यग्नेरवश्यमेव धूमो भवति। (चूर्णि, पृ. 136)

वैक्रियकालभवा अग्नयः अघट्टिता पातालस्था अप्यनवस्था। (चूर्णि, पृ. 137)

नरक में बादर अग्नि नहीं होती। वहां के कुछ स्थानों के पुद्गल स्वतः उष्ण होते हैं। वे भट्टी की आग से भी अधिक ताप वाले होते हैं। वे अचित्त अग्निकाय के पुद्गल हैं। हमारी अग्नि से उस अग्नि की तुलना नहीं की जा सकती, क्योंकि वहां अग्नि का ताप महानगरदाह की अग्नि से उत्पन्न ताप से बहुत तीव्र होता है।

पैंतीसवें तथा अड़तीसवें श्लोक में भी बिना काठ की अग्नि का उल्लेख है।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

उसकी उत्पत्ति वैक्रिय से होती है। यह अचित्त अग्नि है।

केसिं च बंधित्तु गले सिलाओ, उदगंसि बोलेंति महालयंसि।
कलंबुयावालुयमुम्मुरे य, लोलेंति पच्चंति य तत्थ अण्णे ॥ (सूयगडो 5/1/10)

कुछ परमाधार्मिक देव किन्हीं के गले में शिला बांधकर उन्हें अथाह पानी में डुबो देते हैं। (वहां से निकालकर) तुषाग्नि की भांति (वैतरणी के) तीर की तपी हुई बालुका में उनहें लोटपोट करते हैं और भूनते हैं।

असूरियं णाम महाभितावं, अंधं तमु दुप्पतरं महंतं।
उड्ढं अहे यं तिरियं दिसासु, समाहिओ जत्थगणी झियाइ ॥ (सूयगडो 5/1/11)

असूर्य नाम का महान संतापकारी एक नरकावास है। वहां घोर अंधकार है, जिसका पार पाना कठिन हो इतना विशाल है। वहां ऊंची, नीची और तिरछी दिशाओं में निरंतर आग जलती है।

अगणी-आग

तत्थ कालोभासी अचेयणो अगणिक्कायो। (चूर्णि, पृ. 129)

चूर्णिकार ने इसका अर्थ काली आभा वाला अग्निकाय किया है। वह अचेतन होता है।

जंसी गुहाए जलणेऽतिवट्टे, अविजाणओ डज्झइ लुत्तपण्णो।
सया य कलुणं पुण धम्मठाणं, गाढोवणीयं अइदुक्खधम्मं ॥ (सूयगडो 5/1/12)

उसकी गुफा में नारकीय जीव ढकेला जाता है। वह प्रज्ञाशून्य नैरयिक निर्गमद्वार को नहीं जानता हुआ उस अग्नि में जलने लग जाता है। नैरयिकों के रहने का वह स्थान सदा तापमय और करुणा उत्पन्न करने वाला है। वह कर्म के द्वारा प्राप्त और अत्यंत दुखमय है।

चत्तारि अगणीओ समारभेत्ता, जहि कूरकम्मा भितवेंति बालं।
ते तत्थ चिट्ठंतऽभितप्पमाणा, मच्छा व जीवंतु व जोइपत्ता ॥ (सूयगडो 5/1/13)

क्रूरकर्मा नरकपाल नरकावास में चारों दिशाओं में अग्नि जलाकर इन अज्ञानी नारकों को तपाते हैं। वे ताप सहते हुए वहां पड़े रहते हैं, जैसे अग्नि के समीप ले जाई गई जीवित मछलियां।

अयं व तत्तं जलियं सजोइं, तओवमं भूमिमणुक्कमंता।
ते डज्झमाणा कलुणं थणंति, उसुचोइया तत्तजुगेसु जुत्ता ॥ (सूयगडो 5/2/4)

तप्त लोह की भांति जलती हुई अग्नि जैसी भूमि पर चलते हुए वे जलने पर करुण रुदन करते हैं। वे बाण से बींधे जाते हैं और तपे हुए जुए से जुते

रहते हैं।

(1) तओवमं अग्नि जैसी

सा तु भूमि...न तु केवलमेवोष्णा।
ज्वतिलज्योतिषाऽपि अणंतगुणं हि उष्णा सा, तदस्या औपम्य तदोपमा।
(सूत्रकृतांग चूर्णि, पृ. 135)

एवा तदेवंरूपां तदुपमां वा भूमिम्। (सूत्रकृतांग वृत्ति-पत्र 135)

यह भूमि का विशेषण है। इसका संस्कृत रूप है 'तदुपमाम्'। वह भूमि केवल उष्ण ही नहीं है, किंतु अग्नि से भी अनंत गुण अधिक उष्ण है।

(2) ते डज्झमाणा वे जलने पर

ते तं इंगालतुल्लं भूमिं पुणो पुणो खुंदाविज्जंति। (सूत्रकृतांग चूर्णि, पृ. 135)

नरकपाल धधकते अंगारे जैसी उष्ण भूमि पर नैरयिकों को जाने-आने के लिए विवश करते हैं।

समूसियं णाम विधूमठाणं, जं सोयतत्ता कलुणं थणंति।
अहोसिरं कट्टु विगत्तिऊणं, अयं व सत्थेहि समूसवेंति ॥ (सूयगडो 5/2/8)

वहां एक बहुत ऊंचा विधूम अग्नि का स्थान है, जिसमें जाकर वे नैरयिक शोक से तप्त होकर करुण-रुदन करते हैं। नरकपाल उन्हें बकरे की भांति औंधे सिर कर, उनके सिर को काटते हैं और शूल पर लटका देते हैं।

विधूमठाणं

(1) विधूमो नामाग्निरेव, विधूमग्रहणाद् निरिन्धनोऽग्निः स्वयं प्रज्वलितः सेन्धनस्य ह्यग्नेरवश्यमेव धूमो भवति अथवा विधूमवद्, विधूमानां हि अङ्गाराणामतीव तापो भवति। (सूत्रकृतांग चूर्णि, पृ. 136)

चूर्णिकार ने बताया है जो अग्नि इंधन से ही प्रज्वलित होती है, उससे धुआं अवश्य ही निकलता है। नरक की अग्नि निरिंधन होती है।

सयाजलं ठाण णिहं महंतं, जंसी जलंतो अगणी अकट्ठो।
चिट्ठंति तत्था बहुकूरकम्मा, अहस्सरा केइ चिरट्ठिईया ॥ (सूयगडो 5/2/11)

सदा जलने वाला एक महान वधस्थान है। उसमें बिना काठ की आग जलती है। वहां बहुत क्रूर कर्म वाले नैरयिक जोर-जोर से चिल्लाते हुए लंबे समय तक रहते हैं।

जहा इहं अगणी उण्हो, एत्तोणंतगुणे तहिं।
नरएसु वेयणा उण्हा, अस्साया वेइया मए ॥ (उत्तरज्झयणाणि 19/47)

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

जैसे यहां अग्नि उष्ण है, इससे अनंत-गुना अधिक दुखमय उष्ण-वेदना वहां नरक में मैंने सही है।

कंदंतो कंदुकुंभीसु, उड्ढपाओ अहोसिरो।
हुयासणे जलंतम्मि, पक्कपुव्वो थणंतसो ॥ (उत्तरज्झयणाणि 19/49)

पकाने के पात्र में, जलती हुई अग्नि में पैरों को ऊंचा और सिर को नीचा कर आक्रंदन करता हुआ मैं अनन्त बार पकाया गया हूं।

हुयासणे

तत्र च बादराग्नेरभावात् पृथिव्या एव तथाविधः स्पर्श इति गम्यते। (बृहद्वृत्ति, पत्र 459)

अग्निकायिक जीव दो प्रकार के होते हैं सूक्ष्म और बादर। अग्नि के बादर जीव नरक में नहीं होते। यहां जो अग्नि का उल्लेख है, वह सजीव अग्नि के लिए नहीं, किंतु अग्नि जैसे तापवान और प्रकाशवान पुद्गलों के लिए है।

महादवग्गिसंकासं, मरुम्मि वइरवालुए।
कलंबबालुयाए य, दड्ढपुव्वो अणंतसो ॥ (उत्तरज्झयणाणि 19/50)

महा दवाग्नि तथा मरु-देश और वज्र-बालुका जैसी कदंब नदी के बालु में मैं अनंत बार जलाया गया हूं।

हुयासणे जलंतम्मि, चियासु महिसो वि व।
दड्ढो पक्को य अवसो, पावकम्मेहि पाविओ ॥ (उत्तरज्झयणाणि 19/57)

पाप-कर्मों से घिरा और परवश हुआ मैं भैंसे की भांति अग्नि की जलती हुई चिताओं में जलाया और पकाया गया हूं।''

''निष्कर्ष

उक्त विवरण का निष्कर्ष यह है विद्युत्-ऊर्जा है। इसे काष्ठविहीन अग्नि भी कहा जा सकता है। जैसे तेजोलेश्या के प्रयोग के समय तेजोलब्धि-संपन्न व्यक्ति के मुख से निकलने वाली ज्वाला को अग्नि कहा जा सकता है, वैसे ही विद्युत् को अग्नि कहा जा सकता है।

जैसे नरक में होने वाली ऊर्जा को अग्नि कहा गया है वैसे ही विद्युत् की ऊर्जा को अग्नि कहा जा सकता है। जैसे तेजोलेश्या के तैजस परमाणुओं से उत्पन्न ऊर्जा अचित्त है और जैसे नरक में होने वाले तैजस परमाणुओं की ऊर्जा अचित्त है वैसे ही विद्युत् की तैजस परमाणुओं से उत्पन्न ऊर्जा अचित्त है।''

42. तेरापंथ के चतुर्थ आचार्य श्रीमज्जयाचार्य ने इस विषय में बहुत ही स्पष्ट किया

है, जिसके लिए द्रष्टव्य है परंपरा की जोड़, जो 'तेरापंथ : मर्यादा और व्यवस्था', पृष्ठ 341-362 में प्रकाशित है। उसमें आगम, श्रुत, आज्ञा, धारणा और जीत इन पांच व्यवहार को समझाया गया है। यहां कुछ पद्य उद्धृत हैं (पृष्ठ 341-346

ढाल 1

दूहा

1. परंपरा नां बोल बहु, गणि बुद्धिवंत री थाप।
   दोष नहिं छै तेहमें, जीत ववहार मिलाप ॥
2. आगम, श्रुत, आणा, धारणा, जीत, पंचमो जोय।
   ए पंच ववहारे वर्त्ततां, श्रमण आराधक होय ॥
3. ठाणांग[1] ठाणें पांच में, तथा सूत्र ववहार[2]।
   भगवती[3] अष्टम शतक में, अष्टमुद्देशे सार ॥
4. तिण सूं जीत ववहार में, दोष नहिं छै कोय।
   नीतिवान गणपति तणों, बांध्यो जीत सुध जोय ॥
5. सुध आलोची मुनि करे, असम्यक् पिण सम्यक् कहिवाय।
   आचारांग[4] अध्ययनपंचमें, पंचमक उद्देशे वाय ॥
11. तथाजोड़किवाड्यातणीं, चोपनैं कीधी स्वाम।
    तिण माहै पिण थापियो, जीत ववहार सुधाम ॥

आचार्य भिक्षु कृत किवाडिया री ढाल, गा. 21 से 24

तथा

सूतर मांही तो मूल न वरज्यो, परंपरा में पिण बरज्यो नांहि।
तिण सूं जीत ववहार निर्दोष थाप्यां री, संका म करो मन मांहि ॥

जो कवाडिया री संका पडै तो, संका छै ठांम-ठांम।
ते कहि कहि ने कितराएक केहूं, संका रा ठिकाणा तांम ॥

साधु तो हिंसा रा ठिकाणा टाले, छद्मस्थ तणें ववहार।
सुध ववहार चालतां जीव मर जाये तो, विराधक नहीं छै लिगार ॥

इहां भीखणजी स्वामी आपणा ववहार में जीत ववहार थापै तिण में दोष न कह्यो। सुध ववहारे चालतां जीव मर जावै तो पिण विराधक नहीं, तिम सुध

1. ठाणं 5/124, 2. ववहार 10/6, 3. भगवई सतं 8/301, 4. आयारो 5/96

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

ववहार जाण नें थाप्यो तिण में पिण दोष नहीं। अनै ते जीत ववहार में पाछला ने दोष भ्यासै तो छोड़ देणो। आगे निर्दोष जाण नें सेव्यो त्यांने दोष न कहिणो।

तथा सुयगडायंग श्रुतस्कंध दूजो अध्ययन पांचमा में एहवी गाथा कही

अहाकम्माणि भुंजंति, 'अण्णमण्णस्स कम्मुणा'।
उवलित्ते त्ति जाणिज्जा, अणुवलित्ते त्ति वा पुणो ॥

एएहिं दोहिं ठाणेहिं, ववहारो ण विज्जई।
एएहिं दोहिं ठाणेहिं, अणायारं विजाणए ॥ [सूयगडो 2, अ. 5, गाथा 8, 9]

अथ इहां पिण कह्यो आधाकर्मी पिण सुध ववहार में निर्दोष जाणी नें भोगवें तो पाप कर्मे करि न लिपावै। तिम आचार्य बुद्धिवंत साधु आपणा ववहार में निर्दोष जाणी नें जीत ववहार थापे तिण में पिण दोष न कहिणो। तथा भगवती, ठाणांग, ववहार सूत्र में पांच ववहार कह्या ते पाठ

कतिविहे णं भंते! ववहारे पण्णत्ते? गोयमा! पंचविहे ववहारे पण्णत्ते, तं जहा आगमे, सुतं, आणा, धारणा, जीए।

जहा से तत्थ आगमे सिया आगमेणं ववहारं पट्ठवेज्जा। णो य से तत्थ आगमे सिया, जहा

से तत्थ सुए सिया, सुएणं ववहारं पट्ठवेज्जा।

णो य से तत्थ सुण सिया, जहा से तत्थ आणा सिया, आणाए ववहारं पट्ठवेज्जा।

णो य से तत्थ आणा सिया, जहा से तत्थ धारणा सिया, धारणाए ववहारं पट्ठवेज्जा।

णो य से तत्थ धारणा सिया, जहा से तत्थ जीए सिया, जीएणं ववहारं पट्ठवेज्जा।

इच्चएहिंपचहिंववहारं पट्ठवेज्जा, तं जहा आगमेणं, सुएणं आणाए, धारणाए, जीएणं।

जहा-जहा से आगम सुए आणा धारणा जीए तहा-तहा ववहारं पट्ठवेज्जा।

से किमाहु भंते! आगमबलिया समणा निग्गंथा?

इच्चेतं पंचविंह ववहारं जदा-जदा जहिं-जहिं 'तदा-तदा' तहिं-तहिं अणिस्सि-ओवस्सितं सम्मं ववहरमाणे समणे निग्गंथे आणाए आराहए भवइ॥

[भगवई सत 8/301, ववहारं उ. 10, ठाणं 5/124]

इहां पांच ववहार में धारणा ववहार अनै जीत ववहार पिण कह्यो। सुध सरधा आचार वंत साधु नो बांध्यो जीत ववहार में दोष नहीं। ते जीत ववहार ना केतला एक बोल कहै छै

दूहा

12. जीत ववहार ना बोल नो, आखूं छूं अधिकारं।
दृढ समदृष्टि निपुण ते, नाणे संक लिगार ॥

28. इत्यादिक अनेक बोल सुध, जाणी आचार्य थापै।
जीत ववहारतास जिन आणा, बुद्धिवंत नाहिं उथापै ॥

29. आगम श्रुत नें आणा धारणा, जीत पंचमो साधक।
पंच ववहार पणे प्रवर्त्या, आज्ञा तणों आराधक ॥

30. ए ठाणांग भवगती ववहारसूत्रे, आख्यो एम जिणंदा।
तो जीत ववहार उथापै ते तो, प्रगट जैन रा जिंदा ॥

31. भिक्षु स्वाम तणीं ए बांधी, उत्तम वर मर्यादो।
विमल चित आराधे सुगणां, मेटी भर्म उपाधो ॥''

(धोवण पानी अचित्त है, इस विषय में टिप्पण संख्या 81B में उद्धरण दिए गए हैं।)

43. मुनि यशोविजयजी, पूर्व उद्धृत ग्रन्थ, पृष्ठ 57-63

44. देखें प्रथम भाग की टिप्पण संख्या 8(B)

45. आचार्य तुलसी, जैन सिद्धान्त दीपिका, 1/9-11

''जीवपुद्गलयोर्विविधिसंयोगैः स विविधरूपः ॥9॥

(वृत्ति इयं विविधरूपता एव सृष्टिरिति कथ्यते।)

संयोगश्चापश्चानुपूर्विकः ॥10॥

कर्म-शरीरोपग्रहरूपेण त्रिविधिः ॥11॥

(वृत्तिः उपग्रहः अहार-वाङ् मनः-उच्छ्वासनिःश्वासादयः।)

अनुवाद ''जीव और पुद्गलों के विविध संयोगों से वह (लोक) विविध प्रकार का है ॥9॥

(लोक की इस विविधिरूपता को ही सृष्टि कहा जाता है।)

जीव और पुद्गल का संयोग अपश्चानुपूर्विक (पौर्वापर्यशून्य) है ॥10॥

संयोग तीन प्रकार का है

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

1. कर्म
2. शरीर
3. उपग्रह ॥11॥

(उपग्रह आहार, वाणी, मन, उच्छ्वास-निःश्वास आदि उपकारक शक्तियां।)

46. आचार्य महाप्रज्ञ, पूर्व उद्धृत लेख, पृष्ठ 16
47. वही, पृष्ठ 15
48. मुनि यशोविजयजी, पूर्व उद्धृत ग्रन्थ, पृष्ठ 64
49. वही, पृष्ठ 65-67
50. भगवती सूत्र (भगवई), अंगसुत्ताणि खंड 2, 5/2/51-54

51. ''अह णं भंते! ओदणे, कुम्मासे, सुरा एए णं किंसरीरा ति वत्तव्वं सिया?

गोयमा! ओदणे, कुम्मासे, सुराए य जे घणे दव्वे एए णं पुव्वभावपण्णवणं पडुच्च वणस्सइजीवसरीरा। तओ पच्छा सत्थातीया, सत्थपरिणामिया, अगिणज्झामिया, अगणिझूसिया, अगणिपरिणामिया अगणिजीवसरीरा ति वत्तव्वं सिया। सुराए य जे दवे दव्वे एए णं पुव्वभावपण्णवणं पडुच्च आउजीवसरीरा। तओ पच्छा सत्थातीया जाव अगणिजीवसरीरा ति वत्तव्वं सिया ॥

52. अह णं भंते! अये, तंबे, तउए, सीसए, उवले, कसट्टिया एए णं किंसरीरा ति वत्तव्वं सिया?

गोयमा! अये, तंबे, तउए, सीसए, उवले, कसट्टिया एए णं पुव्वभावपण्णवणं पडुच्च पुढवीजीवसरीरा। तओ पच्छा सत्थातीया जाव अगणिजीवसरीरा ति वत्तव्वं सिया ॥

53. अह णं भंते! अट्ठी, अट्ठिज्झामे, चम्मे, चम्मज्झामे, रोमे, रोमज्झामे, सिंगे, सिंगज्झामे, खुरे, खुरज्झामे, नखे, नखज्झामे एए णं किंसरीरा ति वत्तव्वं सिया?

गोयमा! अट्ठी, चम्मे, रोमे, सिंगे, खुरे, नखे एए णं तसपाणजीवसरीरा। अट्ठिज्झामे, चम्मज्झामे, रोमज्झामे, सिंगज्झामे, खुरज्झामे, नखज्झामे एए णं पुव्वभावपण्णवणं पडुच्च तसपाणजीवसरीरा। तओ पच्छा सत्थातीया जाव अगणिजीवसरीरा ति वत्तव्वं सिया ॥

54. अह णं भंते! इंगाले, छारिए, भुसे, गोमए एए णं किंसरीरा ति वत्तव्वं सिया?

गोयमा! इंगाले, छारिए, भुसे, गोमए एए णं पुव्वभावपण्णवणं पडुच्च एगिंदियजीवसरीरप्पयोगपरिणाममिया वि जाव पंचिंदियजीवसरीरप्पयोग-परिणामिया वि। तओ पच्छा सत्थातीया जाव अगणिजीवसरीर ति वत्तव्वं सिया।''

51. आचार्य महाप्रज्ञ, भगवती भाष्य (खंड 2), पृष्ठ 141, 142
52. प्रवचनसार, गाथा 8 ''परिणमदि जेण दव्वं, तक्कालं तम्मयत्ति पण्णत्तं।''
53. तत्त्वानुशासन, गाथा 190

परिणमते येनात्मा भावेन सतेन तन्मयो भवति।
अर्हद् ध्यानाविष्टा भावार्हन् स्यात् स्वयं तस्मात् ॥

54. प्रो. हरिमोहन झा, भारतीय दर्शन परिचय, द्वितीय खंड, वैशेषिक दर्शन, पृष्ठ 121
55. ''अत्थिणं भंते! अच्चित्ता वि पोग्गला ओभासंति? उज्जोवेंति? तवेंति? पभासेंति? हंता अत्थि।

''कयरे णं भंते! अच्चित्ता वि पोग्गला ओभासंति? उज्जोवेंति? तवेंति? पभासेंति? कालोदाई! कुद्धस्स अणगारस्स तेय-लेस्सा निसट्ठा समाणी दूरंगता दूरंनिपतति, देसं गता देसं निपतति, जहिं-जहिं च णं सा निपतति तहिं-तहिं च णं ते अचित्ता वि पोग्गला ओभासंति, उज्जोवेंति, तवेंति, पभासेंति। एतेण कालोदाई! ते अचित्ता वि पोग्गला ओभासंति, उज्जोवेंति, तवेंति, पभासेंति ॥''

56. डॉ. जे. जैन, पूर्व उद्धृत लेख, पृष्ठ 23
57. Prof. A. K. Shaha, op. cit., p. 286—

"It is to be noted that solid bodies and the majority of liquid bodies can be considered as impenetrable to rays, i.e. are opaque. Rays cannot penetrate inside these bodies and cannot be emitted from within. In the opaque bodies, radiation, absorption and reflection of rays occur only on the surface. Gases are permeable to rays and rays can pass through them freely. Some of the gases such as CO_2, H_2O, CH_4 etc. are endowed with the property of radiation and emit grey radiation. However gases exhibit the property of radiation and absorption in respect of the rays of particular wavelengths only."

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

58. डॉ. जे. जैन, पूर्व उद्धृत लेख, पृष्ठ 50 में भट्टी की प्रक्रिया को वैज्ञानिक आधारों पर समझाया गया है। वे स्वयं इसी विषय के विशेषज्ञ हैं।

59. वही, पृष्ठ 49

60. वही, पृष्ठ 50

61. वही, पृष्ठ 50

62. वही, पृष्ठ 51

63. वही, पृष्ठ 55, 56

64. वही, पृष्ठ 59, 60

65. मुनि यशोविजयजी, पूर्व उद्धृत ग्रन्थ, पृष्ठ 67, 68

66. वही, पृष्ठ 68, 69

67. वही, पृष्ठ 69-74

68. वही, पृष्ठ 74, 75

69. वही, पृष्ठ 75, 76

70. (क) ठाणं (स्थानांग सूत्र), 10/105-107

''दस सण्णाओ पण्णत्ताओ, तं जहा आहारसण्णा, भयसण्णा, मेहुणसण्णा, परिग्गहसण्णा, कोहसण्णा, माणसण्णा, मायासण्णा, लोभसण्णा, लोगसण्णा, ओहसण्णा।

णेरइयाणं दस सण्णाओ एवं चेव।
एवं णिरंतरं जाव वेमाणियाणं ॥''

(ख) विज्ञान के अन्वेषणों के लिए उदाहरणार्थ देखें "Sectret Life of Plants"

71. मुनि यशोविजयजी, पूर्व उद्धृत ग्रन्थ, पृष्ठ 77

72. यह पूरा प्रश्न मुनि यशोविजयजी ने अपने ग्रन्थ 'विद्युत् : सजीव या निर्जीव?' में पृष्ठ 78-99 में विस्तार से प्रस्तुत किया है। इस प्रश्न के विस्तृत उत्तर के लिए मुनि नंदीघोषविजयजी द्वारा लिखित 'जैन दर्शन : वैज्ञानिक दृष्टिए' में पृष्ठ 61-68 द्रष्टव्य है। (इसे हमने प्रस्तुत पुस्तक के अन्त में परिशिष्ट-1 में उद्धृत किया है।)

73. श्रीमद् जयाचार्य, प्रश्नोत्तर-तत्त्व बोध, प्रकरण 15, '45, बत्तीस आगम अधिकार', पृष्ठ 60, 61

568. ''पंच अनै चालीस में, जे **चउसरण** विचार।
नाम **भक्तपरिज्ञा,** बली, फुन पइन्नो **संथार** ॥1॥

569. **जीतकल्प, पिंडनिर्युक्ति, पचखाण-कल्प** अवलोय।
ए षट् नीं नंदी विषे, साख नहीं छै कोय ॥2॥

570. महा-निशीथ विषे कह्युं, द्वितिय अध्ययन मझार।
कुलिखत दोष देवो नहीं, तसुं कारण अवधार ॥3॥

571. एहिज महानिशीथ में किहां क अर्द्ध सिलोग।
किहां सिलोग, किहां अक्षर नी, पंक्ति ओली प्रयोग ॥4॥

572. किहांयक पानो अर्द्ध ही, किहां पत्र बे तीन।
गळ्यो ग्रन्थ इम आदि बहु, इह विध कह्युं सुचीन[1] ॥5॥

573. बलि कह्युं तृतिय अध्येन में, ए पुस्तक रै मांहि।
चैंठो इक पाना थकी, बीजो पानो ताहि ॥6॥

574. ते माटे ए सूत्र ना, अलावा[2] न पामेह।
तिहां भणणहार सूत्रां तणा, त्यां अशुद्ध लिख्युं हुवै जेह ॥7॥

575. दोष न देवो तेहनी, खंड-खंड थइ एह।
पत्र सड़्या खाधी बलि, जीव उद्देहि[3] जेह ॥8॥

---

1. महानिशीथ, अध्ययन 2, पत्र 7 (हस्तलिखित) :
एयस्स य कुलिहियदोसो न दायव्वो सुयहरेहिं किंतु जो चेव एयस्स पुव्वायरिसो आसि तत्थे व। कत्थइ सिलोगो कत्थइ सिलोगद्धं कत्थइ पयक्खरं कत्थइ अक्खरपंतिया कत्थइ पन्नगपुट्ठिय कत्थइ वेतिन्नि पन्नगाणि एवमाइ बहुगंथं परिगलियं ति।
2. आलापक
3. दीमक

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

576. हरिभद्र निज मति करी, सांधी लिख्युंज ताम।
इम कह्युं महा-निशीथ में, बलि अन्य आचारज नाम[1] ॥9॥

577. तिण सूं महानिशीथ पिण, डोहलाणो[2] छै एह।
सर्व मूलगो नहि रह्यो, निपुण विचारी लेह ॥10॥

578. शेष रह्या षट तेह में, कांइक कांइक बाय।
अंग सूं न मिलै तेह वच, किम मानीजै ताय ॥11॥

579. टीका चूर्णि दीपिका, भाष्य निर्युक्ती जाण।
किंणहिक री दीसै नथी, तिण सूं एह अप्रमाण ॥12॥

580. एकादश जे अंग थी, मिलता वचन सुजाण।
सर्व मानवा जोग्य मुझ, पइन्ना प्रमुख पिछाण ॥13॥

581. धुर वे अंग नी वृत्ति जे, शीलाचारज कीध।
अभयदेव सूरी करी, नव अंग वृत्ति प्रसीध ॥14॥

582. फुन अभयदेव सूरे रचित, प्रथम उपंग प्रबंध।
चंद्र सूरि विरचित वृत्ति, निरावलिया श्रुतस्कंध ॥15॥

583. शेष उपंग रु छेद नीं, मलयगिरि कृत जोय।
हेमाचार्य वृत्ती करी, अनुयोगद्वार नीं सोय ॥16॥

584. हरिभद्र सूरे करी, दशवैकालिक वृत्त।
भाष्य अनै बलि चूर्णि पिण, पूर्वाचार्य रचित्त ॥17॥

585. तिम ए षट नी नवि करी, पूर्वाचारज जोय।
तिण सूं तिणे न मानिया, एहवूं दीसै सोय ॥18॥

586. शेष रह्या बत्तीस जे, मानण जोग्य अरोग्य।
एह थी मिलता अन्य पिण, छै मुझ मानण जोग्य ॥19॥

1. महानिशीथ, अध्ययन 3, पत्र 25 (हस्तलिखित) :
एत्थ य जत्थ जत्थ पण्णाणुलग्गं सुतालावगं न संपज्जइ तत्थ तत्थ सुयहरेहिं कुलिहियदोसो न दायव्वो त्ति। किंतु जो सो एयस्स अचिंतचिंतामणिकप्पभूयस्स महानिसीहसुयक्खंधस्स पुव्वायरिसो आसि तहिं चेव खंडाखंडीए उद्देहियाएहिं हेऊहिं वहवे पत्तगा परिसडिया तहावि अच्चंतसुहमत्थाइसयंति। इमं महानिसीयसुयक्खंधं कसिणपवयणस्स परमसारभूय परं तत्तं महत्थं ति कलिऊण पवयणवच्छल्लत्तेणं बहुभव्वसत्तोवयारियं च काउं तहा य आयरिअट्टयाए आयरिअ हरिभद्देणं जं तत्थायरिसो दिट्ठं तं सव्वं समतीए साहिऊण लिहियं ति। अन्नेहिं पि सिद्धसेणदिवायर वुद्धवाइ जक्खसेण देवगुत्त जसवद्धणखमासमण सीसरविगुत्त णेमिचंद जिनदास गणखमग सव्वरिसिं पमुहेहिं जुणप्पहाणसुयहरेहिं बहुमण्णियमिणंति। [पत्र 25]
2. मिलावटी

74. Satish K. Gupta, op. cit., pp. 1085-1088

"Photon

A photon is a packet of energy. It possesses energy given by

$E = h\nu$

where $h = 6.62 \times 10^{-34}$ J s is the Planck's constant and ν is the frequency of the photon. If λ is the wavelength of the photon, then

$c = \nu\lambda$

Here, $c = 3 \times 10^8$ m s^{-1} is velocity of light.

Therefore, $E = h\nu = \frac{hc}{\lambda}$

Photoelectric effect

Hallwach discovered that an insulated zinc plate connected to a gold leaf electroscope and charged negatively lost its charge, when a beam of ultraviolet light was directed on the plate. In order to explain this observation, Haliwach suggested that the metal surface loses negative charge due to ejection of electrons from its surface by the ultraviolet light. The effect was termed as *photoelectric effect.*

The *phenomenon of ejection of electrons from a metal surface, when light of sufficiently high frequency falls upon it, is known as the photoelectric effect.*

The electrons so emitted were called *photoelectrons.* J. J. Thomson showed that the photoelectrons were not different from the ordinary electrons.

Laws of photoelectric **emission.** The various experimental observation led to the various conclusions, which became known as the laws of photoelectric emission, as explained below :

1. *The emission of photoelectrons takes place only when the frequency of the incident radiation is above a certain critical value, characteristic of that metal.* The critical value of frequency is known as the *threshold frequency* for the metal of the emitting electrode.

2. *The emission of photoelectrons starts as soon as light falls on metal surface.*

It has been found that the time lag between the incidence of photon and the emission of electron is less than 10^{-8} s.

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

3. *The maximum kinetic energy with which an electron is emitted from a metal surface is independent of the intensity of the light and depends only upon its frequency.*

4. *The number of photoelectrons emitted i.e. the photoelectric current is independent of the frequency of the incident light and depends only upon its intensity.*

Einstein's Photoelectric Equation

To explain photoelectric effect, Einstein postulated that the energy carried by a photon of radiation of frequency v is hv. According to him, the emission of a photoelectron was the result of the interaction of a single photon with an electron, in which the photon is completely absorbed by the electron. We know that to remove an electron from a metal, a certain minimum amount of energy w, called *work function* of the metal, is required. Thus, when a photon of energy hv is absorbed by an electron, an amount of energy at least equal to w (provided $hv > w$) is used up in liberating the electron free and the differeace $hv - w$ becomes available to the electron as its maximum kinetic energy."

75. मुनि यशोविजयजी, पूर्व उद्धृत ग्रन्थ, पृष्ठ 100

76. वही, पृष्ठ 101, 102 पर ये उद्धरण विस्तार से दिए गए हैं।

77. वही, पृष्ठ 103

78. वही, पृष्ठ 103, 104

79. वही, पृष्ठ 116, 117

80. वही, पृष्ठ 104, 105

81. तेरापंथ युवक परिषद् जयपुर द्वारा प्रकाशित 'जय शासन जय अनुशासन' में आचार्य तुलसी का भगवान महावीर के 2500वें निर्वाण महोत्सव के अवसर पर दिए गए एक उद्‌बोधन के आधार पर 'विकास का आधार आत्मानुशासन' नामक लेख, पृष्ठ 7

81. (a) स्थानकवासी और तेरापंथ धर्मसंघ में बर्तनों का धोवण पानी अचित्त मानकर ग्रहण करने की परम्परा प्राचीन काल से प्रचलित थी। जब इस पर कुछ लोगों ने यह कहकर आपत्ति की कि इसमें दो घड़ी में द्वीन्द्रिय आदि जीव पैदा हो जाते हैं, तो आचार्य भिक्षु ने उसका स्पष्टीकरण किया। उन्होंने स्पष्ट किया कि धोवन पानी अचित्त है तथा उसमें द्वीन्द्रिय जीवों की उत्पत्ति की बात आगम-मान्य नहीं है। देखें, आचार्य भिक्षु कृत श्रद्धा

की चौपाई ढाल 31, श्री भिक्षु-ग्रन्थ-रत्नाकर (खंड-1), प्रकाशक तेरापंथी महासभा, कलकत्ता, सन् 1960, पृष्ठ 772-777, आचार्य भिक्षु, श्रद्धा की चौपई, ढाल 32

ढाल : 31

दुहा

केई जेंनी नांम धराय नें, बोले झूठ अतीव।
साधु धोवण बहरे तेह में, कहे बेइंद्री जीव ॥1॥

ते पोतें तो धोवण पीवें नहीं, पिये त्यांनें निंदे दिन रात।
ते अन्हाखी थका बकवो करे, त्यांरा घट मांहें घोर मिथ्यात ॥2॥

जिभ्या रो स्वाद तज्यां बिनां, धोवण पियो किम जात।
तिणसूं धोवण उथापें बहरणो, झूठी कर कर मुख सूं बात ॥3॥

केई कहे वासी आहार में, एकण रात रे मांहिं।
जीव बेइंद्री उपजें, तिण सूं साधां ने वहरणो नांहि ॥4॥

पोतें ठंडो आहार भावे नहीं, तिण सूं उंधी परूपें एम।
एहवा हिंसाधर्म्या रा लक्षण बुरा, ते सुणज्यो धर प्रेम ॥5॥

ढाल

कसाई विचे तो कुगुर बुरा ए, त्यरि दया नहीं लवलेश।
छ काया मारण तणो ए, दे पापी उपदेश।
पाखंडी गुर एहवा ए, उन्हों पांणी धरावे करे आमना ए ॥1॥

पछें भर भर ल्यावे ठांम, आधाकर्मी भोगवे ए।
त्यांरा दुष्ट घणा पिरणांम, भविक निरणो करो ए ॥पा. 2॥

करडो काठो धोवण भावे नहीं ए, उन्हों पांणी लागे स्वाद।
तिण सूं अन्हाखी थका ए, करे कूडी विषवाद ॥3॥

कहे धोवण में उपजे घणा ए, दोय घडी पाछें जीव।
ए उंधी परूपनें ए, दे छें कुगति नीं नींव ॥4॥

धोवण इकवीस जाति नों ए, साधु नें लेणो कह्यो जिण आप।
आचारांग सूतर[1] में ए, ते कुगुरां दीयो उथाप ॥5॥

1. आयारचूला, 1/6/99-104

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

इकवीस जाति सूं मिलतो थको ए, घणी जाति रो धोवण जांण।
ते पिण लेणो कह्यो ए, तिणरी न करे मूढ पिछांण ॥6॥

अनेरो सस्त्र परिणम्यां थकां ए, वर्ण ने रस फिर जाय।
ते धोवण लेणो साधु नें ए, ते विकलां नें खबर न काय ॥7॥

कहे धोवण में जीव उपजें ए, दोय घडी में आय।
ते पिण सूतर में नहीं ए, झूठा थका बोले मूसाबाय ॥8॥

ततकाल रो धोवण नहीं वेंहरणों ए, घणी बोलां रो धोवण लेणो जांण।
दसवैकालक[1] में कह्यो ए, तोही करे अग्यांनी तांण ॥9॥

कहे धोवण में जीव उपजें ए, ते अन तणे परवेश।
एहवो झूठ बोलनें ए, कर रह्या कूड कलेश ॥10॥

जो धोवण में जीव उपजें ए, तो रोटी में ई उपजे आंण।
दोय घडी मझे ए, ए लेखो बरोबर जांण ॥11॥

इमहिज दाल खीच घाट में ए, इत्यादिक सगली अन जांण।
सगलां में जीव उपजें ए, धोवण सूं यांनें ल्यो पिछांण ॥12॥

कठे पांणी थोडो नें अन घणो ए, कठे अन थोडो पांणी अत्यन्त।
पांणी नें अन सर्व में ए, यां सगलां रो एक विरतंत ॥13॥

दूध री जावणी रा धोवण मझे ए, यांमें उपजें बेइंद्री आय।
तो दूध में पिण उपजें ए, पांणी मिले छें तिण मांय ॥14॥

वले दही नें छाछ रा धोवण मझे ए, यांमें उपजें बेइंद्री आय।
तो उपजें दही छाछ में ए, पांणी मिले छें यरि ई मांय ॥15॥

जिण जिण दरब रा धोवण मझे ए, जो उपजें बेइंद्री आय।
तो दरब में ई उपजें ए, पांणी मिले छे दरब रे मांय ॥16॥

इतरा काल पछें जीव उपजें ए, ते सूतर में न कह्यो भगवंत।
उपजता जीव जांण नें ए, बहरें नहीं मतिवंत ॥17॥

81. (b) तेरापंथ धर्म-संघ में आचार्यों द्वारा सचित्त-अचित्त के विषय में जो निर्णय किए जाते हैं, उन्हें मर्यादावली में मर्यादा के रूप में मान्य किया जाता है। उदाहरणार्थ देखें

1. दशवैकालिक सूत्र, अ. 5, उद्देशक 1, गाथा 75-77

श्रीमज्जयाचार्य कृत मर्यादा वृहद् मर्यादा (बड़ी मर्यादा) सं. 1908 का माघ सुदी 15 के दिन जयाचार्य पाट बिराज्या पछे त्यां विशेष बंधोबस्ती कीधी ते लिख्यते

(आचार्यों द्वारा समय-समय पर व्यवहार के आधार पर कृत मर्यादाएं)

(4) सेक्या मोथ्या तथा त्यारे संघटै पिण बहिरणो नहीं। अनै गिणवा दाणा वीखरया सेक्या दीसै। तिणरे संघटे बहिरयां अटकाव नहीं।

(5) मोगरी धूंगारी लेणी नहीं। इम फली सांगरी कैर फोग धूंगार्‌या लैणा नहीं। मां है मिरच्यां रा बीज री तथा काचरयां रा बीज री फश्यां री संका ते माटै।

(6) केला फुंतरा सहित तथा त्यांरै संघटे बहिरणो नहीं। फुंतरा बिना लेवै तो अटकाव नहीं।

(7) मिरचा राती कूटी घांस अर्थे तेल घाल्योडी ते बीज सहित लैणी नहीं।

(8) सिंघोडा सूका भागा बीज सहित लेणा नहीं।

(9) आंबारो छूंदो फोंतरा देशी आंब कीसागां सागां खांड का फरस विना लैणी नहीं। परदेशी आंब की बात न्यारी।

(17) काचा पाणी मैं तेल रा हाथ घाल्यां चीगर रा तरावारा दीसे ते लेणो नहीं।

(18) लूण मिरच जीरो हलदी घाल्योडो मसालो लेणो नहीं।

(24) खरबूजा रो खांड घाल्योडौ पुणो बीज सहित लेणो नहीं, बीज विना अटकाव नहीं।

(25) बालण काकडी रो पुणो लेणो नहीं।

(26) मतीरा को पाणी लेणो नहीं।

(27) ऊन्हो पानी तथा गोबरादिक को धोवण रो पालो जम्यो ते लेणो नहीं।

(28) दरिया नीला दाडिमरा कुलिया लूंण मिरच लगायोडा लेणा नहीं।

ए 36 बोलांरी बंधोबस्ती विशेष कीधी। खोपरा बीज सहित वर्जणा तो आगे ई हूंती। पिण मूणरा खोपरा बीज गलिया जाण ने लेता ते छोड्या।...आचार्य री बांधी मर्यादा आचार्य रे हाथे छे।

(49) दीवारै चानणै पाना वांचणा नहीं।

(57) पाणी सचित री पारखा अर्थे हाथ घालणो नहीं। ववहार में अचित जाणें तो बहिर लेणों।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

81. (c) मर्यादावली, व्यवस्था सूत्र 16 (अप्रकाशित) :

"सेल, बेटरी वाली घड़ी की तरह कर्णयंत्र भी सेल-संचालित है। उसमें तेजस्काय की अजयणा की संभावना नहीं लगती, अतः काम में लिया जा सकता है।"

82. मुनि यशोविजयजी, पूर्व उद्धृत ग्रन्थ, पृष्ठ 106-108

83. देखें, टिप्पण संख्या 73

84. मुनि यशोविजयजी, पूर्व उद्धृत ग्रन्थ, पृष्ठ 109

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

परिशिष्ट 1

प्रकाश सजीव-निर्जीव-मीमांसा

विद्युत् का प्रकाश, आकाशीय बिजली का प्रकाश, दीपक का प्रकाश आदि सभी सजीव तेउकाय है, ऐसी मान्यता के समर्थन में तथा उसके खंडन में जो विचार व्यक्त किए गए हैं, उसकी मीमांसा यहां की गई है।

1. प्रकाश सजीव है

'प्रकाश सजीव है' इस मान्यता को मुनि यशोविजयजी ने निम्नांकित विचार द्वारा प्रकट किया है[1]

''अभ्यंतर तप में अंतिम और उत्कृष्ट प्रकार कायोत्सर्ग साधना है। तथाविध संकल्प करने के साथ काया का त्याग करके आत्मा को विशुद्ध आलंबन में जोड़े रखने की अद्भुत साधना स्वरूप कायोत्सर्ग में 16 प्रकार के आगार (= अपवाद = छूट) **आवश्यकसूत्र** में बताए हैं। उसमें एक अपवाद है दीये की रोशनी (उजाला) (= दीप्रकाश)। **आवश्यकनिर्युक्ति** में **श्री भद्रबाहुस्वामीजी** ने

'अगणीओ छिंदिज्ज व बोहियखोभाइ दीहडक्को वा।
आगारेहिं अभग्गो उस्सग्गो एवमाईहिं ॥' (गा. 1516)

इत्यादि रूप में कायोत्सर्ग के आगार (= अपवाद) बताए हैं। उसमें 'अगणीओ' पद द्वारा जो आगार बताया है उसकी व्याख्या में **श्री हरिभद्रसूरीश्वरजी** महाराज बताते हैं कि

'यदा ज्योतिः स्पृशति तदा प्रावरणाय कल्पग्रहणं कुर्वतो न कायोत्सर्गभंगः'
(गा. 1516)

मतलब कि कायोत्सर्ग चालू हो तब कोई व्यक्ति मोमबत्ती, लालटेन, दीया, लाईट वगैर चालू करे और उसका प्रकाश = रोशनी (उजाला) यदि कायोत्सर्ग करने वाले साधक के ऊपर पड़े तो कायोत्सर्ग करने वाला अपने शरीर को ऊन की कम्बल से ढके, कम्बल को शरीर पर ओढ़ने से कायोत्सर्ग का भंग नहीं होता।

यदि दीये की रोशनी (उजाला), लाईट (= तेउकाय) का प्रकाश निर्जीव हो तो चालू कायोत्सर्ग में कम्बल ओढ़ने की जो बात की है उससे सिद्ध होता है कि शरीर पर आने वाला लाईट का प्रकाश = कृत्रिम तेउकाय का प्रकाश, मोमबत्ती-लालटेन-दीये वगैरह का प्रकाश सचित्त, सजीव है। इसलिए उनकी रक्षा करने के उद्देश्य से चालू कायोत्सर्ग में ऊन की कम्बल ओढ़ने की शास्त्रकार परमर्षियों ने फर्ज बताई है। बड़े दोष से बचने के लिए प्रस्तुत में अनिवार्य रूप से छोटे दोष का सेवन क्षम्य बनता है।

देहाध्यास को दफनाने के लिए किए जाने वाली कायोत्सर्ग जैसी महान साधना में जीवहिंसा न हो जाए उसकी सावधानी रखने की बात हमारे हृदय में अंकित हो, इस दृष्टिकाणे से किया गया यह विधान बिजली के दीये के प्रकाश को = बल्ब प्रकाश को भी सजीव सिद्ध करता है। क्योंकि बिजली भी दीये की तरह तेउकाय ही है। इसी प्रकार से तेउकाय (दीये की ज्योत) और उसका प्रकाश ये दोनों **तत्त्वार्थवृत्तिकार** के मत के अनुसार एक ही है। जिनागम अनुसार आकाशीय बिजली, दीये की ज्योत, दीये का प्रकाश सजीव है। विज्ञान अनुसार तैल के दीये का दूर तक फैलता हुआ प्रकाश और इलेक्ट्रीक बल्ब का प्रकाश ये दोनों फोटोन (तेजाणु) स्वरूप हैं, अर्थात् दोनों एक हैं। इसलिए उपर्युक्त बात को समीकरण के रूप में समझने के लिए ऐसा कह सकते हैं कि

1. तैल के दीये की ज्योत = सचित्त (= सजीव) तेउकाय
जीवाभिगमसूत्र (प्रति .1/25)

दीये की ज्योत (Flame) = दीपकप्रकाश (रोशनी [उजाला])
तत्त्वार्थवृत्ति (5/24)

तैलीयदीपक का प्रकाश = इलेक्ट्रीक बल्बप्रकाश

(= फोटन = तेजाणु) साइन्स

∴ बल्बप्रकाश भी सजीव तेउकाय रूप सिद्ध होता है।

(2) आकाशीय बिजली = सजीव तेउकाय-**पन्नवणासूत्र** (1/31)

आकाशीय बिजली = इलेक्ट्रीसीटी **बेन्जामीन फ्रेंकलीन**

∴ इलेक्ट्रीसीटी भी सजीव तेउकाय रूप सिद्ध होती है।

इस प्रकार आगम और विज्ञान का समन्वय करने से इलेक्ट्रीसीटी और बल्बप्रकाश सजीव ही सिद्ध होते हैं।

'अन्नत्थ' सूत्र के विवेचन के प्रसंग पर **ललितविस्तरा** ग्रन्थ में भी **श्रीहरिभद्रसूरिजी** महाराज ने बताया है कि **'यदा ज्योतिः स्पृशति तदा प्रवरणाय कल्पग्रहणं कुर्वतः अपि**

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

न कायोत्सर्गभंगः' अर्थात् कायोत्सर्ग में दीये का प्रकाश जब शरीर पर पड़ता है तब ओढ़ने के लिए कम्बल को लेने पर कायोत्सर्ग का भंग नहीं होता है।

न्यायविशारद न्यायाचार्य महोपाध्याय **श्री यशोविजयजी** गणिवर द्वारा संशोधित और प्रमाणित की हुई **धर्मसंग्रहवृत्ति** में 'अन्नत्थ' सूत्र के विवेचन के प्रसंग पर महोपाध्याय **श्री मानविजयजी** गणिवर्यश्री ने भी **'अग्नेः विद्युतो वा ज्योतिषः स्पर्शने प्रावरणं गृह्णतोऽपि न भङ्गः'** (भाग 2/गा. 61 वृत्ति/पृष्ठ 61) ऐसा कहने के द्वारा बताया है कि 'अग्नि का प्रकाश (रोशनी (उजाला)) अथवा बिजली का प्रकाश शरीर पर पड़े तो शरीर को ढकने के लिए कम्बल को ग्रहण करने पर भी कायोत्सर्ग का भंग नहीं होता।

यदि तेउकाय का प्रकाश जब उत्पत्तिस्थान से दूर फैलता है तब सचित्त (= सजीव) नहीं होता तो अपने शरीर पर दीये करने पर भी प्रकाश पड़ने की अवस्था में चालु कायोत्सर्ग में कम्बल पहनने की आवश्यकता ही नहीं रहती। इसलिए दीये का प्रकाश, उजेही, लाईट प्रकाश, बल्ब प्रकाश वगैरह स्वयं के उत्पत्तिस्थान में और उत्पत्तिस्थान से दूर जहां वे फैलते हैं वहां दोनों स्थानों में सचित्त = सजीव है ऐसा ही सिद्ध होता है।

शंका आवश्यकनिर्युक्तिवृत्ति, ललितविस्तरा और **धर्मसंग्रहवृत्ति** ग्रन्थ में चालू कायोत्सर्ग में रोशनी (उजाला) (प्रकाश) आने के समय कल्प प्रावरण की (कम्बल पहनने की) जो बात की है वह तेउकाय के जीवों की रक्षा करने के लिए है, उसका कोई अन्य प्रयोजन नहीं है ऐसा मानने का प्रमाण क्या है? कोई दूसरा प्रयोजन वहां क्यों नहीं माना जा सकता?

समाधान पूर्व में (पृ. 53) **तत्त्वार्थसूत्रवृत्ति** के आधार पर हम देख चुके हैं कि तेउकाय (दीये की ज्योत) और उसका प्रकाश दोनों एक ही हैं। अर्थात् तेउकाय (दीये की ज्योत) जैसे सजीव है उसी प्रकार उसका प्रकाश = रोशनी (उजाला) भी सजीव ही है। तथा पूर्वधर महर्षि **श्री जिनभद्रगणी क्षमाश्रमण** ने **विशेषावश्यकभाष्य** में **'रयाइरक्खानिमित्त'** (वि.आ.भा. 2576) इस प्रकार से कम्बल रखने का जो प्रयोजन बताया है उसकी व्याख्या में **श्री हेमचन्द्रसूरिजी महाराज** ने **'रजोऽपि सचित्तं इषदाताम्रनभसः पतति प्रतीतमेव। आदिशब्दात् प्रदीपतेजःप्रभृतीनां परिग्रहः। एतेषां च महावातादि-गतानां रक्षानिमित्तं कल्पाः सञ्जायन्ते'** (वि.आ.भा. मलधारवृत्ति) ऐसा कहकर कम्बल रखने का एक प्रयोजन दीये की रोशनी (उजाला) के जीव आदि की रक्षा करना बताया है।

महातार्किक न्यायाचार्य महोपाध्याय **श्री यशोविजयजी** गणिवर ने भी **स्याद्वाद कल्पलता** (शास्त्रवार्तासमुच्चयव्याख्या) के नवमें स्तबक में 'शुद्धाहारादिव शुद्धोपकरणादनेकगुणसम्भवस्तु निरपाय एव।...सचित्त-पृथिवी-धूमिका-वृष्टि-अवश्याय-

रजः-**प्रदीपतेजःप्रभृतीनां रक्षा अपि तैः (वस्त्रैः) कृता भवति।'** (स्या.क.लता स्तबक 9/गाथा 4/पृष्ठ 46) ऐसा कहकर कम्बल पहनने का एक प्रयोजन दीये की रोशनी (उजाला) के जीवों की रक्षा करना बताया है।

अध्यात्ममतपरीक्षावृत्ति में भी महोपाध्याय **श्रीयशोविजयजी महाराज** ने **'सचितपृथिवी-धूमिका-वृष्ट्यवश्याय रजः प्रदीपतेजःप्रभृतीनां रक्षापि तैः (= वस्त्रैः) कृता भवति'** (गाथा 13 वृत्ति) ऐसा कहकर दीये वगैरह की रोशनी (उजाला) के जीवों की रक्षा कम्बल वगैरह के द्वारा होती है ऐसा बताया है। इस तरह चालू कायोत्सर्ग में दीये की रोशनी (उजाला) आने पर कम्बल ओढ़ने से जितनी हो सके उतनी तेउकाय के जीवों की यतना-रक्षा हो वही मुख्य प्रयोजन दिखाई पड़ता है। इससे दीये की रोशनी (उजाला) सजीव ही सिद्ध होती है।

महानिशीथसूत्र के चतुर्थ अध्ययन में पापभीरू **सुमति** और **नागिल** नाम के दो भाइयों की कहानी आती है। वहां शिथिलाचारी साधु को देखकर ज्ञानी सुमति उनके शिथिलाचार का वर्णन करते हुए कहता है कि **'एसो अज्ज रयणीए अणोवउत्तो पसुत्तो विज्जुकाए फुसिओ। ण एतेणं कप्पगहणं कयं'** (पृष्ठ 101) अर्थात् यह साधु रात को बिना उपयोग के सोया हुआ था। इससे तेउकाय का (विद्युत्काय का) संघट्टा (स्पर्श) हुआ। फिर भी उसने ओढ़ने के लिए कम्बल नहीं ली।' यहां 'तेउकाय का संघट्टा' शब्द का 'उस साधु के शरीर पर किसी ने जलता हुआ कोयला रखा' ऐसा अर्थ नहीं कर सकते। क्योंकि ऐसा हो तो वह साधु उठ ही जाता। परन्तु 'तेउकाय का संघट्टा' का अर्थ यह है कि शरीर के ऊपर दीये का प्रकाश (रोशनी, उजाला) पड़ना अथवा बिजली की चमक का शरीर ऊपर पड़ना। आकाश में बिजली चमक रही हो, खिड़की-दरवाजे खुले हों, शरीर पर उसका प्रकाश पड़ता हो, फिर भी साधु कम्बल न ओढ़ें तो वैसी लापरवाही शिथिलाचार के रूप में मानी जाती है। इसका कारण बहुत स्पष्ट है कि उससे तेउकाय जीवों को पीड़ा होती है। कम्बल नहीं ओढ़ने से तेउकाय के जीवों की यतना-रक्षा नहीं करनी यह एक प्रकार का शिथिलाचार है ऐसा महानिशीथसूत्र का तात्पर्य है। इससे भी सिद्ध होता है कि कम्बल तेउकाय के जीवों की रक्षा का साधन है, उपकरण है।

इसी प्रकार **निशीथसूत्र** नाम के छेदग्रन्थ में भी विद्युत्-प्रकाश के सजीव होने के अनेक प्रमाण देखने को मिलते हैं। **निशीथसूत्रपीठिका** की **चूर्णि** में बताया है कि **'अग्गि त्ति एताणि पेहादीणि करेंतस्स अग्गी विराहज्जति'** (नि.भाष्य. 209 चूर्णि) अर्थात् जिस मकान में, उपाश्रय में दीये का प्रकाश फैला हुआ हो, लाईट आती हो, वहां यदि वस्त्रादि का पडिलेहण वगैरह करने में आए तो अग्निकाय जीव की विराधना होती है। इसलिए खुली लाईट-दीया वगैरह चालू हो वहां साधु-साध्वीजी

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

भगवंत पडिलेहण नहीं कर सकते हैं। यदि रोशनी (उजाला) में वस्त्रादि का पडिलेहण करने में आए तो तेउकाय का संघट्टा (= स्पर्श) होने से विशेष प्रकार का प्रायश्चित्त **निशीथचूर्णि** में **'सजोतियाए उपकरणं पडिलेहेति मासलहुयं'** (गा. 209) इन शब्दों द्वारा बताया गया है।

उसी प्रकार मकान में, उपाश्रय में अपने ऊपर दीये का प्रकाश आता है, लाईट आती हो तो उपाश्रय के बाहर निकलते समय या अन्दर प्रवेश करते समय भी अग्निकाय की विराधना न हो, इसके लिए साधु भगवन्त उपाश्रय में प्रमार्जन न करें, मुंह से **'आवस्सहिनिसीहि'** वगैरह न बोलें। उपाश्रय में अपने पर लाईट आती हो तब साधु भगवंत तेउकाय के जीवों की रक्षा हेतु वंदन भी न करें ऐसा **निशीथपीठिका** की **चूर्णि** में बताया गया है। ये रहे वे शब्द

'णिग्गच्छंता पविसंता वा वसहिं न पमज्जंति त्ति वुत्तं होइ।
मूगा संति वायाए अणुच्चरणं, वंदणगहीणं-वंदनं न ददातीत्यर्थः'

(निशीथभाष्य 223 चूर्णि)

आचारांगसूत्र की प्रथम चूलिका में **'अगणिकाए वा उज्जालियपुव्वे भवइ... अयमाउसे! महासावज्जकिरिया यावि भवइ'** (अध्याय 2/उद्देश 2) ऐसा कहकर अग्नि जली हो वैसी जगह (= उपाश्रयादि) की पहचान **'महा सावद्यक्रिया'** नाम से कराई है तथा **बृहत्कल्पसूत्र** में **'उवस्सयस्स अंतो वगडाए सव्वाराईए जोई झियाएज्जा, नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा अहालंदमवि वत्थए'** (सूत्र 56) ऐसा कहकर सारी रात दीया जलता हो वैसे उपाश्रय में क्षणभर भी रहने की साधु-साध्वियों को मना की है। तथा रोशनी (उजाला) वाले उपाश्रय में (मकान में) साधु-साध्वीजी भगवंत रहें तो उनको प्रायश्चित्त आता है, ऐसा **बृहत्कल्पभाष्य** की 3433वीं गाथा में स्पष्ट रूप से बताया है। इससे सिद्ध होता है कि तेउकाय के जीवों की सम्पूर्ण रक्षा तो उस स्थान का त्याग करने पर ही हो सकती है। फिर भी अन्य स्थान न मिल सकता हो तो रोशनी (उजाला) वाले स्थान में गरम कम्बल ओढ़कर बैठे-बैठे प्रतिक्रमण करने की बात की है। इससे सिद्ध होता है कि कम्बल से तेउकाय जीवों की यथाशक्य रक्षा होती ही है।

यदि मकान में लाईट चालू हो और अपने शरीर पर प्रकाश-लाईट पड़े ऐसी अवस्था में प्रतिक्रमण करना पड़े तो तेउकाय के जीव की रक्षा हो इस आशय से वासकल्प (स्थूल गरम कम्बल) ओढ़कर साधु-भगवंत बैठे-बैठे प्रतिक्रमण करें। तथा प्रतिक्रमण के सूत्र भी अत्यंत मंद स्वर से बोलें ऐसा **निशीथसूत्रपीठिका** की **चूर्णि** में बताया है। ये रहे वे शबद

''आलोयणा तं जयणाए करेंति, वासकप्पपाउया णिविट्ठा चेव ठिता भणंति, 'संदिसह' त्ति' (नि. भाष्य गाथा 224 चूर्णि)

तथा प्रतिक्रमण के बाद रात्रि-स्वाध्याय भी जहां लाईट-रोशनी (उजाला) नहीं आती हो वहां जाकर साधु भगवंत करें। यदि उपाश्रय में लाईट, दीया, लालटेन, इत्यादि चालू हो, बाहर योग्य स्थान न हो तो मकान में उपाश्रय के अन्दर परदा डालकर अपने ऊपर लाईट न आए इस तरह साधु भगवंत स्वाध्याय का घोष करें। उपाश्रय के बाहर स्वाध्याय करने योग्य स्थान न हो और उपाश्रय में रात्रि को लाईट चालू हो तथा परदा डालने की भी स्थिति न हो तो उस स्थिति में साधु भगवंत जोर से बोलकर स्वाध्याय करने के बदले वासकल्प (स्थूल गरम कम्बल) पहनकर, बैठकर मन में चिन्तन करें ऐसी बात **निशीथसूत्र** की **चूर्णि** में बताई गई है। शब्द इस प्रकार है कि

'सुत्तत्थपोरिसीओ सति ठाणे बाहिं करेंति। असति बहिट्ठागस्स अंतो चिलिमिलिं काऊणं झरंति। वा विकल्पे। चिलिमिलिमादीणं असति अणुपेहादी करेतीत्यर्थः' (निशीथभाष्य 224 चूर्णि)

रोशनी (उजाला) वाले उपाश्रय में प्रतिक्रमण के बाद सूत्रपोरसी में भंग न हो उसके लिए यदि साधु-साध्वीजी भगवंत बोलकर स्वाध्याय करते हैं तो रोशनी (उजाला) की विराधना होती है ऐसा **निशीथचूर्णि** में स्पष्ट रूप से बताया है। उनके शब्दों का अवलोकन कीजिए

'अभंगे पुण जोती विराहिज्जति' (गा. 209)

निशीथसूत्रचूर्णि आदि के उपर्युक्त उल्लेखों के द्वारा सिद्ध होता है कि बल्ब या दीये में से अपने शरीर के ऊपर यदि सीधा प्रकाश (= Photon) आता हो तो वह भी बिजली की तरह, दीये की तरह सचित्त (= सजीव) ही है। उसकी विराधना न हो इसके लिए उपर्युक्त विशेष प्रकार की सावधानी-जयणा-विधि शास्त्रकार भगवंतों ने बताई है।

विज्ञान के सिद्धान्त मुताबिक फोटोन शक्ति के पुडे के रूप में (Packet of energy) है। फोटोन (तेजाणु) द्वारा प्रकाश बनता है। फोटोन स्वयं प्रकाश के रूप में परिणत होता है। तथा इलेक्ट्रोन (विजाणु) और फोटोन (तेजाणु) के बीच में प्रगाढ सम्बन्ध है। तेजाणु (Photon) के सम्पर्क में आने से वीजाणु (Eelctron) अत्यन्त तेजी से आवेशित (Charged) हो जाते हैं, आवेशित विजाणुओं का गतिशील प्रवाह (Flow of charged electrons) भी योग्य वातावरण मिलते ही प्रकाश-उष्मा वगैरह के स्वरूप में तेजाणु (Photon) का उत्सर्जन करता है। तथा प्रकाश से चलने वाले साधनों (Photo-electric instruments) के द्वारा वे प्रकाश स्वरूप तेजाणु (Photon) फिर से बिजली (Electricity) के स्वरूप में रूपान्तरित हो सकते हैं। इलेक्ट्रोन का प्रवाह (Eelectricity) तो बहुत स्थूल है। फोटोन तो उससे भी सूक्ष्म है। विज्ञान

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

की दृष्टि से देखें तो मशाल में से निकलता/बाहर फैलाता प्रकाश फोटोनमय है। तथा **निशीथचूर्णि** आदि शास्त्रों की दृष्टि से ऐसा प्रकाश निर्विवाद रूप से सजीव ही है। यदि लघुतम मात्रा स्वरूप प्रकाश (= Photon) सजीव है तो फिर उसी की बृहत् मात्रा स्वरूप वीजाणु (= electron) से बनी इलेक्ट्रीसीटी सजीव क्यों नहीं हो सकती? उसकी निर्जीवता का फैसला देने वाले हम कौन? क्योंकि प्रकाश-उष्णता-दाह इत्यादि तो अग्निकाय के लक्षण हैं। तथा स्पार्कप्लग/खुले हाइटेंशन वायर आदि में से पसार हो रही इलेक्ट्रीसीटी में प्रकाश-उष्णता आदि लक्षण स्पष्ट रूप से दिखाई देते ही हैं। इसलिए उपर्युक्त अनेक दृष्टांत/तर्कों के द्वारा आगम और विज्ञान का समन्वय करने में आए तो इलेक्ट्रीसीटी भी बादर तेउकाय जीव के स्वरूप में ही निश्चित होती है।

आगम शास्त्रों को पढ़ने के लिए जैन साधु भगवंतों को कालग्रहण की एक महत्त्वपूर्ण आवश्यक क्रिया करनी पड़ती है। कालग्रहण की विधि का निरूपण आवश्यक निर्युक्ति-चूर्णि, ओघनिर्युक्ति इत्यादि ग्रन्थों में विस्तार से आता है। **आवश्यकनिर्युक्ति** ग्रन्थ में 14 पूर्वधर **श्रीभद्रबाहुस्वामीजी** महाराज ने लिखा है कि **''जइ पुण गच्छंताणं छीयं जोइं ततो नियत्तंति''** (आ.नि.गा. 1372) अर्थात् कालग्रहण के लिए जा रहे साधुओं को छींक सुनाई दें या उनके ऊपर दीये का प्रकाश आए अथवा लाईट पड़े या बिजली का प्रकाश आए तो कालग्रहण करने के बजाय वापिस फिरें। चन्द्रमा का प्रकाश या मणि का उद्योत शरीर के सम्पर्क में आए तो शास्त्रविहित कालग्रहण की क्रिया बंध करने में नहीं आती। किन्तु बिजली का प्रकाश या दीये की रोशनी (उजाला) इत्यादि शरीर के ऊपर पड़ने पर तो कालग्रहण की क्रिया बंध ही करनी पड़ती है। वह कालग्रहण रदबातल होता है। शरीर के ऊपर दीये का प्रकाश, लाईट इत्यादि पड़ती है तो कालग्रहण की पवित्र क्रिया नहीं करने का कारण बहुत स्पष्ट है कि उससे अग्निकाय के जीवों की विराधना होती है। अग्निकाय के जीवों की विराधना का होना एक प्रकार का दोष है। अतः साधु भगवंत तब कालग्रहण करने के बजाय वापिस फिर जाते हैं।

इसी प्रकार से **ओघनिर्युक्ति** में भी कालग्रहण की विधि बताते हुए लिखा है कि **'जइ पुण वच्चंताणं छीयं जोइं च तो नियत्तंति'** (गा. 643) अर्थात् कालग्रहण के लिए जाते समय यदि बीच में छींक सुनाई दे या अग्निप्रकाश हो, शरीर ऊपर लाईट पड़े तो साधु भगवंत वापिस फिर जाते हैं। उसकी व्याख्या में **श्रीद्रोणाचार्यजी** स्पष्ट रूप से लिखते हैं कि **'यदि पुनः व्रजतां क्षुतं ज्योतिः वा = अग्निः उद्योतो वा भवति ततो निवर्तन्ते।'** कालग्रहण के लिए जा रहे साधु भगवन्त के ऊपर लाईट-प्रकाश-रोशनी (उजाला) पड़ने से, विराधना होने से ही कालग्रहण की पवित्र क्रिया स्थगित करने में आती है। श्री द्रोणाचार्यजी ने 'उद्योत' शब्द से प्रस्तुत में रोशनी (उजाला) का ग्रहण करके उसकी सजीवता के बारे में सबका ध्यान खिंचा है।

औपपातिकसूत्र में श्रमण के लिए **'विज्जुअंतरिया'** (सूत्र 41/पृष्ठ 104) ऐसा शब्द विशेषण के रूप में बताया है। उसकी **व्याख्या** में नवांगी टीकाकार **श्री अभयदेवसूरिजी** ने **'विद्युति सत्यां अन्तरं मिक्षाग्रहणस्य येषामस्ति ते विद्युतदन्तरिकाः। विद्युत्सम्पाते भिक्षां नाटन्तीति भावार्थः'** ऐसा कहकर 'बिजली चमकती हो तब श्रमण दिन में भी गोचरी नहीं जाते हैं ऐसा बताया है। इससे भी सिद्ध होता है कि बिजली का प्रकाश हमारे शरीर ऊपर पड़े तो तेउकाय जीव की विराधना होती है। इसका अर्थ यह हुआ कि बिजली, दीया, लाईट बल्ब इत्यादि के मूलभूत उत्पत्तिस्थान में जो प्रकाश होता है वह तो सजीव होता ही है। किन्तु बिजली, बल्ब, दीये इत्यादि में से जो प्रकाश दूर तक फैलता है वह भी सजीव ही होता है। तात्पर्य यह है कि जैसे आकाश में रहे हुए बादलों में से पानी की बरसात होती है वैसे ही दीये, बल्ब, स्ट्रीट लाईट इत्यादि में से अग्नि की बरसात चारों तरफ होती है और वह सजीव ही होती है, निर्जीव नहीं।'

महत्त्व की बात तो यह है कि **जीवविचार प्रकरण** में अग्निकाय के अनेक भेद बताकर **'नायव्वा निउणबुद्धिए'** ऐसा कहकर कुशाग्र बुद्धि से अग्निकाय के जीवों को पहचानने की **श्रीशांतिसूरिजी** महाराज ने सिफारिश की है। पृथ्वीकाय इत्यादि को समझने के लिए सूक्ष्म बुद्धि की आवश्यकता नहीं बताई। किन्तु अग्निकाय को जानने में निपुण बुद्धि की आवश्यकता बताई। विचार करने से ख्याल में आता है कि बिजली तो अग्निकाय जीवस्वरूप है ही परन्तु अपने शरीर के ऊपर उसका जो प्रकाश आता है वह भी अग्निकाय जीवरूप ही है ऐसा स्वीकार करने में बहुत सूक्ष्म बुद्धि की जरूरत पड़े ऐसा ही है।

साइन्स की परिभाषा के अनुसार विचार किया जाए तो वायर में से पसार हो रही इलेक्ट्रीसीटी करोड़ों इलेक्ट्रोन के फोर्सफुल प्रवाह स्वरूप है। तथा बल्ब के टंगस्टन स्वरूप, फिलामेंट में से उत्सर्जित होता हुआ जो प्रकाश देखने को मिलता है वह फोटोन स्वरूप है। इलेक्ट्रोन से भी फोटोन तो बहुत ही सूक्ष्म होता है। विज्ञान के अनुसार ऐसे सूक्ष्म फोटोन, जो प्रकाशस्वरूप हैं, वे भी जिनागम के अनुसार अग्निकाय जीव हैं ऐसा अभी आवश्यकनिर्युक्तिवृत्ति, ललितविस्तरा, निशीथचूर्णि, ओघनिर्युक्ति आदि के वचनों के द्वारा हम जान चुके हैं। इस तरह साइन्स जिसको इलेक्ट्रोन से भी अति सूक्ष्म फोटोन स्वरूप मानता है उस प्रकाश को भी जीव स्वरूप पहचानने के लिए सूक्ष्म बुद्धि की अत्यंत आवश्यकता हो यह स्वाभाविक ही है।

उपर्युक्त आगम आदि प्रमाण के आधार पर विद्युत् की तरह प्रकाश की सजीवता सिद्ध होती है। इसीलिए ही **श्री हरिभद्रसूरिजी** महाराजा जैसे समर्थ विद्वान आचार्य भगवंत भी **पंचवस्तुक** नाम के ग्रन्थ में बताते हैं कि

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

'जम्हा न धम्ममग्गे मोत्तूणं आगमं इह पमाणं।
विज्जइ छउमत्थाणं तम्हा एत्थेव जईयव्वं ॥' (गाथा 1707)

अर्थात् अपने जैसे असर्वज्ञ जीवों के लिए तो धर्ममार्ग का निर्णय करने में जैनागम को छोड़कर दूसरा कोई प्रमाण नहीं है। इसलिए आगम का अभ्यास करने में, आगम के रहस्य को समझपूर्वक स्वीकारने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहना चाहिए।

यद्यपि गणधर भगवंतों द्वारा रची हुई द्वादशांगी और पूर्वधरों द्वारा रचित अन्य आगम बहुत ही गहन, गूढ और रहस्यमय हैं। इसी कारण से उत्तरकालीन तीव्र मेधावी परार्थव्यसनी पूर्वाचार्यों ने भविष्यकाल के जीवों के कल्याण के लिए गहन आगमों के पदार्थों और परमार्थों को निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि, टीका, व्याख्या, टिप्पण, पंजिका इत्यादि के माध्यम से समझाने का भगीरथ पुरुषार्थ किया है। पंचांगी आगम और आगम आधारित साहित्य के अवलंबन से तारक तीर्थंकर भगवंतों और गणधर भगवंतों के आशय तक पहुंचने में निश्चिन्तता, निर्भयता और सुगमता रहती है। इसीलिए वे भी मूल आगम तुलय प्रमाण हैं।

तेउकाय के विषय में **तत्त्वार्थसूत्रवृत्ति** में समर्थवादी **श्रीसिद्धसेनगणी** ने वैसी ही कोई सुन्दर बात पूर्वपक्ष-उत्तरपक्ष रूप में प्रस्तुत की है।

शिष्य ऐसा तर्क करता है कि ''अनराधार वर्षा हो रही हो, रात का समय हो, घर के झरोखे में दीया रखा हुआ हो, उस अवस्था में वह दीया घर के बाहर प्रकाश फैलाता है। यदि रोशनी (उजाला) स्वरूप प्रकाश और तेउकाय जीव एक ही हों तो अग्निकाय और पानी का विरोध होने से बाहर बरसती अनराधार बारिश से तेउकाय के जीव खत्म हो जाते हैं। जो ऐसा हो तो बाहर प्रकाश (Photon) दिखना नहीं चाहिए। क्योंकि **आचारांगसूत्र** के प्रथम अध्ययन की **निर्युक्ति** में **श्री भद्रबाहुस्वामीजी** महाराज ने

'पुढवी आउक्काए उल्ला य वणस्सई तसा पाणा।
बायर तेउक्काए एवं तु समासओ सत्थं ॥' (गा. 123)

इस प्रकार से जो बताया है, उसके अनुसार तो अनराधार वर्षा में जलकाय के जीव अग्निकाय के जीवों का परकाय शस्त्र बन जाने से अग्निकाय के जीव मर ही गए होंगे। अग्निकाय जीव ही यदि हाजिर न हों तो प्रकाश कहां से मिलेगा? ऐसा मानें तो अनराधार वर्षा होती हो उस समय खुले झरोखे के बाहर के भाग में रहे हुए दीये का प्रकाश बाहर नहीं पड़ना चाहिए। सामने के मकान या मार्ग के ऊपर उसका थोड़ा भी प्रकाश नहीं पड़ना चाहिए न!''

यह दलील बहुत तर्कपूर्ण है। किन्तु समर्थ युगपुरुष तार्किक-शिरोमणि **श्री सिद्धसेनगणीजी** ने इस दलील का बहुत ही सचोट, युक्तिसंगत और आगमानुसार जवाब दिया है। वे कहते हैं कि ''झरोखे के बाहर के भाग में रखे हुए दीपक के पुद्गल भारी बरसात में बाहर निकलते हैं तब वर्षा के सम्पर्क में आने के कारण स्वयं की तथाविध चमक, उग्रता, आंखों को चकाचौंध करने का सामर्थ्य इत्यादि जरूर गुमा देते हैं। किन्तु स्वयं के मूलभूत अग्निकाय स्वभाव-मौलिकस्वरूप को तो बाहर के खुले वातावरण में फैलाते हुए भी वे गुमाते नहीं हैं। अग्निकाय स्वरूप का अस्तित्व गुमाए बिना ही वे बरसात में बाहर फैल जाते हैं। तथा खुले बरसात में फैलाते समय विशिष्ट चमक, उग्रता इत्यादि अपने गुणधर्मों को वे जभी गुमा देते हैं तभी उस दीये की ज्योत में से दूसरे अग्निकाय के पुद्गल खुले आकाश में फैल जाते हैं। अतिसूक्ष्म ऐसी अग्नि तो स्थूल पानी की धारा में से तेजी से निकल जाती है। वे तेजोद्रव्य (Photon) केवल जलवृष्टि से समाप्त नहीं होते। क्योंकि इनका परिणाम विशिष्ट प्रकार का होता है। अर्थात् पानी से समाप्त होने का परिणाम उस अग्नि में नहीं है।

प्रत्येक प्रकार का पानी सभी प्रकार के अग्निकाय को अवश्य बुझा दें ऐसा कोई नियम नहीं है। उदाहरण के तौर पर समुद्र में जब आग लगती है तब उस दावानल को दरिया का पानी नहीं बुझा सकता। इसके विपरीत समुद्र का पानी ही आग को विकराल स्वरूप धारण करने में सहायता करता है। इसलिए अग्निकाय के लिए जलकाय परकायशास्त्र स्वरूप होने के बावजूद भी दावानल का नाश समुद्र के पानी के द्वारा नहीं हो सकता। इसी प्रकार मूसलोधार बरसात में रात्रि के समय दीये का जो प्रकाश बाहर फैलता है उसका नाश करने का सामर्थ्य बरसात के पानी में नहीं है। अग्निकाय के लिए जलकाय परकायशस्त्र बनता है यह बात सामान्य रूप से समझने की है। अग्निकाय की सात लाख योनि में से उत्पन्न हुए तमाम अग्निकाय जीवों के लिए सभी प्रकार के पानी शस्त्र बनते ही हैं ऐसे कोई एकान्त नियम की प्ररूपणा वीतराग सर्वज्ञ भगवंतों ने नहीं की हैं।''

कितना अद्भुत-सचोट-अकाट्य होने के उपरान्त शास्त्रानुसारी और दृष्टान्तसंगत जवाब **श्री सिद्धसेनगणीवरजी** ने दिया है! ये रहे **तत्त्वार्थवृत्ति** में **श्री सिद्धसेन गणीवरजी** के शब्द **''स्यादारेका निरन्तरधारं वर्षति बलाहके प्रदीपः अलिन्दकादिव्यवस्थापितः प्रद्योतत एव बहिः। यदि च विरोधः स्यात्, न बहिः प्रकाशो विभाव्येत, जलपातेन अपनीतत्वादिति। अत्रोच्यते प्रादीपाः पुद्गलाः ताथात्म्यमपरित्यजन्तो निःसृताः तथाविधतामुदबिन्दुसम्पर्कात् विजहति तत्समकालं चापरे प्रदीपशिखाया विकीर्णाः कृशानुपुद्गलाः तमाकाशमश्नुवते। न च ते जलपातेन विध्यापयितुं शक्याः परिणामवैचित्र्याद्, वडवानलावयवा इव''** (तत्त्वार्थ 5/24)

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

वास्तव में **श्री सिद्धसेनगणीवर** का जवाब बहुत ही सचोट है। अवकाशीय सजीव बिजली का नाश भी अनराधार वर्षा से नहीं होता। बिना इंधन की अग्नि का नाश पानी द्वारा होना संभव नहीं है। दीये में रही अग्नि की ज्योत इंधनयुक्त अग्निरूप होने के कारण पानी द्वारा उसका नाश हो सकता है। यह बात समझ सकें ऐसी है। परन्तु दीये का दूर तक फैलता हुआ प्रकाश = रोशनी (उजाला) तो इंधनरहित अग्निकाय जीव स्वरूप होने से आकाशीय बिजली की भांति उसका नाश पानी के द्वारा नहीं हो सकता है यह बात युक्तिसंगत भी लगती है।

वर्तमान समय में भी कुछ प्रकार के रसायनों में जब आग लगती है तब उस पर पानी डालने से वह आग ज्यादा विकराल स्वरूप धारण कर लेती है। उसको बुझाने के लिए विशेष प्रकार की वायु का/रसायनों का प्रयोग करने में आता है। पेट्रोलपम्प अथवा केमीकल की फैक्ट्री इत्यादि में पेट्रोल, आल्कोहोल, मिथेनोल, इथेनोल, स्पीरिट इत्यादि में भयानक आग लगती है तब यदि उस पर पानी का छींटकाव किया जाए तो वह आग पानी द्वारा ही ज्यादा विकराल और भयानक स्वरूप धारण कर लेती है। यह बात तो फायर ब्रिगेड के कार्यरत व्यक्तियों द्वारा भी जानी जा सकती है। इसलिए 'पानी सभी प्रकार के बादर तेउकाय का नाश कर सकता ही है' ऐसा नियम सिद्ध नहीं होता।

विज्ञान के मतानुसार प्रकाश तो फोटोन (तेजाणु) स्वरूप है। फोटोन का नाश पानी से नहीं हो सकता। इसलिए दीये का प्रकाश चाहे बाहर फैलता हो फिर भी अनराधार बरसात द्वारा उसका नाश नहीं हो सकता ऐसी **सिद्धसेनगणीवरश्री** की बात विज्ञान के अनुसार भी संगत ही है।

अनेक इलेक्ट्रोन-प्रोटोन-न्युट्रोन द्वारा निर्मित अणु को तोड़ने के लिए आज वैज्ञानिक सक्षम बन सके हैं। लेकिन इलेक्ट्रोन तो अणु का घटक है। अणु की तुलना में वह बहुत छोटा है। इलेक्ट्रोन (बीजाणु) से भी फोटोन (तेजाणु) तो अत्यंत सूक्ष्म द्रव्य कण है। इसलिए पानी द्वारा उसका नाश नहीं हो सकता।''

2. प्रकाश अग्निकाय नहीं

'प्रकाश सजीव है' इस अभिमत से असहमति रखने वाले विचार मुनि नंदिघोषविजयजी ने अपनी पुस्तक 'जैन दर्शन : वैज्ञानिक दृष्टि से' में तीसरे अध्याय में व्यक्त किए हैं[2]।

यहां हम उस प्रकरण को अविकल रूप से प्रस्तुत कर रहे हैं

''भगवान महावीर को हुए आज लगभग ढाई हजार वर्ष बीत चुके हैं, तथापि उनका शासन आज भी अविच्छिन्न रूप में अजेय है। उन्होंने केवलज्ञान से भौतिकजगत

का जो स्वरूप प्रत्यक्ष किया, उसे अपने धर्मोपदेशों में भलीभांति समझाया और आज भी उनके बताए हुए सिद्धान्त विज्ञान की कसौटी पर खरे उतर रहे हैं।

जीव-विज्ञान के क्षेत्र में, जैन धर्म-ग्रन्थों या जैन दर्शन का जो अनुपम योगदान है उसे स्वीकार किए बगैर हम चल नहीं सकते। जैन दार्शनिक परम्परा के अनुसार, प्राणियों और वनस्पति के अतिरिक्त पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु में भी जीव या आत्मा है। उन सबमें, मात्र तर्क के आधार पर नहीं, वरन् वैज्ञानिक पद्धति के अनुसार प्रायोगिक स्तर पर जीवत्व की सिद्धि करना अत्यन्त आवश्यक है। युग की इस मांग को तत्काल पूरी करने की जिम्मेदारी हम सबकी है।

जैन समाज में, खास तौर पर साधु समाज में, 'प्रकाश' के बारे में पिछली कुछेक सदियों में कतिपय भ्रान्तियां प्रचलित हुई हैं। उन मान्यताओं को शास्त्र का प्रबल समर्थन नहीं है। आमतौर पर जैन उपाश्रयों और स्थानकों में दीपक (लैम्प) का उपयोग नहीं होता है; क्योंकि जैन साधु-समाज के लिए अहिंसा का पालन अत्यन्त आवश्यक है और जैन दार्शनिक परम्परा के अनुसार अग्नि में भी आत्मा होती है।

आज श्वेताम्बर मूर्तिपूजक जैन साधु-समाज में ऐसा आचार है कि रात्रि में यदि दीपक (लैम्प) का प्रकाश हो तो, उस प्रकाश में से पसार होने के समय साधु-साध्वी अपने शरीर को गरम वस्त्र (ऊनी) या कम्बल से लपेट लेते हैं। इस परम्परा, प्रथा या आचार का कारण पूछने पर बताया जाता है कि प्रकाश तेजोकाय है और अपने शरीर पर पड़ने के कारण उसकी मृत्यु हो जाती है। अतः दीपक, चाहे वह मोमबत्ती का हो या कैरोसिन का या तेल का, घी का या बिजली का हो उसका प्रकाश अपने शरीर पर न पड़े, इसलिए गरम कम्बल का उपयोग किया जाता है। सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र, तारा इत्यादि के प्रकाश को निर्जीव माना गया है।

दूसरी ओर आज विज्ञान में बहुत कुछ खोजें हुई हैं जिनके आधार पर कुछ लोग बिजली के लट्टू, लालटेन, मोमबत्ती इत्यादि के प्रकाश को निर्जीव मानते हैं, तो फिर वास्तविक स्थिति क्या है, इस पर जैन धर्म-शास्त्रों और आगमों के आधार पर विचार करना आवश्यक है।

जैन धर्म-ग्रन्थों के अनुसार द्रव्य के भिन्न-भिन्न वर्गीकरणों में से एक वर्गीकरण इस प्रकार है

पुद्गल द्रव्य के छह भेद हैं (1) सूक्ष्म सूक्ष्म, (2) सूक्ष्म, (3) सूक्ष्म बादर, (4) बादर सूक्ष्म, (5) बादर, (6) बादर बादर। याकिनी महत्तरासुनू आचार्य **श्री हरिभद्रसूरीश्वरजी** ने, **'दशवैकालिक'** सूत्र की वृत्ति में जीवाभिगम सूत्र के आधार पर बताया है कि पुद्गल द्रव्य का प्रत्येक परमाणु जिसका स्वतन्त्र अस्तित्व है उसका सूक्ष्म सूक्ष्म वर्ग में समावेश होता है, दो-दो परमाणुओं के पुद्गल स्कन्धों से लेकर

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

सूक्ष्म परिणाम-युक्त अनन्त परमाणुओं के पुद्गल स्कन्धों का समावेश सूक्ष्म नामक द्वितीय वर्ग में होता है, सूक्ष्म बादर श्रेणी में गन्ध (सुगन्ध और दुर्गन्ध) के परमाणु पुद्गल स्कन्धों को समाविष्ट किए गए हैं।

वायुकाय के जीवों का शरीर बादर सूक्ष्म है। जल के जीवों के शरीर को बादर श्रेणी में रखा गया है हालांकि अग्निकाय, वनस्पतिकाय, पृथ्वीकाय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरीन्द्रिय आदि अन्य सब त्रस जीवों के शरीर को **'बादर बादर'** माना गया है। **'तत्त्वार्थसूत्र'** की वृत्ति में **श्रीसिद्धसेन गणि** ने वायुकाय को तेजोकाय (अग्नि) से अधिक सूक्ष्म बताया है। कारण बताते हुए वे कहते हैं कि तेजोकाय प्रत्यक्ष हो सकते हैं, वायुकाय प्रत्यक्ष नहीं हो सकते हैं।

दूसरी ओर आधुनिक विज्ञान स्पष्ट रूप में बताता है कि प्रकाश के कण (पार्टिकल्स), जिन्हें 'फोटोन' कहा जाता है, इलेक्ट्रोन की तरह बहुत सूक्ष्म हैं; हालांकि वायु, जैसा कि हाइड्रोजन, ऑक्सीजन आदि उनसे बहुत कुछ मात्रा में स्थूल हैं, क्योंकि हाइड्रोजन के एक अणु में एक इलेक्ट्रॉन, एक प्रोटोन ओर एक न्यूट्रोन होते हैं। ऑक्सीजन के एक अणु में 16 इलेक्ट्रॉन, 16 प्रोटोन और 16 न्यूट्रोन होते हैं और वायु सदैव दो-दो अणुओं के युग्म में ही उपलब्ध होती है, जिसे वैज्ञानिक परिभाषा में 'मोलीक्यूल' कहा जाता है।

इस दृष्टि से प्रकाश के कण (फोटोन) को अग्निकाय नहीं कहा जा सकता; किन्तु प्रकाश उत्पन्न करने वाले पदार्थ, उनकी ज्योति आदि को अग्निकाय मानना चाहिए; अतः बिजली के बल्ब में जब हम विद्युत्-प्रवाह प्रसारित करते हैं, तब टंगस्टन धातु के तार गरम होकर प्रकाशित हो उठते हैं, उसी समय उन तारों में अग्नि की उत्पत्ति होती है; अतः उन गरम तारों को ही सजीव कहा जाता है, ठीक उसी तरह प्रज्वलित अंगारे, अग्नि की ज्वाला, ज्योति, आकाश में कौंधती बिजली, राख में ढंके अग्नि-कण इत्यादि को ही अग्निकाय कहा जाता है, किन्तु उनमें से प्रकट होते प्रकाश को अग्निकाय नहीं कहा जा सकता।

'आचारांग' के प्रथम श्रुतस्कन्ध के प्रथम अध्ययन के चतुर्थ उद्देशक की निर्युक्ति में बादर अग्नि के पांच प्रकार बताए हैं

(1) अंगार, कोयले आदि; (2) विद्युत् आदि अग्नि; (3) ज्वाला अर्थात् अग्नि उत्पन्न करने वाले पदार्थ में विच्छिन्न ज्वाला; (4) अग्नि उत्पन्न करने वाले पदार्थ से संलग्न ज्वाला, जिसे अर्चिस् कहा जाता है; और (5) राख (रक्षा) में ढंके हुए अग्नि के कण जिसे मुर्मुर कहा जाता है।

इन प्रकारों में कहीं भी प्रकाश को सजीव नहीं बताया गया है; किन्तु प्रकाश और उसके उष्ण स्पर्श को, अग्नि के सजीव होने के लक्षण अर्थात् अग्नि के सजीवत्व

का सूचक बताया है। इसी सन्दर्भ में **आचारांग-निर्युक्तिकार** 'खजुआ' का दृष्टान्त देते हैं और बताते हैं कि जिस तरह खजुआ जब तक जीवित होता है, तब तक ही प्रकाश देता है; किन्तु वह उसकी मृत्यु हो जाने के बाद प्रकाश नहीं देता अर्थात् उसका प्रकाशित होना, उसके चैतन्य का सूचक है, ठीक उसी तरह तेजोकाय (तेउकाय) जब सजीव होता है, तब ही प्रकाशित होता है। इसी तरह सजीव प्राणी या मनुष्य का शरीर ही उष्ण होता है, किन्तु मृत्यु के बाद वही ठण्डा पड़ जाता है, इसी भांति अग्नि सजीव होने से उष्ण स्पर्श से युक्त है अर्थात् उष्ण स्पर्श उसके सजीवत्व का प्रमाण या द्योतक है; अतः अग्नि की रोशनी अर्थात् प्रकाश को सजीव मानना उपयुक्त नहीं है।

'दशवैकालिक' में दशपूर्वधर **श्री शय्यंभवसूरिजी** बताते हैं कि किसी भी साधु या साध्वी को अग्नि, अंगार, मुर्मर, अर्चिः, ज्वाला, शुद्ध अग्नि, बिजली, उल्का इत्यादि को जलाना नहीं चाहिए, ऐसी अग्नि में घी, इंधन इत्यादि का उत्सिंचन न करना, ऐसी अग्नि का स्पर्श न करना, भिन्न-भिन्न प्रकाश की अग्नि का मिश्रण न करना, उसे पंखा इत्यादि से प्रज्वलित न करना अर्थात् वृद्धि न करना और किसी भी प्रकार की अग्नि को बुझाना भी नहीं, उपर्युक्त सभी क्रियाएं दूसरों से नहीं कराना और जो भी ऐसी क्रियाएं कर रहा हो, उसे अच्छा नहीं मानना; अर्थात् इन सभी क्रिया करने वालों को अग्नि की विराधना या हिंसा का पाप लगता है।

यहां कहीं भी ऐसा निर्देश नहीं है कि तेउकाय द्वारा उत्सर्जित प्रकाश मनुष्य (साधु-साध्वी) के शरीर पर पड़ने से तेउकाय की विराधना होती है। इसके अतिरिक्त यहां ऐसा निर्देश प्राप्त होता है कि अग्नि या दीपक (लैम्प) जलता हो तो, साधु या साध्वी उसे बुझाने का आदेश या प्रेरणा या उपदेश भी नहीं दे सकते, दीपक जलता हो तो साधु-साध्वी का निमित्त पाकर उसे बुझाना योग्य नहीं है। यदि दीपक द्वारा उत्सर्जित प्रकाश में आत्मा होती और उस प्रकाश के मनुष्य के शरीर पर पड़ने से मृत्यु होती, तो अहिंसा का सम्पूर्ण पालन करने के लिए ऐसी अग्नि को बुझाने की प्रेरणा देने या ऐसे स्थानों से दूर रहने का सुस्पष्ट विधान शास्त्रों में मिलता; किन्तु ऐसे विधान की अप्राप्ति इस बात का निर्देश करती हैं कि अग्नि, जिसमें से प्रकाश और उष्णता पैदा होती है, सजीव है, उसे बुझाने का उपदेश देने या बुझाने से उसकी हिंसा होती है; किन्तु प्रकाश के सजीव न होने के कारण उसके साधु-साध्वी के शरीर पर पड़ने से हिंसा नहीं होती है।

यहां प्रश्न उपस्थित होता है कि ऊपर जो बताया गया है, उसका (प्रकाश का) आगमिक साहित्य में कहीं भी तेउकाय में समावेश नहीं हुआ है अर्थात् वह सजीव नहीं है फिर उसे सजीव मानने की परम्परा कब और कैसे शुरू हुई? इस पर गहराई

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

से विचार करना होगा।

श्वेताम्बर मूर्तिपूजक तपागच्छीय परम्परा के साधु और श्रावक के अतिचारों में और **सेनप्रश्न** में इस बात का सन्दर्भ प्राप्त होता है :

प्रश्न : यदि चातुर्मास में प्रतिक्रमण आदि में बिजली का प्रकाश हो तो अतिचार लगेगा या नहीं?

उत्तर : पूज्यपाद **श्री विजयदानसूरीश्वरजी** तथा पूज्य श्री **विजयहीरसूरीश्वरजी** से ऐसा सुना है कि शेष काल में और चातुर्मास में प्रतिक्रमण, योग के अनुष्ठान इत्यादि क्रिया में बिजली का प्रकाश हो तो अतिचार लगता है, क्रिया अतिचार-युक्त होती है, कालग्रहण का भंग होता है।

प्रश्न : चन्द्र के प्रकाश में दीपक इत्यादि के प्रकाश की स्पर्शना होता है या नहीं?

उत्तर : यदि शरीर को चन्द्र का प्रकाश लगता हो तो दीपक इत्यादि के प्रकाश की स्पर्शना नहीं होती है, किन्तु शरीर को चन्द्र का प्रकाश न लगता हो तो दीपक इत्यादि के प्रकाश की स्पर्शना होती है, ऐसी परम्परा है, और खरतरकृत **संदेह दोलावली** में भी ऐसा बताया गया है।

विक्रम के 14वें शतक में खरतरगच्छीय आचार्य **श्रीमज्जिनवल्लभसूरि** के शिष्य आ. श्री **जिनदत्तसूरि** ने **'संदेह दोलावली'** प्रकरण की रचना की है। यह ग्रन्थ भी प्रश्नोत्तर रूप में है। इस ग्रन्थ की गाथा 41 और 42 की वृत्ति में इस बात का निर्देश प्राप्त होता है और उसी समय से प्रकाश को सजीव मानने की परम्परा शुरू हुई होगी ऐसा प्रतीत होता है। यद्यपि **'संदेह दोलावली'** प्रकरण की मूल गाथा से ऐसा कोई अर्थ प्राप्त होता नहीं है; किन्तु वाचनाचार्य श्री **प्रबोधचन्द्र गणि** ने बृहद् वृत्ति में इसकी विस्तृत चर्चा की है। सार इस प्रकार है :

प्रतिक्रमण की क्रिया करने वाले मनुष्य (साधु या गृहस्थ) विद्युत्, प्रदीप इत्यादि का यदि दो बार या चार बार स्पर्श करें या बहुत बार स्पर्श करें तो उन्हें प्रायश्चित्त करना पड़ता है। यहां इत्यादि शब्द से पृथ्वीकाय आदि अन्य सचित्त द्रव्य लिए गए हैं अर्थात् सामायिक, प्रतिक्रमण आदि में सचित्त द्रव्यों का स्पर्श नहीं करना चाहिए। अग्नि, दीपक आदि सचित्त होने से, उनका स्पर्श नहीं करना चाहिए। **'संदेह दोलावली'** की इन गाथाओं में 'विद्युत्' शब्द है अतः उसका अर्थ 'आकाश में होने वाली बिजली' लेना है, जो सजीव है; किन्तु सामायिक-प्रतिक्रमण की क्रियायुक्त मनुष्य उसका स्पर्श नहीं कर सकता; अतः टीकाकार वाचनाचार्य और अन्य 'विद्युत्' शब्द से बिजली का प्रकाश ग्रहण करते हैं। अतः उसी समय से किसी भी प्रकार के

अग्नि का प्रकाश सचित्त है, ऐसी मान्यता प्रचलित हुई होगी ऐसा अनुमान है।

दूसरी ओर **'संदेह दोलावली'** के वृत्तिकार चन्द्र के प्रकाश में दीपक इत्यादि के प्रकाश की स्पर्शना होती है या नहीं? इस प्रश्न का उत्तर देते समय भी इसी प्रकार की चर्चा करते हैं।

वे कहते हैं कि चन्द्र, सूर्य इत्यादि के विमान की प्रभा से या प्रकाश से उजेही (स्पर्शना) तो होती ही है; किन्तु वह अपरिहार्य है। तुरन्त ही वे दूसरा उत्तर यह देते हैं कि सूर्य, चन्द्र के प्रकाश का मात्र स्पर्श होता है; किन्तु उसके निर्जीव होने से विराधना (जीव-हिंसा) सम्भव नहीं है।

पुनः आगे चर्चा करते हुए वे स्वयं पंचमांग **श्री भगवती सूत्र** या **व्याख्या-प्रज्ञप्ति सूत्र** का उद्धरण देते हुए सूर्य-चन्द्र के प्रकाश की सचित्तता के बारे में शंका उपस्थित करते हैं और स्वयं नवांगी वृत्तिकार **श्री अभयदेवसूरिजी** के वचनों का आधार लेकर कहते हैं कि सूर्य, चन्द्र इत्यादि के प्रकाश का सकर्मलेश्यत्व (सजीवत्व) मात्र उपचार से ही है, वस्तुतः वह सजीव नहीं है। सूर्य, चन्द्र इत्यादि के विमानों के पुद्गल स्कन्ध पृथ्वीकाय होने से सचित्त हैं; किन्तु उनका प्रकाश अचित्त है, कुछ एक जीवों को (चन्द्र में) उद्योत नामकर्म का उदय है, अतः उनके शरीर दूर होने पर भी उष्ण नहीं, ऐसा शीतल प्रकाश देते हैं; जबकि कुछ-एक जीवों को (सूर्य में) आतप नाम कर्म का उदय होने से उनके अनुष्ण शरीर, दूर रहने पर भी उष्ण प्रकाश देते हैं; अतः उनके प्रकाश की स्पर्शना में विराधना नहीं होती है।

यहां पुनः शंका उपस्थित की जाती है कि यदि ऐसा ही है तो बिजली, दीपक इत्यादि के प्रकाश के सम्बन्ध से भी विराधना होती नहीं है ऐसा कहना चाहिए; क्योंकि बिजली, दीपक इत्यादि का अग्निकाय रूप स्थूल शरीर तो दूर ही होता है। प्रत्युत्तर देते हुए **'संदेह दोलावली'** के टीकाकार कहते हैं कि अग्निकाय में उद्योत नामकर्म का उदय नहीं है और पृथ्वीकाय न होने से आतप नामकर्म का भी उदय नहीं है; क्योंकि आगम में बताया गया है कि अपर्याप्त बादर पृथ्वीकाय को ही आतप नामकर्म का उदय होता है।

अतः प्रश्न उपस्थित हुआ कि दीपक इत्यादि का प्रकाश दूर-स्थित वस्तुओं को प्रकाशित (उद्योतित) करता है और गरम भी करता है वह किस तरह? इसके उत्तर में वाचनाचार्य **श्री प्रबोधचन्द्र गणि** कहते हैं कि उष्ण स्पर्श के उदय वाले और लोहितवर्ण नामकर्म के उदय वाले प्रकाशयुक्त अग्निकायिक जीव ही आस-पास के विस्तार में फैलते हैं; किन्तु अग्निकाय को प्रभा न होने से और उसके अतिसूक्ष्म होने से उन्हें ही प्रभा के रूप में पहचाना जाता है।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

वाचनाचार्य **श्री प्रबोधचन्द्र गणि** का यह अन्तिम उत्तर **श्री दशवैकालिक** सूत्र की हारिभद्रीय वृत्ति में दिए गए जीवाभिगम सूत्र के पाठ से बिलकुल विरुद्ध है; और उन्होंने इसके लिए किसी भी आगमिक साहित्य का आधार नहीं दिया है। उन्होंने स्पष्टतया बताया है कि अग्निकाय के जीव अप्काय यानी पानी के जीवों से भी अधिकतर स्थूल या बादर हैं। तब जल से अधिक सूक्ष्म वायु और वायु से भी अधिक सूक्ष्म ऐसे प्रकाश के कण (फोटोन) को अग्निकाय भी कहा जाए? यह एक अत्यन्त विचारणीय प्रश्न है।

पुद्गल द्रव्य का एक और वर्गीकरण वर्गणाओं के रूप में है। वर्गणाओं के मुख्यतः आठ भेद बताए गए हैं 1. औदारिक, 2. वैक्रियक, 3. आहारक, 4. तैजस्, 5. भाषिक, 6. श्वासोच्छ्वासिक, 7. मनस्, 8. कार्मण। देव और नारक को छोड़ प्रत्येक जीव का भवधारणीय शरीर औदारिक वर्गणा के पुद्गल स्कन्धों से निष्पन्न है। देव और नारक के शरीर वैक्रियक वर्गणा के पुद्गल स्कन्धों से निष्पन्न हैं। आहारक लब्धिवान् चतुर्दशपूर्वधर साधु ही आहारक शरीर बनाने के लिए आहारक वर्गणा का उपयोग करते हैं। प्रत्येक संसारी आत्मा प्रति समय तैजस् और कार्मण रूप सूक्ष्म शरीर से युक्त है। भाषा-वर्गणा से आवाज (शब्द) पैदा होती है। श्वासोच्छ्वास-वर्गणा का उपयोग श्वास लेने में किया जाता है। मन के निर्माण एवं विचार करने में मनोवर्गणा का उपयोग होता है।

दशवैकालिक सूत्र की वृत्ति में बताए गए पुद्गल द्रव्य के विभागीकरण की बादर सूक्ष्म, बादर और बादर श्रेणियां औदारिक वर्गणा में समाविष्ट होती हैं।

यदि हम प्रकाश को सचित्त या तेउकाय मानें तो उसका समावेश बादर-बादर श्रेणी में करना होगा; किन्तु विज्ञान ने बताया है कि प्रकाश के कण ज्यादा सूक्ष्म हैं; अतः उन्हें तैजस् वर्गणा में समाविष्ट करना उपयुक्त है और तैजस् वर्गणा को अन्य वर्गणाओं के साथ सूक्ष्म वर्ग में रखने पर सब कुछ सही प्रतीत होता है। यहां ध्यान में रखें कि उपर्युक्त आठों वर्गणाओं के पुद्गल स्कन्ध उत्तरोत्तर अधिकाधिक सूक्ष्मपरिणाम वाले हैं; अतः प्रकाश सचित्त नहीं है ऐसा मानना सही और तर्कसंगत लगता है।

सेनप्रश्न में कहा है कि 'बिजली या दीपक आदि का प्रकाश होने पर, प्रतिक्रमण आदि क्रिया अतिचार-युक्त होती है अर्थात् सम्पूर्णतः निष्फल नहीं बन पाती'।

इस वाक्य का भावार्थ मैं अपनी बुद्धि से इस प्रकार करता हूं। प्रथम तो यह बात जगद्गुरु **श्री हरिसूरीश्वरजी** के पास से सुनी हुई है ऐसा स्पष्टतया **आ. श्री सेनसूरीश्वरजी** ने बताया है। उनका अर्थ है कि उसी समय प्राप्त आगमिक और

तपागच्छीय अन्य साहित्य में कहीं भी इस बात का संदर्भ उपलब्ध नहीं था।

तीसरी बात यह कि प्रतिक्रमण आदि क्रियाओं में दीपक या बिजली आदि का प्रकाश, क्रिया करने वाले मनुष्य पर पड़ने से उसकी क्रिया अतिचार-युक्त बनती है। इसका कारण यह है कि रात्रि के अन्धकार में क्रिया करते समय कुछ भी दिखायी नहीं पड़ता, ऐसे समय में यदि कहीं से प्रकाश आ जाए तो प्रथम तो ध्यानभंग होता है, चित्त विचलित हो उठता है; दूसरा यह कि प्रकाश के कारण सब वस्तुएं स्पष्टतया दिखायी पड़ती हैं, इससे क्रिया करने में सुगमता रहती है, अतः क्रिया करने वाले के मन में प्रकाश की इच्छा जागती है, या दीपक या बिजली का प्रकाश हुआ वह 'अच्छा हुआ' ऐसा भाव आ जाता है; अर्थात् प्रकाश करने या दीपक जलाने की क्रिया का अप्रकट अनुमोदन हो जाता है, जबकि क्रिया करने वाले साधु-साध्वी के लिए करना, कराना और इनका अनुमोदन करना तीनों का निषेध है, अतः अनुमोदन करना भी उपयुक्त नहीं है। लगता है ऐसी परिस्थिति के कारण ही **आ. श्री विजय हीरसूरिजी** ने कहा होगा बिजली आदि के प्रकाश के कारण क्रिया अतिचारयुक्त होती है। यह हमारा अनुमान है।

आधुनिक भौतिक विज्ञान की परिभाषा में तो प्रकाश एक विद्युत्-चुम्बकीय तरंग (इलेक्ट्रोमैग्नेटिक वेव्ह) मात्र है और वर्तमान में हमारे वायुमण्डल (एटमॉस्फीयर) में कई प्रकार की विद्युत्-चुम्बकीय तरंगें हैं। प्रत्येक तरंग, प्रकाश के वेग से अर्थात् 3,00,000 कि.मी. प्रति सेकेंड के वेग से गति करती है, केवल उसकी कम्प-संख्या (फ्रीक्वेन्सी) या तो बहुत ज्यादा होती है या बहुत कम। इसी कारण से प्रत्येक तरंग दृश्यमान नहीं होती है।

इस प्रकार वर्तमान पृथ्वी पर जीवन व्यतीत करने वाले प्रत्येक व्यक्ति के शरीर पर नाना प्रकार की संख्यातीत विद्युत्-चुम्बकीय तरंगें पड़ती हैं। यदि हम इन सबको सजीव मान लें तो फिर जीना ही मुश्किल हो जाएगा।

एक बात और है कि प्रत्येक सजीव पदार्थ अपनी शारीरिक और भौतिक क्षमतानुसार, अपनी आध्यात्मिक उन्नति अनुसार, अपने शरीर में से नियत प्रकार की, नियत कंप-संख्या वाली तरंगें छोड़ता है और जिनकी कंप-संख्या, तरंग-लम्बाई आदि उनकी मनःस्थितियों के (शान्ति, भय, क्रोध, उद्वेग, शोक, इत्यादि) अनुसार बदलती रहती है। इस सिद्धान्त के आधार पर ही विज्ञान की टेलीपैथी नामक शाखा विकसित हुई है। पश्चिम में इसे लेकर कई खोजें हुई हैं। अनुसंधान अभी जारी है।

इस चर्चा का सार मात्र यह है कि प्रकाश के रूप में विद्युत्-चुम्बकीय तरंगें छोड़ना अग्निकायिक जीव का लक्षण है; अतः सभी प्रकार के प्रकाश में जीव है, ऐसा मानना उपयुक्त नहीं है।

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

इस सबका अर्थ यह नहीं है कि साधु-समाज को दीपक के प्रकाश का उपयोग करने की छूट देता हूं, या ऐसी छूट लेने के लिए मैंने यह लेख लिखा है; वस्तुतः साधु या साध्वी स्वयं तो बत्ती नहीं जला सकते; किन्तु अन्य किसी के पास भी बत्ती जलाना उपयुक्त नहीं है और इससे भी बढ़कर यदि कोई बत्ती जलाता हो या बुझाता हो तो उसे भी अच्छा नहीं मानना अर्थात् अनुमोदन करना भी उपयुक्त नहीं है। साथ ही उपाश्रय के निकटवर्ती किसी गृहस्थ के घर की जलायी हुई बत्ती या सड़क पर जलती नगरपालिका की बत्ती की सहायता से अपना कोई कार्य साधु न करें; क्योंकि ऐसा करने पर उसकी अनुमोदना हो जाती है। यद्यपि यह बत्ती साधु के लिए या साधु के कहने से नहीं की गई तथा उसके उपयोग (इस्तेमाल) से पाप लगता ही है, इसे प्रायः सभी मानते हैं; अतः ऐसी बत्ती का इस्तेमाल करने की छूट लेने का कोई प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता। यहां तो केवल जैन आगम और विज्ञान के आधार पर 'प्रकाश सजीव है अथवा नहीं' इस प्रश्न के समाधान का एक विनम्र प्रयास किया गया है।

(सन्दर्भ : दशवैकालिक सूत्र, हारिभद्रीयवृत्ति; तत्त्वार्थसूत्र टीका, अध्याय 2, टीकाकार सिद्धसेन गणि। आचारांग टीका, शीलाङ्काचार्य; सेनप्रश्न; संदेह दोलावली प्रकरण; टेकस्ट बुक ऑफ क्वाण्टम मिकेनिक्स, पी. एम. मैथ्युस, के. वेंकटेशन)

[तीर्थंकर : दिसम्बर, 88]

टिप्पणी :

आवश्यक सूत्र टीका में निर्युक्तिगत :
अगणीओ छिंदिज्ज बोहियखोभाइ दीहडक्को वा।

आगारेहिं अभग्गो उस्सग्गो एवमाईहिं ॥1516॥ गाथा की वृत्ति में 'अगणीओ' शब्दनिर्दिष्ट कायोत्सर्ग के आगार के बारे में टिप्पणी करते हुए बताया है 'यदा ज्योतिः स्पृशति तदा प्रावरणाय कल्पग्रहणं कुर्वतो न कायोत्सर्गभङ्गः।' (कायोत्सर्ग के दौरान यदि ज्योति की स्पर्शना हो तब आच्छादन के लिए वस्त्र का ग्रहण करने पर कायोत्सर्ग का भङ्ग नहीं होता है।)

किन्तु प्रतिक्रमण सूत्र के प्रबोधटीका नामक गुजराती विवेचन में अन्नत्थ सूत्र में इसी निर्युक्तिगत गाथा के 'अगणीओ' शब्द के दो अर्थ बताए हैं (1) कायोत्सर्ग के दौरान, अग्नि फैलता हुआ, आकर यदि कायोत्सर्ग करते हुए व्यक्ति को स्पर्श करे, तब वह अन्यत्र जाकर कायोत्सर्ग पूर्ण करें तब कायोत्सर्ग का भंग नहीं होता है।

(2) दूसरा अर्थ आवश्यक सूत्र की टीका में बताया हुआ ही है।

दूसरी ओर कलिकालसर्वज्ञ श्री हेमचंद्राचार्यजी ने अपने 'अभिधान चिन्तामणि'

शब्द कोश में अग्निकाय/तेजस्काय के शब्दों में कहीं भी 'प्रकाश' को अग्निकाय के रूप में बताया नहीं है। 'अभिधान राजेन्द्र' कोष में भी एतद्विषयक कोई उल्लेख प्राप्त नहीं है।

उपर्युक्त दोनों अर्थ में प्रथम अर्थ आगम से सम्मत लगता है। किन्तु द्वितीय अर्थ संदिग्ध है। हालांकि निर्युक्तिगत इसी गाथा में 'प्रकाश' को अग्निकाय नहीं बताया है और 'अगणीओ' शब्द के द्वितीय अर्थ से ऐसा स्पष्ट निर्देश नहीं होता है कि प्रकाश अग्निकायिक जीव के रूप में सजीव ही है, तथापि प्रकाश को सजीव मानने वाला वर्ग उसी पाठ का/अर्थ का आधार लेते हैं किन्तु उनके साथ बताए हुए अन्य तीन आगार के स्वरूप से द्वितीय अर्थ सही नहीं लगता है। तत्त्वं तु केवलिगम्यम्।"

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

परिशिष्ट 1 (टिप्पण)

1. मुनि यशोविजयजी, विद्युत् सजीव या निर्जीव, पृष्ठ 79-99
2. मुनि नंदिघोषविजयजी, जैन दर्शन : वैज्ञानिक दृष्टिए (Jainism through Science), पृष्ठ 21-28

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

परिशिष्ट 2

92 मूल तत्त्व

आधुनिक विज्ञान द्वारा सम्मत 92 मूल तत्त्वों (elements) का 'periodical table' यहां सन्दर्भ के लिए दिया जा रहा है, जिसमें प्रत्येक मूल तत्त्व में रहे हुए इलेक्ट्रोन आदि की संख्या तथा परमाणु-भार आदि का पूरा विवरण उपलब्ध है।

APPENDIX II

ATOMIC TABLE

ATOMIC No.	NAME	SYMBOL	AWEIGHT ATOMIC	GROUP or	FAMILY	Number of Electrons in Each Shell					Special charactaristics
1.	Hydrogen	H	1.008			1					Unique
2.	Helium	He	4.0026	VIIIA		2					Inert gas
3.	Lithium	Li	6.939	IA		2	1				Alkali & Alkaline
4.	Beryllium	Be	9.0122	IIA		2	2				Earth Metal
5.	Boron	B	10.811	IIIA		2	3				Boron and
6.	Carbon	C	12.011	IVA		2	4				Carbon Families
7.	Nitrogen	N	14.007	VA		2	5				Nitrogen and
8.	Oxygen	O	15.999	VIA		2	6				Oxygen Families
9.	Fluorine	F	18.998	VIIA		2	7				Halogens
10.	Neon	Ne	20.183	VIIIA		2	8				Inert gas
11.	Sodium	Na	22.990	IA		2	8	1			A & A.E.M.
12.	Megnesium	Mg	24.312	IIA		2	8	2			
13.	Aluminium	Al	26.982	IIIA		2	8	3			B & C Families
14.	Silicon	Si	28.086	IVA		2	8	4			B & C Families
15.	Phosphorus	P	30.974	VA		2	8	5			N & O Families
16.	Sulphur	S	32.064	VIA		2	8	6			N & O Families
17.	Chlorine	Cl	35.453	VIIA		2	8	7			Halogen
18.	Argon	Ar	30.948	VIIIA		2	8	8			Inert gas

ATOMIC No.	NAME	SYMBOL	AWEIGHT ATOMIC	GROUP or	FAMILY	Number of Electrons in Each Shell					Special charactaristics
19.	Potassium	K	39.102	IA		2	8	8	1		A & A.E.M.
20.	Calcium	Ca	40.08	IIA		2	8	8	2		A & A.E.M.
21.	Scandium	Sc	44.956	IIIB		2	8	9	2		
22.	Titanium	Ti	47.90	IVB		2	8	10	2		First
23.	Vanadium	V	50.942	VB		2	8	11	2		Transition
24.	Chromium	Cr	51.996	VIB		2	8	13	1		Metals
25.	Manganese	Mn	54.938	VIIB		2	8	13	2		
26.	(Ferrum) Iron	Fe	55.847	VIIIB		2	8	14	2		TheTriads
27.	Cobalt	Co	58.933	VIIIB		2	8	15	2		Second Transition
28.	Nickel	Ni	58.71	VIIIB		2	8	16	2		Metals
29.	Copper	Cu	63.54 63.74	IB		2	8	18	1		Third Transition
30.	Zinc	Zn	65.37 65.54	IIB		2	8	18	2		Metals
31.	Gallium	Ga	69.72	IIIA		2	8	18	3		B & C Fam.
32.	Germanium	Ge	72.59	IVA		2	8	18	4		B & C Fam.
33.	Arsenic	As	74.922	VA		2	8	18	5		N & O Fam.
34.	Selenium	Se	78.96	VIA		2	8	18	6		N & O Fam.
35.	Bromine	Br	79.909	VIIA		2	8	18	7		Halogen
36.	Krypton	Kr	83.80	VIIIA		2	8	18	8		Inert gas
37.	Rubiduim	Rb	85.47	IA		2	8	18	8	1	A & A.E.M.
38.	Strontium	Sr	87.62	IIA		2	8	18	8	2	
39.	Yitrium	Y	88.095	IIIB		2	8	18	9	2	
40.	Zirconium	Zr	91.22	IVB		2	8	18	10	2	First
41.	Niobium	NB	92.906	VB		2	8	18	12	1	Transition
42.	Molybdenum	Mo	95.94	VIB		2	8	18	13	1	Mettals
43.	Technetium	Tc	99.00	VIIB		2	8	18	13	2	
44.	Ruthenium	Ru	101.07	VIIIB		2	8	18	15	1	Triads Second
45.	Rhodium	Rh	102.91	VIIIB		2	8	18	16	1	Transition
46.	Palladium	Pd	106.4	VIIIB		2	8	18	18		Metals
47.	(Argentum) Silver	Ag	107.87	IB		2	8	18	18	1	Third Transiti
48.	Cadmium	Cd	112.40	IIB		2	8	18	18	2	on Metals
49.	Indium	In	114.82	IIIA		2	8	18	18	3	B & C Fam.
50.	(Stannum) Tin	Sn	118.69	IVA		2	8	18	18	4	B & C Fam.
51.	Antimony	Sb	121.75	VA		2	8	18	18	5	N & O Fam.
52.	Tellurium	Te	127.60	VIA		2	8	18	18	6	
53.	Iodine	I	126.90	VIIA		2	8	18	18	7	Halogen

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org

ATOMIC No.	NAME	SYMBOL	ATOMIC WEIGHT	GROUP or FAMILY	Number of Electrons in Each Shell	Special charactaristics
54.	Xenom	Xe	131.30	VIIIA	2 8 18 18 8	Inert gas
55.	Cesium	Cs	132.91	IA	2 8 18 18 8 1	A & A.E.M
56.	Barium	Ba	137.34	IIA	2 8 18 18 8 2	
57.	Lanthanum	La	138.91	IIIB	2 8 18 18 9 2	
58.	Cerium	Ce	140.12		2 8 18 19 9 2	
59.	Praseodyntium	Pr	140.91		2 8 18 21 8 2	57 to 71
60.	Ncodymium	Nd	144.24		2 8 18 22 8 2	Rare earths.
61.	Promethium	Pm	147.00		2 8 18 23 8 2	
62.	Samarium	Sm	150.35		2 8 18 24 8 2	
63.	Europium	Eu	151.962		2 8 18 25 8 2	
64.	Gadolinium	Gd	157.25		2 8 18 25 9 2	
65.	Terbium	Tb	158.92		2 8 18 26 9 2	
66.	Dysprosium	Dy	162.50		2 8 18 28 8 2	
67.	Holmium	Ho	164.93		2 8 18 29 8 2	
68.	Erbium	Er	167.26		2 8 18 30 8 2	
69.	Thulium	Tm	168.93		2 8 18 31 8 2	
70.	Yitribium	Yb	173.04		2 8 18 32 8 2	
71.	Lutetium	Lu	174.97		2 8 18 32 9 2	
72.	Hafnium	Hf	178.49	IVB	2 8 18 32 10 2	72 to 74
73.	Tantalum	Ta	180.95	VB	2 8 18 32 11 2	Transition
74.	(Wolfram) Tungsten	W	183.85	VIB	2 8 18 32 12 2	Metals
75.	Rhenium	Re	186.2	VIIB	2 8 18 32 13 2	
76.	Osmium	Os	190.2	VIIIB	2 8 18 32 15 2	The Triads
77.	Iridium	Ir	192.2	VIIIB	2 8 18 32 15 2	Second
78.	Platinum	Pt	195.09	VIIIB	2 8 18 32 17 1	Tr. Metals
79	(Aurum) Gold	Au	196.97	IB	2 8 18 32 18 1	Third Tr.
80.	(Hydragyrum) Mercury	Hg	200.59	IIB	2 8 18 32 18 2	Mtals
81.	Thallium	Ti	204.37	IIIA	2 8 18 32 18 3	B & C Fam.
82.	(Plumbum) Lead	Pb	207.19	IVA	2 8 18 32 18 4	
83.	Bismuth	Bi	208.98	VA	2 8 18 32 18 5	N & O
84.	Polonium	Po	210	VIA	2 8 18 32 18 6	Families
85.	Astatine	At	210	VIIA	2 8 18 32 18 7	Halogen
86.	Radon	Rn	222	VIIIA	2 8 18 32 18 8	Inert gas
87.	Francium	Fr	223	IA	2 8 18 32 18 8 1	A & A.M.
88.	Radium	Ra	226	IIA	2 8 18 32 18 8 2	A & A.M.
89.	Actinium	Ac	227		2 8 18 32 18 8 2	
90.	Thorium	Th	232.04		2 8 18 32 18 10 2	

ATOMIC No.	NAME	SYMBOL	ATOMIC WEIGHT	GROUP or FAMILY	Number of Electrons in Each Shell	Special charactaristics
91.	Protactinium	Pr	231		2 8 18 32 20 9 2	89–103
92.	Uranium	U	238.03		2 8 18 32 21 9 2	Actinide metals
93.	Neptunium	Np	237		2 8 18 32 22 9 2	
94.	Plutonium	Pu	242		2 8 18 32 24 8 2	
95.	Americium	Am	243		2 8 18 32 25 8 2	
96.	Curium	Cm	247		2 8 18 32 25 9 2	
97.	Berkelium	Bk	247		2 8 18 32 27 8 2	93 to 103
98.	Californium	Cf	249		2 8 18 32 28 8 2	Man made
99.	Einseinium	Es	254		2 8 18 32 29 8 2	elements
100.	Fermium	Fm	253		2 8 18 32 30 8 2	
101.	Mendelevium	Md	256		2 8 18 32 31 8 2	
102.	Nobelium	No	254		2 8 18 32 32 8 2	
103.	Lawrencium	Lw	257		2 8 18 32 32 9 2	

© Jain Vishva Bharati For Personal & Private Use Only https://books.jvbharati.org